तारे और मनुष्य
अनु. डा निहालकरण सेठी

हिन्द[illegible] [illegible] के कुछ अन्य प्रकाश[illegible]

[illegible]	१२.००
[illegible] विज्ञा [illegible]	४.५०
आपे[illegible]क्ता का अभिप्राय	४.००
इलेक्ट्रान विवर्तन	२.५०
औद्योगिक इलेक्ट्रानिकी	७.००
शक्ति, वर्तमान और भविष्य	४.००
परमाणु विखण्डन	६.००
रेडार परिचय	५.५०
दूरवीक्षण के सिद्धान्त	६.५०
रेडियो सर्विसिंग	८.५०
उद्योग और रसायन	७.००
यांत्रिकी	११.००
कांच विज्ञान	६.००
इस्पात का उत्पादन	५.००
रेयन तथा सिंथेटिक फाइबर्स	११.००
स्टार्च और उसका व्यवसाय	७.५०
लाख और चपड़ा	१०.००
तेल और उनसे बने पदार्थ	६.५०
साबुन तथा ग्लिसरीन	११.००
कोयला	८.००
भारत का आर्थिक भूगर्भ शास्त्र	१०.००
भूमि रसायन	१०-००
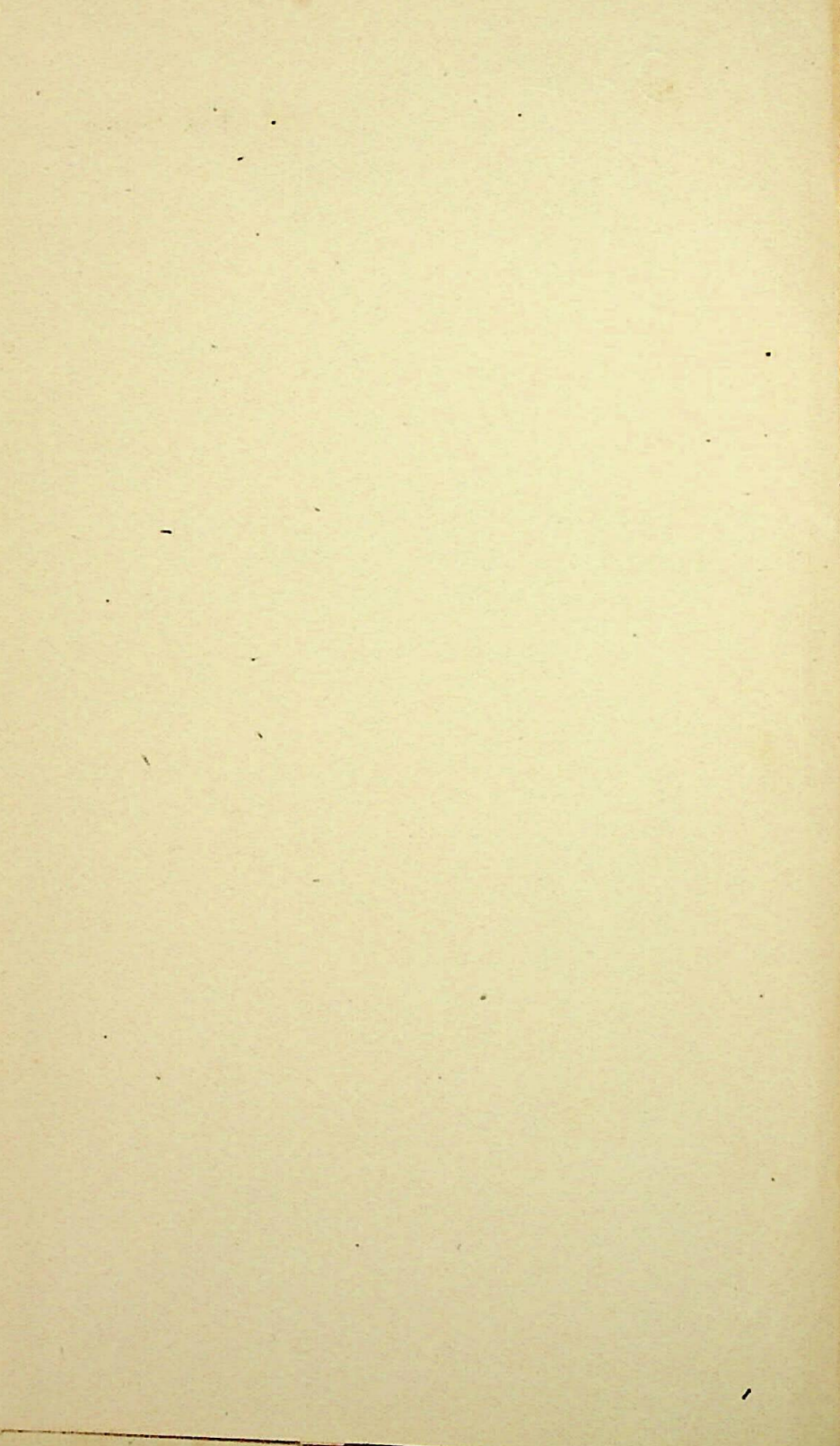
तारे और मनुष्य

हिन्दी समिति-ग्रन्थमाला—संख्या—५९

तारे और मनुष्य

[ब्रह्माण्ड के बढ़ते हुए विस्तार की मानवीय प्रतिक्रिया]

लेखक

हार्लो शेपली

अनुवादक

डा० निहालकरण सेठी

अवसरप्राप्त प्रधानाचार्य, आगरा कालेज

हिन्दी समिति

सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश

लखनऊ

द्वितीय संस्करण
१९६७

Translated into Hindi from
Harlow Shapley's "Of Stars And Men"
--Human Response to an expanding Universe

मूल्य
पाँच रुपये

मुद्रक
प्रेम प्रेस, प्रयाग

प्रकाशकीय

हावर्ड विश्वविद्यालय के विख्यात ज्योतिषी हार्लो शेपली का स्पष्ट मत है कि इस ब्रह्माण्ड में उच्च जीवन के निवास योग्य स्थानों की संख्या दस करोड़ से कम नहीं वरन् उनकी संख्या खरबों तक हो सकती है। अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक "आफ स्टार्स एण्ड मेन" में उन्होंने गत अनेक वर्षों में प्रकाश में आने वाले ब्रह्माण्डीय तत्त्वों का विवेचन करते हुए मनुष्य और अखिल ब्रह्माण्ड का पारस्परिक सम्बन्ध दिखाने का प्रयास किया है। साथ ही यह भी सिद्ध किया है कि अकेला मानव ही इस अनन्त सृष्टि का केन्द्र नहीं है। उन्होंने अपनी इस पुस्तक में मानव जाति के भविष्य की भी चर्चा की है और विश्वास प्रकट किया है कि किसी तारे से पृथ्वी की टक्कर हो जाने, सूर्य के ठंडे पड़ जाने अथवा अति शीत से हमारे जम जाने, पृथ्वी के अपने कक्षा से हट कर सूर्य के बहुत निकट आ जाने या उससे बहुत दूर चले जाने आदि जैसी दैवी आपदाओं से मनुष्य की समाप्ति की संभावना दस-बीस हजार वर्ष तक नहीं मालूम पड़ती। उनका विश्वास है कि मानव अपने बुद्धिबल से ऐसी सभी प्रकार की आपदाओं का सफलतापूर्वक सामना कर लेगा।

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डॉ० निहालकरण सेठी द्वारा प्रस्तुत उक्त पुस्तक के प्रथम हिन्दी संस्करण का पाठकों ने अत्यधिक स्वागत किया। अब उसका यह द्वितीय संस्करण प्रस्तुत है। आशा है कि मनुष्य और ब्रह्माण्ड के परस्पर सम्बन्ध की आधुनिकतम जानकारी कराने में यह ग्रन्थ उपयोगी सिद्ध होगा।

शशिकान्त भटनागर

सचिव, हिन्दी समिति
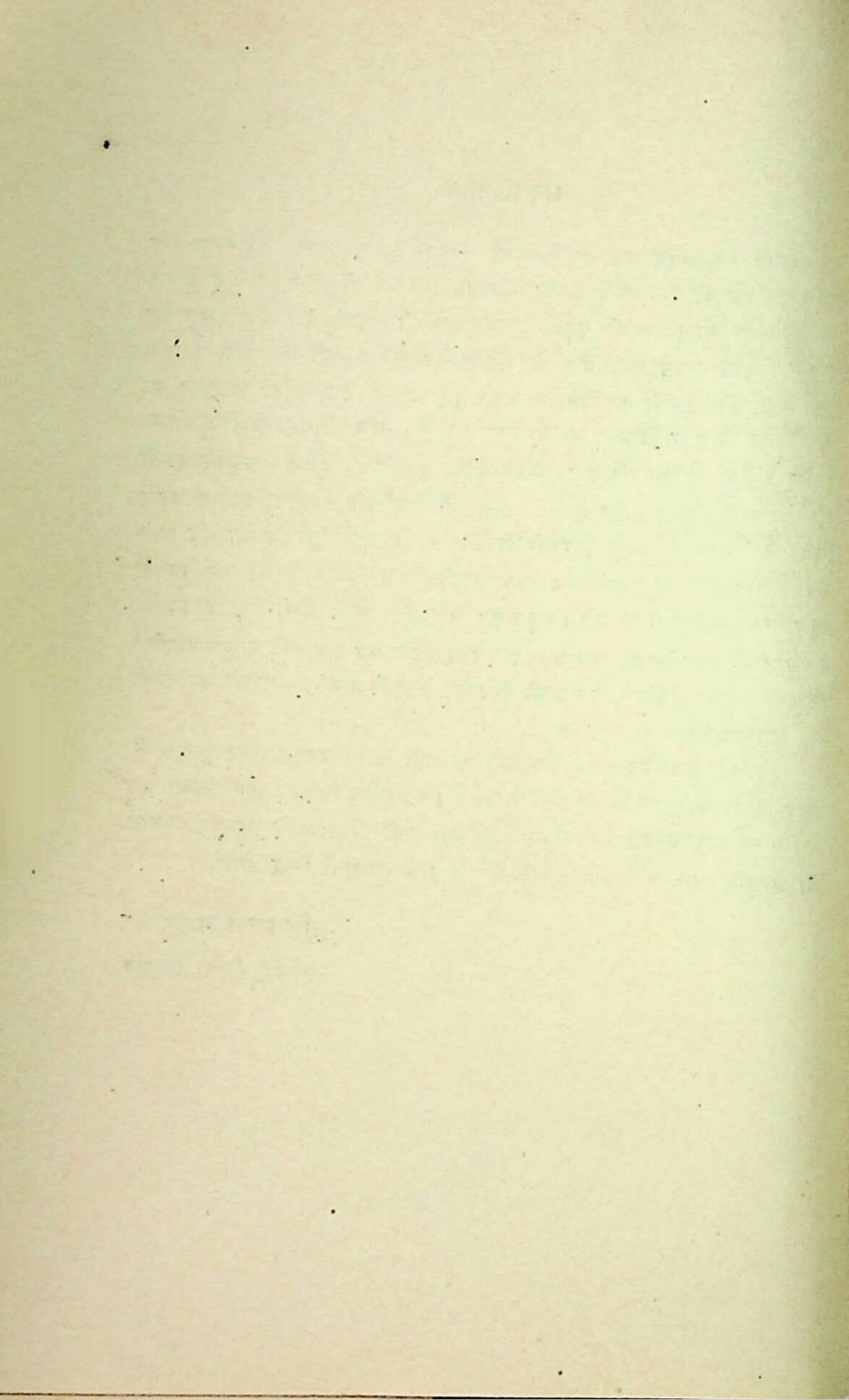
प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तक ज्योतिषियों तथा अन्य वैज्ञानिक विशेषज्ञों के लिए नहीं लिखी गयी है। इसीलिए इसमें सन्दर्भ पुस्तकों तथा लेखों का बहुत ही थोड़ा उल्लेख है और परिच्छेद ५, ६ तथा ९ के कुछ भागों को छोड़कर इसे प्राविधिकता (technicality) से भी बहुत कुछ मुक्त रखा गया है। कुछ बातों के लिए मैंने "ब्रह्माण्डीय तथ्य" पद का प्रयोग तो किया है, किन्तु मैं पाठक से यही आशा करता हूँ कि वह 'तथ्य' शब्द के मूल अर्थ पर अधिक जोर देने का आग्रह नहीं करेंगे क्योंकि जो बात आज पूर्णतः सत्य समझी जाती है कल उसी में पुनः संशोधन करने की आवश्यकता प्रतीत होने लगती है। आखिरी परिच्छेदों में कहीं-कहीं वाक्यों तथा तर्कों की जो पुनरावृत्ति दिखाई देती है, वह भूल नहीं है। जिन बातों पर जोर देना उचित जान पड़ा उन पर जोर देने के ही लिए ऐसा किया गया है।

मैं श्रीमती शेपली को धन्यवाद देना चाहता हूँ जिन्होंने इस पुस्तक के विचारों के तथा इसकी भाषा की शैली के विषय में धैर्यपूर्वक मेरे साथ विमर्श किया है और मुझे पाण्डुलिपि तैयार करने में सहायता दी है।

यदि मैं इस पुस्तक को इसके प्रथम तथा प्रमुख प्रोत्साहनकर्ता को समर्पण करना चाहूँ तो सम्भवतः मुझे तारों के प्रकाश को, कीटों को, नीहारिकाओं को तथा पौधों और जानवरों के जीवाश्मों (fossils) को ही प्रणाम करना चाहिए क्योंकि उन सबने ही मिलकर इसके विश्लेषण तथा विचारशैली को प्रेरणा दी है।

हार्लो शेपली

विषय-सूची

अध्याय १

प्रस्तावना

केवल मानवीय कुछ भी नहीं

इस पुस्तक के लिखने का और जिन अध्ययनों पर यह आधारित है उनका उद्देश्य यह है कि जो कुछ भी स्थूल सामग्री उपलब्ध है उसी की सहायता से एक ऐसा स्थायी ज्ञान-भवन खड़ा करने का प्रयत्न किया जाय जिसमें मनुष्य और उसका जगत् दोनों ही समाविष्ट हो सकें। जो पुरानी इमारत थी उसका बहुत-सा भाग तो पिछले कई वर्षों में गिराया जा चुका है और अब यह भी आवश्यक हो गया है कि कुछ भाग और तोड़ दिया जाय। अधिकांश मानव-मिथ्याभिमान तथा अनेक मानव-केन्द्रित-तर्कों[1] के भार से मुक्त होने का प्रयत्न निरन्तर करते रहना विशेष-कर बहुत जरूरी हो गया है। हमें यह भी आशा करते रहना चाहिए कि इस समय जितना पुनर्निर्माण हम करेंगे उसका भी नवीनीकरण थोड़े ही समय के पश्चात् अनिवार्य हो जायगा। हमें तो निश्चित रूप से वर्तमान में ही काम करना है और वर्तमान आवश्यकताओं की ही पूर्ति करनी है। हमें उन सब धारणाओं का उपयोग करना चाहिए जो इस समय उपलब्ध हैं अथवा जिनका विकास तर्क तथा विवेक के द्वारा सम्भव है।

दूसरे शब्दों में हम यों कह सकते हैं कि भौतिक विज्ञान तथा हमारी अनुभूति के जगत् में मनुष्य का जो स्थान है उसके सम्बन्ध में नयी और पुरानी कुछ धारणाओं और सूचनाओं को प्रस्तुत कर देना ही इस छोटी-सी पुस्तक का उद्देश्य है। मनुष्य और अखिल ब्रह्माण्ड के पारस्परिक सम्बन्ध को समझने का ही यह प्रयास है और यह भी कह सकते हैं कि ब्रह्माण्ड के वर्णन में जो मानव केन्द्रता अब तक प्रचलित थी उसकी अन्त्येष्टि क्रिया करने का भी यह प्रयत्न है।

1. Anthropo-centre

मनुष्य की जिज्ञासु बुद्धि ने इस विषय के जितने ज्ञान का आविष्कार कियाहै उसके सर्वेक्षण ने स्वभावतः कल्पनात्मक चिन्तन, विस्मयसंजात स्वप्नदर्शन तथा वस्तुनिष्ठ और अन्तर्दर्शी दोनों ही प्रकार के दर्शन की खोज को प्रेरणा दी है। किन्तु यहाँ मैं अधिकांशतः केवल उपर्युक्त निर्माण के लिएआवश्यक सामग्री का ही संग्रह करूँगा और यह भी बताने का प्रयत्न करूँगा कि उसकेअधिक स्पष्टतः व्यक्त परिणाम क्या हो सकते हैं। पाठक अपनी इच्छानसार इस भौतिक[१] जगत् में, और सम्भवतः अ-भौतिक[२] जगत् में भी, अपने स्थान का निर्णय करने के लिए इस सामग्री का उपयोग कर सकता है। यह आयोजन सहयोगमूलक है जिसमें लेखक तथा पाठक और विवरणकर्ता तथा आलोचक दोनों की ही सहायता आवश्यक है।

उदाहरण के लिए मैं जीवधारियों के उस लम्बे अनुक्रम की अविच्छिन्नता की ओर ध्यान आकर्षित करूँगा जिसमें अकार्बनिक[३] अणुओं से प्रारम्भ करके जटिल कार्बनिक[४] अणुओं, प्राथमिक वनस्पतियों तथा जन्तुओं से लेकर करोड़ों जटिलतर संरचना वाले जीवधारियों तथा उनसे भी अधिक समुन्नत और उत्कृष्ट मनुष्यों तक का विकास सम्मिलित है। यह विकासकार्य सम्भवतः १०० करोड़ वर्षों से भी अधिक समय से निरन्तर होता रहा है। मैं तो इस निरन्तरता ही पर जोर दूंगा, किन्तु यदि पाठकों की इच्छा हो तो वे इस बात का सुझाव दे सकते हैं कि जीव-जगत् के इस प्रवाह में 'आत्मा'[५] का प्रवेश कब और कहाँ हुआ था। मैं तो अनेकानेक नीहारिकाओं[६] अर्थात् द्वीप विश्वों[७] से परिपूर्ण ब्रह्माण्ड[८] के बढ़ते हुए विस्तार का ही वर्णन करूँगा।* यह दूसरों का काम होगा कि यह बतावें कि इसका प्रादुर्भाव क्यों हुआ और इसके विकास के प्रारम्भ का कारण क्या था।

1. Material
2. Non-material
3. Inorganic
4. Organic
5. Spirit
6. Galaxies
7. Island universes
8. Cosmos

***अंग्रजी शब्द 'गैलेक्सी' (Galaxy) प्रारम्भ में (Milky way) का पर्यायवाची था और उसका अर्थ था "दूधियामार्ग"। भारत में इसे "आकाशगंगा" अथवा "मन्दाकिनी" कहते हैं। इसमें असंख्य तारें हैं। हमारा सूर्य भी इन्हीं में**

तारों से सम्वंधित तथ्यों और मानव नियति[1] के विषय में यह निवंध एक गंभीर तथा साहसिक कार्य है। नियति शब्द में दुर्लक्षण और आशंकापूर्ण ध्वनि निहित है और तथ्य भी वहुधा निष्ठुर तथा मन को विक्षुब्ध करने वाले होते हैं। तारों से भरे हुए इस जगत् में हमारी भूमिका तथा उपयोगिता के सम्बन्ध में जिस विषाद के उत्पन्न होने की संभावना है उसे कुछ देर के लिए स्थगित करने

से एक तारा है। और भी जितने तारे दिखाई देते हैं––खाली आँख से अथवा बड़ी से बड़ी दूरबीन से––वे सब इस आकाशगंगा के ही सदस्य हैं। अतः यही हमारा विश्व (Universe) है। इसका विस्तार बहुत बड़ा, किन्तु परिमित है।

किन्तु आकाश में कुछ ऐसी वस्तुएँ भी हैं जो तारों के समान बिन्दु सदृश नहीं, किन्तु बादल के टुकड़े के समान दिखाई देती हैं। इन्हें नीहारिका (nebula) कहते हैं। इनमें से कुछ तो आकाशगंगा के ही अन्तर्गत हैं। किन्तु करोड़ों हमारी आकाशगंगा से, हमारे विश्वसे, बिलकुल बाहर और बहुत ही अधिक दूरी पर स्थित हैं। ये अगांग नीहारिकाएँ (extra-galctic-nebulae) कहलाती हैं।

आधुनिक शक्तिशाली दूरबीनों से ज्ञात हो गया है कि प्रत्येक अगांग नीहारिका भी ठीक हमारी आकाशगंगा की ही तरह असंख्य तारों का समुदाय है। वह भी हमारे विश्व के ही समान दूसरा "विश्व" है। और एसे-ऐसे करोड़ों "विश्व" इस जगत् में विद्यमान हैं। अतः "विश्व" शब्द उसके प्राचीन अर्थ में अब न हमारी आकाशगंगा के लिए उपयुक्त है और न उन अगांग नीहारिकाओं के लिए। इन्हें अब "उप विश्व" (sub-univarses) अथवा "द्वीप विश्व" (island universes) कहने लगे हैं। किन्तु इनके लिए "विश्व" शब्द अब भी प्रचलित है और इसी "विश्व" शब्द के द्वारा इन करोड़ों द्वीप-विश्वों के अखिल समुदाय को भी व्यक्त किया जाता है। इसी को "ब्रह्माण्ड" भी कहते हैं और "जगत्" भी। शब्दों के इन नवीन अर्थों को ध्यान में रखना आवश्यक है।

"विश्व" शब्द के दो भिन्न अर्थों में प्रयुक्त होने से जो अर्थ की अनिश्चितता पैदा होती है उससे बचने के लिए इस पुस्तक में सब विश्वों के समुदाय के लिए "ब्रह्माण्ड" शब्द का ही प्रयोग किया गया है––"विश्व" का नहीं।

––अनुवादक

1. Destiny

और मनुष्य की भौतिक स्थिति के कारण उत्पन्न हुई भारी दुर्भावनाओं से बचने के लिए यह अच्छा होगा कि पहले हम वर्तमान परिस्थिति में जो शुभ लक्षण जीवन में विद्यमान हैं उन्हीं पर अपना ध्यान केन्द्रित करें। अतः हम इस निबंध का प्रारम्भ आशावादी भावना से कर सकते हैं। अधिक निराशात्मक विवेचन की आवश्यकता तो बाद में होगी और उसके लिए समय भी यथेष्ट मिलेगा।

हममें से बहुतों के लिए तो यह संसार शुभ और सुन्दर है। प्रकृति यथोचित रूप से दयालु है और मनुष्यमात्र की साधारण प्रवृत्ति मैत्री तथा सद्भावना-पूर्ण है। सर्वत्र ही सौन्दर्य है, मनोहर सममिति[1] है, सहकारिता है, न्यायपरता है और प्रगति है। ये सब गुण यद्यपि जन्तुरूपी मनुष्य के लिए सदैव रुचिकर नहीं होते तथापि विचारवान् मनुष्य को अवश्य ही आकर्षित करते हैं। जब हम भूख, शीत अथवा मनुष्य-कृत अनिष्ट तथा तिरस्कार से पीड़ित नहीं होते तब स्वभावतः हममें संतोष की भावना उत्पन्न हो जाती है और कभी-कभी तो हमारा मन उल्लास से भी भर जाता है।

किन्तु अपनी स्थिति और अपने उत्तरदायित्व के प्रति विनोदपूर्ण तथा कुछ-कुछ पलायनवादी भावना के बदले प्रारम्भ से ही परिपक्व जिज्ञासु की दृष्टि से इस प्रश्न पर विचार कर लेना और जगत् सम्बन्धी तथ्यों के महत्त्व को पूर्णरूप से तथा यथोचित गंभीरतापूर्वक समझ लेना उन बातों का मुकाबला करने के लिए अधिक उपयोगी होगा जो भविष्य में हमारे सामने आनेवाली हैं। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि क्षुद्र, किन्तु प्रतिभावान् मनुष्य का सामना अत्यन्त विशाल और महिमा-मय ब्रह्माण्ड से है।

इस प्रयास में पहला कदम तो यह है कि हम एक प्रारम्भिक प्रश्न पूछ लें और उसका एक संक्षिप्त, किन्तु व्यापक उत्तर प्रस्तुत कर दें। प्रश्न यह है, यह ब्रह्माण्ड क्या है ?

चार या अधिक मूल सत्ताएँ

ब्रह्माण्ड रचना[2] के सम्बन्ध में विचार और अनुसंधान में व्यस्त वैज्ञानिक और वे थोड़े-से दार्शनिक, जिनके अध्ययन में ब्रह्माण्ड-विज्ञान[3] भी समाविष्ट है, शीघ्र ही

1. Symmetry 2. Cosmolgraphy 3. Cosmology

इस परिणाम पर पहुँच जाते हैं कि यह भौतिक जगत् जिन मूलभूत सत्ताओं[1] के सम्मेलन से बना है, या जिनके द्वारा हमें उसका ज्ञान प्राप्त होता है और जिनकी सहायता से हम उसका पर्याप्त स्पष्टतापूर्वक वर्णन कर सकते हैं, उनकी संख्या चार है। हम इन को आसानी से पहचान सकते हैं, इनका नामकरण कर सकते हैं और किसी हद तक इन्हें एक-दूसरे से पृथक् भी कर सकते हैं। संभव है कि यह संख्या चार से अधिक हो। किन्तु सुगमता के लिए हम भौतिक विज्ञान के जड़ जगत् को और शायद समस्त जीव-जगत् को भी इन्हीं चार सत्ताओं के ढाँचे में निविष्ट करने के लाभ का संवरण नहीं कर सकते। वस्तुतः आकाश, काल, द्रव्य और ऊर्जा[2] ही ये सत्ताएं हैं। इनके अतिरिक्त अनेक उपसत्ताओं[3] से भी हम परिचित हैं यथा गति, वेग, पाचनक्रिया[4] एण्ट्रॉपी[5] सृष्टि[6] इत्यादि, किन्तु ये सब या तो उन्हीं चारों के विभिन्न संयोजन हैं या उन्हीं के व्युत्पन्न रूप हैं।

किन्तु प्रश्न यह उठता है कि यद्यपि अभी तक अन्य सत्ताओं का अस्तित्व सर्वमान्य नहीं हुआ है और न वे पृथक् ही की जा सकी हैं तो भी क्या कोई इनसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण अन्य सत्ताएं हैं ही नहीं? विशेषतः क्या इन चार के अतिरिक्त भौतिक जगत् का एक भी ऐसा गुण और है जो इस ब्रह्माण्ड के अस्तित्व और प्रवर्तन के लिए अनिवार्यतः आवश्यक हो? गति के जैसा ही निरपेक्ष गुणात्मक कोई और? इसी प्रश्न को व्यक्तिगत रूप में यों पूछ सकते हैं—यदि आपको ये चारों मूल सत्ताएं दे दी जायें, आपको पूरा अधिकार तथा सुविधाएँ भी प्राप्त हों और आपके मन में इच्छा भी हो तो क्या आप आकाश, काल, द्रव्य और ऊर्जा के द्वारा इस जगत् के जैसे ही दूसरे जगत् का निर्माण कर सकते हैं? या आपको किसी पाँचवीं सत्ता, मूल गुण या क्रिया की आवश्यकता पड़ जायगी?

शायद ऐसा खयाल हो सकता है कि हम इस बात पर आवश्यकता से अधिक जोर दे रहे हैं, किन्तु आगे चलकर इस रहस्यमय पाँचवीं सत्ता का अनेक बार जिक्र करना पड़ेगा। उसका अस्तित्व है, इस बात में शंका करना कठिन है। तब क्या वह कोई प्रधान सत्ता[7] है—शायद आकाश और द्रव्य से भी अधिक आधारभूत और

1. Entities
2. Space, Time, Matter, Energy
3. Quasi-entities
4. Metabolism
5. Entropy
6. Creation
7. Master entity

संभवतः जिसमें ये दोनों ही समाविष्ट हैं ? क्या वह उपर्युक्त चारों सत्ताओं से सर्वथा असदृश है[१] ? क्या उसके बिना काम चल ही नहीं सकता ? क्या वह ऐसी है जिसके ही कारण तारों, पेड़-पौधों और जीव-जन्तुओं से भरे हुए तथा प्राकृतिक नियमों से नियंत्रित इस जगत् का कार्य यथाक्रम चल रहा है ? क्या इसकी अनुपस्थिति में इस संसार की समस्त क्रियाएँ अव्यवस्थित हो जाती हैं ?

संभवतः इस सम्बन्ध में कुछ पाठकों का ध्यान ईश्वर[२] के नाम और उसके द्वारा व्यक्त धारणा की ओर जाय, किन्तु हमें ऐसे गंभीर और विवेचनीय विषय में जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए। हमें इस महत्त्वपूर्ण तथा सर्वव्यापी धारणा का उपयोग इस विश्व के केवल थोड़े-से अंश के लिए अथवा उन बातों के लिए नहीं करना चाहिए जिन्हें इस धारणा के बिना ही हमारी असंस्कृत[३] बुद्धि भी समझ सकती है। ब्रह्माण्डरचना[४] का अध्ययन करते समय हमारा संदिग्ध, किन्तु आशापूर्ण ध्यान इस संभावना की ओर आकृष्ट होता है कि संभवतः इस संसार में कुछ ऐसे प्रच्छन्न लक्षण अवश्य विद्यमान हैं जिनको प्रेरणा देने वाली कोई स्वतंत्र विश्वशक्ति[५] है जिसे हम निर्देशन, निरूपण, संचालन, सर्वशक्तिमान् की इच्छा अथवा चेतना कह सकते हैं किन्तु यदि इस संचालन अथवा चेतना का अस्तित्व हो भी तो वह विश्वव्यापी होना चाहिए। केवल मानव अथवा पार्थिव क्षेत्र के ही लिए उपयोगी किसी भी धारणा को ब्रह्माण्ड-रचना विज्ञान में स्थान प्राप्त करने का अधिकार नहीं दिया जा सकता।

१. यदि हम चाहें तो इन चारों को दो युग्मों में विभाजित कर सकते हैं—(१) आकाश और काल (दिक्-काल) तथा (२) द्रव्य और ऊर्जा। और तब हम पाँचवीं के बदले तीसरी सत्ता की खोज में प्रवृत्त हो सकते हैं।

2. God

3. Primitive

४. स्थूल रूप से इसकी परिभाषा यों दी जा सकती है : ब्रह्माण्ड (cosmos) के सम्बन्ध में ब्रह्माण्ड-रचना विज्ञान (cosmography) का वही स्थान है जो पृथ्वी के सम्बन्ध में भूगोल (geography) का है।

5. World-dynamic

क्या ? कैसे ? क्यो ?

पिछले पृष्ठों में हम कई जगह यह प्रकट कर चके हैं कि इस ब्रह्माण्ड के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान सीमित है। जिस ज्ञान को हम अन्ततः अपनी वद्धि द्वारा ग्राह्य समझते हैं उसकी तुलना में हम कितना कम जानते हैं इस पर विचार करने से हमें आश्चर्य-चकित हो जाना पड़ता है, और जो हमारी बुद्धि की पहुँच से बाहर है उसकी तुलना में संभवतः यह बोधगम्य अंश बहुत ही छोटा है। अंध-विश्वासों और प्राचीन मान्यताओं[1] की भक्ति ने हमें इस जगत् के सम्बन्ध में अत्यन्त आदिम और अपरिपक्व विचारों के दलदल में ही अब तक फँसाये रखा है। जरा सोचिए कि यदि हम पौराणिक कहानियों, अनेक सामाजिक रूढ़ियों तथा जातीय नीतियों की जंजीरों से जकड़े हुए न होते तो आज हम कहाँ पहुँच जाते। उदाहरणार्थ, अब तक हमारी मानसिक उन्नति कितनी हो गयी होती यदि हम धन संपत्ति की अपेक्षा बुद्धि तथा आत्मा[2] को अधिक महत्त्व देते। संभवतः ऐसा समय अवश्य आयेगा जब हमारे ज्ञान की अपूर्णता इतनी नहीं रहेगी जितनी आज है और हम निम्नलिखित तीन प्रश्नों का उत्तर देने में असमर्थ हो सकेंगे।

इस ब्रह्माण्ड का स्वरूप क्या है ?

इस ब्रह्माण्ड की क्रिया कैसे होती है ?

इस ब्रह्माण्ड का अस्तित्व क्यों है ?

पहले प्रश्न—क्या ?—का प्राथमिक तथा स्थूल उत्तर हम दे सकते हैं और इस साहसिक, किन्तु आंशिक उत्तर में हम जड़ द्रव्य, गरुत्वाकर्षण[3], काल, प्रोटोप्लाज्म[4] आदि के विषय में कुछ अस्पष्ट बातें कह भी सकते हैं। दूसरे प्रश्न—कैसे? के उत्तर में हम प्राकृतिक नियमों का, ऊष्मा के लोप हो जाने का तथा नीहारिकाओं[5] (द्वीप विश्वों) के निरन्तर दूरगामी पलायन का उल्लेख करने का भी साहस कर सकते हैं। किन्तु "इस ब्रह्माण्ड का अस्तित्व क्यों हैं ?" इस प्रश्न के उत्तर में शायद हमें यही कहना पड़ेगा कि "ईश्वर ही जाने"। ऐसा मालूम पड़ता है कि इस विषय के ज्ञान पर प्रतिबंध लगा हुआ है और हमारे

1. Dogmas
2. Psyche
3. Gravitation
4. Protoplasm
5. Galaxies

लिए यह ज्ञान अप्राप्य है। किन्तु हमारे जिज्ञासु स्वभाव में सुधार की योग्यता न होने के कारण, हमारे मन में पुनः यह प्रश्न उठने लगता है कि ब्रह्माण्ड सम्बंधी "क्यों ?" पर प्रतिबंध क्यों हैं और हमें इस मंत्रणा को स्वीकार क्यों कर लेना चाहिए कि जो रहस्य इस समय हमारी बुद्धि से परे हैं वे सदैव अभेद्य ही बने रहेंगे। प्राचीन काल में जिन अबोध्य बातों के कारण हमारे पूर्वज परेशान रहते थे वे आज हमारे लिए अत्यन्त साधारण तर्क-संगत तथ्य अथवा क्रियाएँ हो गयी हैं। उनमें से रहस्य का अंश गायब हो गया है। यदि हम ऐसा ही कठिन परिश्रम बराबर करते रहें और स्पष्टतया तथा गंभीरता-पूर्वक चिन्तन करते रहें तो क्या इस ब्रह्माण्ड-सम्बन्धी बड़े-बड़े "क्यों-ओं" में से कुछ का उत्तर देने में हम समर्थ नहीं हो सकेंगे ? संभवतः दार्शनिक लोग तो कहेंगे "नहीं !" किन्तु मैं तो इस प्रश्न को अभी यों ही पड़ा रहने दूंगा।

विवेचन की योजना

इस छोटे निबंध के मुख्य तर्कों को प्रस्तुत करने के लिए मैं इस विवेचन को उन थोड़े-से पदक्षेपों तक ही सीमित रखना चाहता हूँ, जो हमारे मन और आचरण को उन बातों से समन्वित करने के लिए आवश्यक हैं जिन्हें मैं ब्रह्माण्डीय[1] तथ्य कहना पसंद करता हूँ। शायद वास्तविकता द्योतक शब्द "तथ्य" के स्थान में "निदर्शन[2] शब्द का उपयोग अधिक उचित होगा। वे पदक्षेप निम्नलिखित हैं—

(१) ब्रह्माण्ड में मनुष्य के स्थान तथा कार्य के सम्बंध में नये सिरे से विचार करने की आवश्यकता का विवेचन। क्या इस बात के लिए यथेष्ट कारण विद्यमान हैं कि हमारे मन में जो कुछ थोड़ी-सी शान्ति है उसे भी हम उन नयी बातों की वजह से विक्षुब्ध कर दें जिन्हें बताने का प्रयत्न विज्ञान कर रहा है ? इसका उत्तर स्वीकारात्मक है। निश्चय ही हमें ऐसा करना चाहिए। हमें अपने कार्य के लिए जो संशोधित निर्देश प्राप्त हुए हैं और हमारी संभाव्य शक्ति का जो नवीन परिचय मिला है उन्हें सामने रख कर ही आगे बढ़ना चाहिए।

(२) हमने अपनी इन्द्रियों द्वारा संगृहीत ज्ञान तथा तर्क की सहायता से भौतिक ब्रह्माण्ड के जिस रूप का अनुमान किया है उसमें पृथ्वी का (तथा मनुष्य का) स्थान[3] निर्धारण। यह खोज हमें उन चारों ही मूल सत्ताओं में

1. Cosmic facts 2. Indication 3. Place

करनी पड़ेगी। हमें अपना स्थान न केवल आकश में ही खोजना है, किन्तु काल में, जड़द्रव्य में तथा ऊर्जा में भी। हमारे सामने प्रश्न यह है कि इस अभियान में क्या मनुष्य सेनापति के स्थान पर अधिष्ठित है या वह केवल साधारण सिपाही है? या उसकी गिनती सैनिकों में न होकर केवल अनुचरों में ही है और क्या जिन तारों से उनका जन्म हुआ था उनकी तुलना में उसे तुच्छ और उपेक्षणीय समझा जा सकता है? हम यह प्रमाणित करेंगे कि अब उसका भौतिक स्थान भली-भाँति निर्धारित हो गया है और यदि एक विशेष दृष्टिकोण से देखा जाय तो वह बिलकुल नगण्य भी नहीं है।

(३) पृथ्वी की उत्पत्ति तथा जीवजन्तु युक्त ग्रहों[1] की संख्या और उनके वितरण से सम्बन्धित समस्याओं का विवेचन।

(४) चेतनायुक्त जीवन[2] के स्वरूप तथा स्वभाव का और इस विशाल जगत् में उसके निवास-स्थानों का प्रश्न। क्या जीवन का प्रादुर्भाव एक स्थानीय क्रिया है जिसका विकास केवल इस पृथ्वी के पृष्ठ के निकटवर्ती विशेष प्रकार की परिस्थितियों में ही हुआ है अथवा यह प्रक्रिया ब्रह्माण्ड भर में फैली हुई है? (यह सत्य है कि अभी तक जीव की उत्पत्ति तथा उसका अभिप्राय भी पूरी तरह स्पष्ट नहीं हो पाया है। फिर भी हमें इससे भी अधिक गभीर समस्याओं का अस्तित्व भी स्वीकार करना पड़ता है)।

(५) पृथ्वी-निबद्ध मनुष्य की ब्रह्माण्ड-सम्बन्धी धारणाओं के विकास में चतुर्थ समन्वय[3]। प्रारम्भ की प्रतिकूल तथा विद्वेषी परिस्थितियों में उसका दृष्टिकोण आत्मकेन्द्रित था। अब उस के दृष्टि-कोण में ज्योतिष तथा जीव-विज्ञान द्वारा प्रस्तुत प्रमाणों के साथ अधिक सामंजस्य आ गया है। प्रकृति की प्रतिकूलता अब कोई उपयोगी धारणा नहीं समझी जाती।

(६) जातिगत मन[4] की कल्पना तथा ब्रह्माण्ड-रचना सम्बन्धी खोज के लिए उपयोगी ज्ञान की प्राप्ति के साधनों के रूप में ज्ञानेन्द्रियों का प्रारम्भिक अन्वेषण।

(७) अन्त में प्रधान पार्थिव जन्तु के रूप में मनुष्य के भविष्य के सम्बन्ध

1. Planets
2. Sentient life
3. Fourth adjustment
4. Generic Mind

में कुछ सुझाव दिये गये हैं। यह कल्पना के लिए अत्यन्त उर्वर क्षेत्र है और आशा तथा निराशा एवं सन्तुष्टि तथा संशय के लिए भी। इनसे हमारा ध्यान इन प्रश्नों की ओर भी आकृष्ट होता है कि मनुष्य जाति अन्त में जीवित रह सकेगी या नहीं और मनुष्य को अपना कार्यक्रम कैसा बनाना चाहिए तथा इन प्रश्नों के आधार पर उसकी दर्शनिक प्रवृत्ति कैसी होनी चाहिए।

संक्षेप में इस प्रथम अध्याय में यह बताया गया है कि ज्ञान का जो आधुनिक विकास हुआ है--विशेषकर वैज्ञानिक क्षेत्र में--और उसके द्वारा इस जगत् में मनुष्य की जो स्थिति प्रकट हुई है, उस पर विचार करने की योजना का उद्देश्य क्या होना चाहिए और उसकी रूपरेखा कैसी होनी चाहिए। हमने भौतिक जगत् की चार आधार-भूत सत्ताओं के नाम बता कर जीवन की व्यवस्था और उसके अभिप्राय को समझने का रास्ता कर दिया है। इस अध्ययन का प्रारम्भ करने के उद्देश्य से हमने पाठकों के समक्ष ब्रह्माण्डीय भवन[1] के निर्माण में कारीगरों की सहायता के लिए पाड़[2] मात्र खड़ी कर दी है--कम से कम एक नीलमुद्र[3] का खाका तो खींच ही दिया है। आगे के पृष्ठों में इस नकशे में कुछ अधिक ब्योरा अंकित करना पड़ेगा। किन्तु इतने से ही पूर्णतः निर्मित और परिष्कृत भवन प्राप्त नहीं हो जायगा। अभी तो मैं यह भी निर्णय नहीं कर सका हूँ कि हम लोग इस भवन की नींव पर काम कर रहे हैं या छत पर। अधिक संभावना तो यह है कि अभी हम एक उपयोगी और औजार रखने का गोदाम ही बनाने में व्यस्त हैं। अभी तो हमारी विनम्र आकांक्षा इतनी ही है। वास्तविक भवन तो इसके बाद ही बन सकेगा।

जिस भवन का हम निर्माण करना चाहते हैं उसका नाम क्या होना चाहिए ? इसे हम सर्वमान्य अर्थ में विज्ञान तो नहीं कह सकते। तब क्या यह तत्त्व-ज्ञान है या धर्म है या मनुष्य की लालसा है, निराशा है अथवा आशा है ? आपाततः हम इसे विवेक-संभूत समन्वय[4] ही कह सकते हैं।

1. Cosmic castle
2. Scaffold
3. Blue-print
4. Adjustment through understanding

अध्याय २

नयी मदिराओं के लिए नयी बोतलें

सब से पहले हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे, "क्या इस संसार में मनुष्य-जाति के स्थान और कार्य सम्बन्धी प्रचलित धारणाओं में संशोधन करने के लिए इस समय यथेष्ट कारण नहीं हैं ?" इसका तुरन्त ही हम उत्तर भी दे सकते हैं कि "हाँ"। बहुत-से नवीन ज्ञान से युक्त वैज्ञानिकों के लिए तथा विभ्रांत जनसाधारण के लिए और संभवत: कुछ दार्शनिकों के लिए भी इसका उत्तर निश्चय ही स्वीकारात्मक है। इस प्रश्न पर पुन: विचार करने के लिए सबसे पहला कारण तो यह है कि पिछले कई वर्षों में इस तारकीय ब्रह्माण्ड के केन्द्र से ही नहीं, किन्तु अन्य सभी गौरवशाली स्थानों से भी सूर्य, पृथ्वी तथा अन्य ग्रह विस्थापित हो गये हैं और प्रेक्षक (मानव) अब एकसामान्य नीहारिका की म्लान सर्पिल[१] भुजा के अत्यन्त प्रतिष्ठाहीन स्थान में रख दिया गया है।

यह कारण प्राथमिक होने पर भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसका आधार यह है कि ब्रह्माण्ड-रचना के भू-केन्द्रीय[२] तथा सूर्य-केन्द्रीय[३] सिद्धान्तों की जगह अब हम सब ने उत्केन्द्र[४] संरचना को स्वीकार कर लिया है। ऐसा करके हमने ब्रह्माण्डीय समन्वय[५] सम्बन्धी प्रगति में बहुत बड़ा कदम बढ़ाया है। इसमें सन्देह नहीं हो सकता कि यह कदम ऐसा है जो वापस लौटाया नहीं जा सकता। अब हमें इस तथ्य को स्वीकार करने का अभ्यास हो जाना चाहिए कि हम सीमान्तवासी[६] हैं और हम अपने तारे (सूर्य) के साथ-साथ जिस नीहारिका के बाह्य-भाग में विचरण कर रहे हैं, उसके ही सदृश तारों से भरी अरबों नीहारिकाएँ और भी विद्यमान हैं।

1. Spiral
2. Geo-centric
3. Helio-centric
4. Eccentric
5. Cosmic adjustment
6. Peripheral

यदि आकाश और काल में हमारी स्थिति का कुछ गौरव हो भी तो मैं उससे परिचित नहीं हो सका हूँ। हमारी तेजस्विता का कारण तो कुछ दूसरा ही है। और क्या अब यह आवश्यक नहीं हो गया है कि हम इस अहंकारपूर्ण तथा क्रान्तिकारी विश्वास का खुला विरोध करें कि मनुष्य में किसी न किसी प्रकार की विशिष्टता और उत्कृष्टता विद्यमान है? यह संभव है कि उसमें ये गुण हों। मेरी आशा भी यही है। किन्तु निश्चय ही यह श्रेष्ठता न तो आकाश में या काल में उसकी स्थिति के कारण ही हो सकती है और न उसकी शक्ति अथवा रासायनिक संघटन[1] के कारण। पूर्वोक्त चार मूल सत्ताओं—आकाश, काल, द्रव्य तथा ऊर्जा—की दृष्टि से तो उसमें असाधारणता का बिलकुल ही अभाव है। उसके आकार में, उसके आचरण में, उसके संघटन में या इस जगत् के इतिहास के मानस कल्प[2] में कोई भी ऐसी बात नहीं है जिसे अद्वितीय तथा अभिमान के योग्य समझा जा सके। यह सत्य है कि संसार में उसकी उपस्थिति प्रकृति की एक दुर्बोध तथा रोचक घटना है। किन्तु इस पुस्तक के आगे के अध्यायों में पहुँचने से पहले ही हमें उसके सम्बन्ध में भावुक अथवा आत्म-प्रशंसक नहीं हो जाना चाहिए और जब ऐसा अवसर आये तब भी अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रखना चाहिए। इस जगत् में मनुष्य के महत्त्व सम्बन्धी हमारी भ्रान्त धारणाओं के मायाजाल को साफ कर देने पर ही हम मानव-मन की गरिमा पर विचार करने के लिए तथा विश्व के व्यापार को समझने में मनुष्य की शक्ति, उसकी सार्थकता तथा उसकी कुशलता का अनुमान करने के लिए अधिक उत्तम स्थिति में हो सकेंगे।

आत्म-केन्द्रिता[3] तथा मानवरूपिता[4] ने दीर्घकाल से हमारे विचारों पर आधिपत्य जमा रखा है और हमारे निर्णयों को तिमिराच्छन्न कर रखा है। संभवतः यह अनिवार्य भी है। हम मनुष्य हैं और हमारे विचारों में शुद्ध वस्तु-निष्ठता[5] आ ही नहीं सकती। हमें इस संसार का ज्ञान अपनी ज्ञानेन्द्रियों के ही द्वारा प्राप्त हो सकता है। ब्रह्माण्ड के सम्बन्ध में हमारे लिए कीड़ों या प्रोटानों[6]

1. Chemical composition
2. Psychozoic era
3. Ego-centrism
4. Anthropomorphism
5. Objectivity
6. Protons

या धूमकेतुओं[1] के दृष्टिकोण की कल्पना करना आसान नहीं है और न हम उसका बुद्धिमानी से उपयोग ही कर सकते हैं। किन्तु हमें यह भी स्वीकार करना ही पड़ता है कि व्यक्तिनिष्ठ[2] विचारधारा में—सदैव अपनी अथवा मानवजाति की दृष्टि से ही विचारने तथा आचरण करने में--गम्भीर सीमितता होती है। यह भ्रमजाल से परिपूर्ण है। ब्रह्माण्ड का सच्चा और संतोषप्रद चित्र खींचने के लिए केवल वस्तुनिष्ठता ही एकमात्र उपयुक्त तूलिका है और उस के ही द्वारा मानवता के अन्वेषण का विश्व के साथ सम्बन्ध स्पष्ट और साफ-साफ चित्रित किया जा सकता है।

जन्तुरूप में मनष्य की तथाकल्पित उत्कृष्टता, अखिल ब्रह्माण्ड के लिए जीवधारियों के—विशेषकर मानव जीवन के—महत्त्व की कल्पित धारणा और यह भावना या दृढ़ विश्वास कि विशाल भू-वैज्ञानिक युगों[3] के काल-प्रवाह में हमारा वर्तमान क्षण किसी न किसी प्रकार अत्यन्त ही अर्थपूर्ण है--इन सब सुखसाध्य मान्यताओं की सत्यता की शंकित चित्त से परीक्षा करना आवश्यक है। निर्णीत के मापदंड से निर्णयकर्ता का समुचित मूल्यांकन कर सकने के लिए और हमारी स्वतः प्रेरित[4] आत्मकेन्द्रिता का यत्किंचित् निराकरण करने के लिए शायद तारों और नीहारिकाओं के प्रभाव को आवश्यकता से अधिक महत्त्व देना जरूरी है। "यद्यपि इनकी अग्नि शीतल मालूम देती है तथापि इनमें मनुष्य पर नगण्यता की उत्तप्त छाप अंकित कर देने की क्षमता है।"

किन्तु हमारी भौतिक निरर्थकता के कारण हमारे मन में हीनता की भावना उत्पन्न नहीं होनी चाहिए। चिड़िया हमसे बहुत अधिक वेगवान् होती है, हिपोपोटेमस का शरीर हमारे शरीर से बहुत अधिक बड़ा होता है, कुत्ते की श्रवण शक्ति हमारी अपेक्षा बहुत प्रबल होती है और कीड़ों में गंध को पहचानने की क्षमता हमारी अपेक्षा कहीं अच्छी होती है। इन बातों से क्या हमें अपने अपमान का बोध होता है? अपनी हीनता की इन साक्षियों के कारण हम विक्षुब्ध नहीं होते और अपने मन में गौरव तथा सुख-शान्ति की भावना बनाये रखते हैं। तारों के सम्बन्ध में भी हमें ऐसा ही करना चाहिए। हमें समस्त ब्रह्माण्डीय

1. Comets
2. Subjective
3. Geological ages
4. Automatic

तथ्यों के साथ अपना समन्वय कर लेना चाहिए। जो काम हमारे लिए नियत है वह चाहे कितना ही छोटा क्यों न हो फिर भी उसको करते रहने के लिए यह जगत् अत्यन्त सुन्दर तथा श्रेष्ठ स्थान है।

अनेक पूर्वकालीन प्रसिद्ध पुरुषों ने इस बात का शांतचित्त से वर्णन किया है कि दुर्बल तथा नाजुक मनुष्य को इस विश्व की क्रूर शीतलता से अपनी रक्षा करने में व्यस्त रहना पड़ता है। कई व्याकुल होकर निराशाग्रस्त भी हो गये हैं। और बहुतों को तो इस बात का दृढ़ विश्वास हो गया है कि इस विश्व-नाटक में चिन्तनशील मानव को जो भूमिका मिली है वह अनुपयुक्त है, क्योंकि यद्यपि उसके सामने सोचने और करने के लिए तो बहुत कुछ है तथापि वह अपने आप को इस पृथ्वी के बंधन में जकड़ा हुआ पाता है और इस कारागार से छुटकारा पाने की भी उसे कोई आशा नहीं दिखाई देती। इसके अतिरिक्त उसकी आयु भी थोड़ी है और अपने प्रारम्भिक जंगली जीवन से प्राप्त पाशविक आदतों तथा अपने सन्निकट पूर्वजों से प्राप्त विश्वासों तथा सिद्धान्तों की दासता में भी वह फँसा हुआ है।

यह सच है कि थोड़े-से अन्वेषकों ने अपनी आँखें खुली रखी हैं और वे यह आशा करते रहे हैं कि परिमित होने पर भी मानव बुद्धि इस विश्व की समस्याओं से उत्तरोत्तर अधिक सफलता-पूर्वक निपट सकती है। किन्तु संभवतः अधिकांश चिन्तकों ने आगे या पीछे इस व्याकुलता से बचने के लिए आज्ञा-प्रधान धर्म ग्रन्थों की शरण में जाकर शान्ति प्राप्त कर ली है।

इस ब्रह्माण्ड के सम्बन्ध में हमें अनेक नयी तथा आधारभूत बातें मालूम हो जाने से अब इस बात के कई कारण दिखाई देने लगे हैं कि आधुनिक चिन्तक इस जगत् का निर्वचन[1] मूसा,[2] ल्यूक्रटियस[3],स्पिनोजा[4],लॉक[5] या पास्कल[6] की अपेक्षा अधिक तथ्यपूर्ण तथा तर्कसंगत रीति से कर सकते हैं। और उन्हें ऐसा करना भी चाहिए क्योंकि उन लोगों का ब्रह्माण्ड-विज्ञान भू-केन्द्रीय अथवा सूर्य केन्द्रीय था तथा सीमित भी था। अब हमारा ज्ञान गहन है और हमारे पास

1. Interpretation
2. Moses
3. Lucretius
4. Spinoza
5. Locke
6. Pascal

बहुत-सी निर्णायक सामग्री भी संगृहीत हो गयी है। पूर्ववर्ती शताब्दियों के दार्शनिकों को यह सब उपलब्ध नहीं था। हम लोग ऐसे तथ्यों का संग्रह करने में बहुत दूर पहुँच गये हैं जिनका सत्यापन[1] किया जा सकता है। और हमें यह भी अवश्य स्मरण रखना चाहिए कि यदि हम सभ्य बने रहे तो अब पीछे लौटना संभव नहीं है। अब तो हमें अपनी वैज्ञानिक उपलब्धियों के साथ ही रहना पड़ेगा। चाहे सूक्ष्म बातों के विषय में कितना ही सन्देह हो, चाहे प्रेक्षणों की सत्यता के विरुद्ध कितनी ही आवाजें उठायी जायें, चाहे विज्ञान के आधुनिक आविष्कारों को कितने ही विकृत रूप में प्रस्तुत किया जाय, तब भी इस बौद्धिक प्रगति को मिटाया नहीं जा सकता। हम चाहे कितनी ही कामना करें तो भी हमारी प्रिय, किन्तु मृत अभिकल्पनाएँ पुनर्जीवित नहीं हो सकतीं।

अंकगणित सम्बन्धी संक्षिप्त विषयान्तर

यह स्थूलजगत्[2] इतना विशाल है और सूक्ष्मजगत्[3] के मूल कारण इतने छोटे-छोटे हैं कि उनकी लम्बाई-चौड़ाई के मापों की तुलना, जैसी कि पृष्ठ ३४ पर द्रव्य के संगठन-सम्बन्धी सारणी में प्रदर्शित है, अत्यन्त कष्टकर हो जाती है। यदि हम इस दिक्-कालमय ब्रह्माण्ड के मूल कणों की संख्या का अनुमान अंकों में लिखना चाहें तो शायद अस्सी या नब्बे अंक लिखने पड़ेंगे। इसमें परिश्रम कितना अधिक करना पड़ेगा? और तब भी उस संख्या का अर्थ समझना, उसकी कल्पना को बुद्धिग्राह्य करना असंभव है। अमीबा[4] नामक क्षुद्र जन्तु की तुलना में एक नीहारिका एक हजार करोड़-करोड़ करोड़ गुनी बड़ी होती है और इलैक्ट्रान[5] की तुलना में यही अमीबा भीमकाय दानव समझा जा सकता है। इसी प्रकार काल-सम्बन्धी राशियों[6] की तुलना भी अत्यन्त कष्ट-साध्य है। उदाहरण के लिए किसी सर्पिल नीहारिका के घूर्णन काल[7] और अमोनिया[8] के एक अणु[9]

1. Verification
2. Macrocosmos
3. Microscosmos
4. Amoepa
5. Electron
6. Quantities
7. Rotation period
8. Ammonia
9. Molecule

के कम्पनकाल[1] का अनुपात[2] एक लाख अरब खरब से भी बड़ा है। इन संख्याओं को व्यक्त करने के लिए हमें अधिक सरल पद्धति की आवश्यकता है।

संख्याओं को व्यक्त करने की इस प्रभावशाली, किन्तु क्लेशदायक पद्धति से छुटकारा पाने के लिए हम घातीय अंकगणित[3] का उपयोग कर सकते हैं जिसमें छोटी और बड़ी सभी संख्याएँ १० के घातों[4] के द्वारा व्यक्त की जाती हैं। यह युक्ति सरल भी है और सुविधाजनक भी है। १० का द्वितीय घात (अर्थात् $१०^{२}$) सौ के बराबर होता है। $१०^{३}=१०००$=एक हजार; $१०^{-३}=\frac{१}{१०००}$=हजारवाँ भाग; $१०^{६}$=दस लाख; $१०^{-६}$=दस लाखवाँ भाग; $१०^{११}$=एक खरब; इत्यादि इत्यादि। एक ग्राम हाइड्रोजन में परमाणुओं की सख्या ६×१०^{२३} होती है। इस संख्या को पुरानी पद्धति में लिखने के लिए ६ के पीछे २३ शून्य लगाने पड़ेंगे। पृथ्वी की ठोस पपड़ी की आयु लगभग ५×१०^{९} वर्ष की है अर्थात् ५ अरब वर्ष। प्रकाश का वेग ३×१०^{१०} सेण्टीमीटर प्रति सेकंड है। और दो नीहारिकाओं के बीच वाले आकाश में द्रव्य का औसत घनत्व $१०^{-२९}$ ग्राम प्रतिघन सेंटीमीटर है। स्पष्ट है कि इस संख्या को व्यक्त करने के लिए १ के नीचे १,०००,००० के पीछे २३ शून्य और लिखने के स्थान में $१०^{-२९}$ लिखना बहुत अधिक सुगम और सुन्दर है।

ऐसी बड़ी संख्याओं को परस्पर गुणा करने के लिए हम केवल घातांकों को जोड़ देते हैं। जैसे $१०^{१४}\times१०^{१२}=१०^{२६}$ यदि संख्याओं में कोई गुणांक[5] होते हैं तो उनका साधारण रीति से गुणा कर दिया जाता है। जैसे $(२\times१०^{७})(३.१\times१०^{७})=६.२\times१०^{१४}$। यह दो करोड़ वर्षों में जितने सेकंड होते हैं उनकी संख्या है।

भाग देने के लिए घातांकों की बाकी निकाल ली जाती है। यथा $१०^{१६}\div१०^{२}=१०^{१४}$।

जोड़ने की क्रिया तो स्पष्ट ही है—$२.४\times१०^{७}+१.५\times१०^{६}=२.४\times१०^{७}+०.१५\times१०^{७}=(२.४+०.१५)\times१०^{७}=२.५५\times१०^{७}$। इसका उपयोग बहुत कम किया जाता है।

1. Vibration period 2. Ratio 3. Power arithmetic
4. powers 5. Coefficients

विवेचन का पूर्वदर्शन

व्यापक अर्थ में जिसे हम विज्ञान कहते हैं उसके क्षेत्र में हमारे ज्ञान की जो प्रगति हुई है और धर्म-शास्त्रीय शासन से आजकल हमें पहले की अपेक्षा अधिक स्तन्त्रता प्राप्त हुई है उसके कारण अनेक नवीन विचारधाराएँ प्रकट हो गयी हैं और सूक्ष्मविश्लेषण के अनेक नये मार्ग खुल गये हैं। यदि पूर्वकालीन चिन्तकों को इनका ज्ञान होता तो उनके इस संसार की उत्पत्ति सम्बन्धी सिद्धान्तों में अवश्य ही गंभीर परिवर्तन हो जाता और मूल कारणों की आलोचना पर गहरा असर पड़ता। जीव, द्रव्य तथा आकाश सम्बन्धी नये आविष्कारों का प्रभाव दार्शनिक तत्त्व-ज्ञान पर पड़ना ही चाहिए और सामान्यत: यह स्वीकार भी किया जाता है कि इनमें गहरा सम्बन्ध है। इन आविष्कारों की सत्यता के लिए प्रचुर प्रमाण उपलब्ध हैं और उन्हें विश्वासोत्पादक रूप में प्रस्तुत भी किया जा सकता है। किन्तु यहाँ तो हमें कुछ ऐसे विकासों की ओर संक्षिप्त संकेत मात्र से ही संतोष करना चाहिए जिनके कारण हमारी विचारधारा की दिशा में परिवर्तन हो गया है। इन्हें हम अहंसंकोची[१] आविष्करण कह सकते हैं। आगे के अध्यायों में इनमें से अधिकांश का विस्तृत विवरण दिया जायगा।

१. स्वभावत: मैं इस आलोचना का प्रारम्भ तारों से ही करूँगा और पाठक का ध्यान इस बात की ओर आकर्षित करूँगा कि अब हमारी वैज्ञानिक दृष्टि के अन्तर्गत सूर्यों की संख्या प्राचीन हिन्दुओं तथा यूनानियों द्वारा खाली आँख से देखी गयी संख्या-मात्र अर्थात् केवल पाँच या छ: हजार ही नहीं रह गयी है, न वह गैलीलियो[२] तथा न्यूटन[३] के समय की दूरबीनों द्वारा प्रदर्शित दस लाख है, न विगत पीढ़ी में स्वीकृत कई अरब ही है। आधुनिक सर्वेक्षण में गिने हुए तारों की संख्या $१०^{२०}$ अर्थात् दस सहस्र करोड़ अरब से भी अधिक है। और इनमें से प्रत्येक तारा अपने विकिरण[४] के द्वारा उन सब ग्रहों में जीवनोपयोगी ईंधन पहुँचाता है जो आकाश की अगाध गहराइयों में युगयुगान्तर से निरन्तर यात्रा कर रहे हैं। इस भौतिक जगत् में मनुष्य के स्थान तथा उसके द्वारा सम्पन्न कार्य के मूल्यांकन में तारों की इस अति विपुल संख्या का महत्त्व स्पष्ट ही है।

1. Ego-shrinking
2. Galileo
3. Newton
4. Radiation

२. जीव की उत्पत्ति को अब किसी प्रकार का गूढ़ रहस्य नहीं समझा जा सकता। जिस जीव-रासायनिक विकास को हमने 'जीव' की संज्ञा दे रखी है उसमें अब किसी अति-प्राकृतिक[1] अथवा प्रकृति-बाह्य हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है। इसके लिए सर्वथा प्राकृतिक प्रक्रियाएँ ही पर्याप्त हैं और इनमें से अधिकांश तो हमें इस समय भी ज्ञात हैं। हम कम से कम अभी तो यही समझते हैं कि हमने जीव तथा अजीव के बीच की खाई पर पुल बना लिया है। एक ओर से तो सूक्ष्म जीवविज्ञानी[2] अपने अनुसन्धान में सूक्ष्म जीवकोषिका[3] से जीव-रहित अणु की ओर उतर कर तथा दूसरी ओर से रसायन-विज्ञानी[4] परमाणु से जीवकोषिका की ओर उतर कर तथा दूसरी ओर से रसायन विज्ञानी[4] परमाणु से जीवकोषिका की ओर ऊपर चढ़ कर लगभग एक दूसरे से मिल गये हैं। किन्तु अभी इस पुल के ढाँचे को पूरा और परिष्कृत करने के लिए बहुत-सा काम बाकी है। पुल पर पहुँचने के लिए दोनों ओर सड़कों का निर्माण करना है, उसकी मजबूती की ओर भी ध्यान देना है और उस पर फर्श बना कर उसे चलने योग्य भी बनाना है। अजीव को जीव में परिणत करने के इस कार्य में प्रवृत्त कारीगरों अर्थात् रसायन-विज्ञानियों तथा जीव-विज्ञानियों को अनेक अन्यवैज्ञानिक भी सहायता पहुँचा रहे हैं; यथा भूगर्भ-विज्ञानी जिन्होंने जीवाश्मी अर्थात् फासिलमय[5] चट्टानों से प्राप्त जीवधारियों के शिलाभूत अवशेषों का विश्लेषण किया है, ज्योतिषी जिन्होंने कैम्ब्रियन[6] युग से भी पहले के दीर्घकाल-व्यापी युग का पता लगाया है, सांख्यिकी के ज्ञाता[7] जिन्होंने यह प्रमाणित कर दिया है कि यदि समय बहुत लम्बा हो और सामग्री प्रचुर हो तो अत्यन्त ही अप्रायिक[8] अथवा लगभग असम्भव समझी जाने वाली घटनाएँ भी सम्भव हो सकती हैं, यथा छोटे-छोटे अणुओं के आकस्मिक संश्लेषण[9] से अमीनोएसिड[10] की उत्पत्ति। इन कार्यों में नयी प्रक्रियाओं, नये तथ्यों तथा नये अनुमानों और निर्णयों की आवश्यकता हुई है। अध्याय ९ में इस परिस्थिति पर और अधिक विचार किया गया है।

1. Supernatural
2. Micro-biologist
3. Cell
4. Chemist
5. Fossiliferous
6. Cambrian
7. Statistician
8. Improbable
9, Accidental synthesis
10. Amino-acid

३. इस पृथ्वी पर जीवधारियों के विकास के इतिहास में मानस-जीवकल्प[1]* की अल्पकालीनता और हमारे अपने द्वीप विश्व में––हमारी आकाशगंगा में–– पृथ्वी के स्थान की उपान्तीयता के ज्ञान का एक अत्यन्त उपयोगी परिणाम यह निकला है या शीघ्र ही निकलेगा कि विचारशील मानव का अहंकार अच्छी तरह नियंत्रित हो गया है या शीघ्र ही होने वाला है। अब वह समस्त सृष्टि को पहले की अपेक्षा अधिक वस्तुनिष्ठ दृष्टि से देखने लगा है या देख सकेगा। उसे अब केवल पृथ्वी से ही आसक्तचित्त रहने की आवश्यकता नहीं है और न इसका उसे अधिकार ही है।

४. समस्त जगत् में जीवों के अत्यन्त विकसित रूपों की तथा मस्तिष्क-युक्त प्राणियों की सम्भावना पर प्रचुरता के कारण हमें यह स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पड़ता है कि मनुष्य तथा अन्य समस्त ज्ञात प्राणियों को जैविक विकासों का केवल एक अंश-मात्र ही समझना चाहिए। अधिक सम्भावना तो यह है कि यह उस विकास का सर्वोत्कृष्ट रूप भी नहीं है––'सर्वोत्कृष्ट'' शब्द का जो भी अर्थ हो। आगे चलकर यह स्पष्ट हो जायगा कि जहाँ कहीं रासायनिक, भौगोलिक तथा मौसम सम्बन्धी परिस्थितियाँ अनुकूल होती हैं वहीं जीव की उत्पत्ति और विकास अनिवार्य हो जाते हैं।

५. इस संसार में ऐसी विलक्षण इन्द्रियों तथा ज्ञानेन्द्रियों के अस्तित्व की भी बहुत अधिक सम्भावना दिखाई देती है जिनसे मनुष्य अभी बिलकुल ही परिचित नहीं है। वस्तुतः उनका अस्तित्व इतना तर्कसंगत है कि उसे स्वयं सिद्ध[2] समझा जा सकता है। और श्रेष्ठता की भावना से आंशिक मुक्ति प्राप्त हो जाने के कारण हमारी कल्पना-शक्ति के लिए इस सम्भावना का महत्त्व प्रकट ही है। पृथ्वी-निवासी मनुष्य के लिए अनेक वास्तविक सत्ताओं के कल्पनातीत

1. Psycho-zoic Era

*यही वह युग है जिसमें पृथ्वी की पृष्ठीय पपड़ी से संलग्न नीचे की परत बनी थी और जिसे अभिनूतन युग अथवा प्लाइस्टोसीन युग (Pleistocene period) कहते हैं। मनुष्य के विकास के प्रसंग में इस युग पर विचार आगे चल कर किया जायगा।

2. Axiomatic

होने का स्पष्ट कारण यही है कि हमारी ज्ञानेन्द्रिय-सम्पदा सीमित है। इस धारणा पर गंभीर विचार करने की आवश्यकता है।

६. अब हममें विद्युत्-चुम्बकीय विकिरण[1] के स्पैक्ट्रम[2] का उपयोग करने की क्षमता उत्पन्न हो गयी है। इस स्पैक्ट्रम में प्रकाश की तरह बैंगनी से लेकर लाल रंग तक की केवल एक ही सप्तक[3] नहीं है, किन्तु इसका विस्तार पचास सप्तकों से भी अधिक का है। इसके परिणामस्वरूप पारमाणविक सूक्ष्मजगत् सम्बन्धी हमारा ज्ञान बहुत बढ़ गया है और हमारी इन्द्रियों के लिए अगोचर सत्ताओं की प्रचुरता तथा उनकी विश्वीय सार्थकता की ओर हमारा ध्यान विशेषतः आकृष्ट हो गया है।

ऊपर मनुष्य की स्थिति के निरूपण में सहायक जिन छः साधनों की रूपरेखा दिखायी गयी है वे उस अध्यवसाय के आधुनिक परिणाम हैं जिसमें ब्रह्माण्ड का रहस्य समझने के लिए मनुष्य चिरकाल से आग्रहपूर्वक लगा रहा है। यद्यपि इनमें से कुछ का पूर्वाभास पूर्वकालीन अन्वेषणों में मिल चुका था और कुछ की अस्पष्ट अनुभूति सदा से हमारे मन में विद्यमान थी तथापि इन सब के विकास में पूर्णता तब से आने लगी जब से प्राचीन तथा अर्वाचीन धर्मगुरुओं ने इस विषय का चिन्तन तथा मनन करके अपने-अपने मतों का प्रतिपादन करना और ग्रन्थों का लिखना शुरू किया और जब से अधिकांश दर्शनों[4] का विधिवत् निर्माण आरम्भ हुआ।

संक्षेप में यों कह सकते हैं कि यह मालूम हो जाने के कारण कि प्राणियों के निवास के योग्य जगत् अत्यन्त विशाल है, इस उत्तरोत्तर बढ़ते हुए विश्वास के कारण कि जीव की उत्पत्ति और विकास के लिए किसी अलौकिक अथवा अतिप्राकृतिक शक्ति का सहारा ढूंढ़ने की आवश्यकता नहीं है और मनुष्य के उच्चकोटि के साहसिक उद्योग से अनेक नवीन विचारों के अनवरत विकास के कारण अब इस जगत् में मनुष्य की स्थिति और उसके प्रयोजन के सम्बन्ध में समय-समय पर पुनरालोचन करना केवल यथेष्टतः समुचित ही नहीं, किन्तु आवश्यक भी हो गया है।

1. Electro-magnetic radiation
2. Spectrum
3. Octave
4. Philosophies

अध्याय ३

मनुष्य की आपेक्षित उत्पत्ति के विषय में

पिछले अध्याय में प्रस्तुत तर्क को ध्यान में रखकर हमें यह स्वीकार करना पड़ता है कि वर्तमान वैज्ञानिक अनुसन्धानों के दृष्टिकोणों और तथ्यों की मानवीय प्रतिक्रिया के सम्वन्ध में गम्भीर विवेचना आवश्यक है। इस जगत्-सम्वन्धी प्रधान प्रश्नों—क्या, कैसे और क्यों—पर अपने विवेचन का प्रारम्भ करने के लिए हम ब्रह्माण्ड-रचना-विज्ञान के सुनिरूपित विषय पर विचार करेंगे। ब्रह्माण्ड-रचना विज्ञान के अनुसन्धानों के अनेक उद्देश्यों में मनुष्य की स्थिति निर्धारण-सम्वन्धी संसार की जटिलतम समस्या का समाधान भी सम्मिलित है। समस्या यह है कि आकाश तथा परमाणु और प्रकाशमय जगत् में मनुष्य का स्थान क्या है। सम्भव है कि अन्त में हमारे प्रयास का फल यही निकले कि हम इस जटिल संसार में मनुष्य की स्थिति समझ सकने की दिशा में कुछ प्रगति तो कर सकें, भले ही उसका पूरा ज्ञान प्राप्त करने में सफल न हो सकें। ऐसी स्थिति तो वारंवार पैदा होती ही रहेगी जिसमें नये-नये प्रश्न उठें, किन्तु उनके उत्तर शायद अज्ञात रह जायें।

एक बार फिर हम ब्रह्माण्ड-रचना-विज्ञान की स्थूल परिभाषा के सम्बन्ध में यही कहेंगे कि इसका ब्रह्माण्ड से वही सम्वन्ध है जो भूगोल का पृथ्वी से है।[१]

१. ब्रह्माण्डोत्पत्ति विज्ञान (cosmogony) तथा ब्रह्माण्ड-विज्ञान (cosmology) शब्द भी इसी से सम्बन्धित हैं और बहुधा ब्रह्माण्ड-रचना विज्ञान (cosmography) के लिए इनका भ्रान्तिपूर्ण प्रयोग किया भी जाता है। ऐसा जान पड़ता है कि शब्द-कोष-प्रणेता भी इनका भेद नहीं समझते। किन्तु प्रथम शब्द में मूल कारणों का ज्ञान निहित है। और दूसरे के द्वारा तत्त्वज्ञान (Metaphysics) की एक शाखा विशेष व्यक्त होती है।

इस परिभाषा के लिए पहले जगत् की—ब्रह्माण्ड की—परिभाषा देना आवश्यक है। किन्तु यह कार्य कठिन है। हम आगे चलकर देखेंगे कि जगत् शब्द में भौतिक ब्रह्माण्ड के अतिरिक्त और भी कुछ गर्भित है। फिर भी, स्पष्ट परिभाषा के अभाव में भी,ब्रह्माण्ड-रचना-विज्ञान एक विज्ञान ही समझा जाता है—ऐसा विज्ञान जो अलंकारों और प्रसाधनों से विभूषित है। यदि कभी-कभी वह वैज्ञानिक दर्शन[१] जैसा मालूम पड़ता है अथवा उसमें से धार्मिक आदेशों की ध्वनि निकलती है तो और भी अच्छी बात है। धर्म और दर्शन में परमाणुओं और तारों का तथा प्रोटोज़ोआ अर्थात् एक-कोषी जीवों के अन्धान्वेषण[२] का प्रवेश होने से उनकी कोई हानि नहीं होगी।

कम से कम इस समय तो हम जगत् की अन्तर्वस्तु तथा उसकी प्रक्रियाओं के अध्याय को विवरणात्मक रूप में ही सीमित रखेंगे। यद्यपि यहाँ ब्रह्माण्ड रचना विज्ञान को प्रारम्भिक विज्ञान के ही रूप में प्रस्तुत किया गया है तथापि उसमें बौद्धिक विद्युत् की वोल्टता[३] इतनी अधिक है कि वह कुतर्की अन्वेषक को पूर्णतः आविष्ट[४] कर सकता है और अनभिज्ञ तथा असावधान व्यक्ति को उसके सम्पर्क से बहुत जोर का झटका[५] भी लग सकता है।

बाद में जीव के लिए चाहे जैसी सार्थकता की सृष्टि कर लें, किन्तु एक बात तो प्रारम्भ से ही स्पष्ट है कि जीवधारी प्राणियों के अध्ययन से ब्रह्माण्ड-रचना विज्ञान को बहुत अधिक सहायता मिल सकती है। इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण यह है कि क्लोरोफिल[६] का सूर्य तथा तारों की आयु से प्रत्यक्ष सम्बन्ध पाया गया है। इस विचित्र संगम के द्वारा प्रकाश-संश्लेषण[७] जैसी जटिल रासायनिक क्रिया तारों की आंतरिक संरचना से निबद्ध हो जाती है। आद्यजीव कल्प[८] की प्राथमिक वनस्पतियाँ-हरे शैवाल[९] अथवा कोई अबसे सौ करोड़ से भी अधिक वर्ष

1. Scientific philosophy

२. इस शब्द अन्धान्वेषण से सावधान रहना उचित है।अन्धान्वेषण करने वाले प्राणी अकेले प्रोटोज़ोआ ही नहीं हैं।

3. Intellectual voltage   4. Charged
5. Shock   6. Chlorophyll
7. Photo-synthesis   8. Archeo-zoic era   9. Algae

पहले प्रकाश-संश्लेषण क्रिया का उपयोग कर रही थीं। कार्वोनीफेरस[1] युग के पेड़ों के जटिल संरचनायुक्त पत्ते इस बात के साक्षी हैं कि उस समय से अबतक सूर्य की शक्ति वस्तुत: ज्यों की त्यों वनी हुई है। पुराजीव कल्प[2] के पत्तों से यह प्रमाणित हो जाता है कि अब से तीस करोड़ वर्ष पहले भी सूर्य का विकिरण[3] उतना ही था जितना इस समय है। यदि कोई फर्क हुआ भी हो तो बहुत ही थोड़ा। कार्वोनीफेरस पर्णांग अर्थात् फर्न[4] स्पष्टत: यह प्रकट करते हैं कि तारों का विकास (कम से कम हमारे विशेष तारे-सूर्य का विकास) अति मन्दगामी होता है। इस विकास की मन्दगति का तो प्रमाण अवश्य मिलता है, किन्तु प्रश्न यह है कि इस मन्दगति का कारण क्या है? सूर्य में ऊर्जा का ऐसा क्या स्रोत हो सकता है कि जिसमें से वह प्रति सेकेंड चालीस लाख टन के द्रव्यमान[5] के परिणाम में निकल-निकल कर आकाश में वरावर विकीर्णित होती रहती है तथापि करोड़ों वर्ष लम्बे समय में भी वह निःशेष नहीं हो सकी?

यह कहानी इस पुस्तक के लिए बहुत लम्बी है। हम केवल इतना ही कहेंगे इन प्राचीन शैवालों में तथा पुराजीवकल्पी फर्न-वृक्षों में ऊर्जा पहुँचाने के लिए और इन वनस्पतियों द्वारा पोषित पराजीवी[6] जन्तुओं को (जिनमें हम भी सम्मिलित हैं) जीवित रखने के लिए सूर्य हाइड्रोजन का हीलियम[7] में तत्त्वान्तरण[8] करता रहता है और इस प्रक्रिया में जो प्रचुर ऊर्जा उत्पन्न होती है उसे विकीर्ण करता रहता है। यह हमारा सौभाग्य है कि सूर्य में इस विकिरण ऊर्जा को उत्पन्न करने का संयंत्र स्वतः नियंत्रित[9] है।

विभिन्न विज्ञानों के सहयोग का यह अच्छा उदाहरण है। भू-रसायन[10] एक्स-किरण विज्ञान[11], भू-स्तरिकी[12], पारमाणविक भौतिकी[13] तथा ज्योतिष[14],

1. Carboniferous
2. Paleozoic era
3. Radiation
4. Fern
5. Mass
6. Parasite
7. Helium
8. Transformation
9. Self-ragulating
10. Geo-chemistry
11. Radiology
12. Stratigraphy
13. Atomic physics
14. Astronomy

इन सभी से यह स्पष्ट विदित होता है कि द्रव्य[1] का लोप होकर विकिरण की उत्पत्ति हो सकती है। पुराजैविकी[2] में पौधों तथा जन्तुओं के जीवाश्मों अर्थात् फासिलों (fossils) के अध्ययन से सूर्य की ऊष्मा के परिणाम की अपरिवर्तिता का भी संकेत मिलता है और गणितीय भौतिकी तथा तारा भौतिकी[3] की सहायता से यही फासिल हमें तारों की अंतरंग संरचना के सम्बन्ध में भी बहुत कुछ सूचना दे देते हैं।

इसी प्रकार अजीव जगत् के अध्ययन में भी जीवविज्ञान[4] का घनिष्ठ सम्बन्ध कई बातों से पाया गया है। चींटियों के दौड़ने में जो ऊर्जा खर्च होती है उस पर भी टेम्परेचर का उतना ही नियन्त्रण होता है जितना कि सुदूरवर्ती तारों के ऊर्जा-विकिरण पर। पृथ्वी के आद्यकालीन मौसम का अध्ययन अच्छी तरह करने के लिए हमें लगभग एक दर्जन विभिन्न वैज्ञानिक क्षेत्रों के तथ्यों तथा विधियों का सम्मेलन करना पड़ता है जिनमें कुछ भौतिक होते हैं तो कुछ जैविक। जब हम यह देखते हैं कि प्रकृति के बहुत-से नियम जैव कोषिकाओं के लिए तथा रासायनिक अणुओं के लिए एक-समान हैं और, जैसा कि आगे विस्तार सहित बताया गया है, यदि हम यह स्वीकार कर लें कि इस बात की बहुत अधिक संभावना है कि इस जगत् में करोड़ों ग्रह ऐसे विद्यमान हैं कि जिनमें अत्यन्त विकसित प्राणियों का निवास है तो हम इसी परिणाम पर पहुँचेंगे कि ब्रह्माण्ड-रचना की योजना में जीव-जगत् को भी स्थान देना ही पड़ेगा।

यदि ब्रह्माण्ड-रचना का विवरण और अध्ययन आदर्श रूप से किया जाय तो यह प्रकट हो जायगा कि इस विज्ञान का विस्तार बहुत अधिक है और उसमें अनेक जटिल विषयों का समावेश है। वह इतना व्यापक है कि इस पुस्तक की संक्षिप्त सीमाओं में उसका साद्यन्त विवेचन संभव नहीं है। किन्तु यदि हमारे दृष्टिकोण को केवल मनुष्य की स्थिति की निर्धारणात्मक उपयोगिता ही तक सीमित रखा जाय तो यह विवेचन संभव हो सकता है। इस अध्याय में हम भौतिक जगत् के सर्वेक्षण की रूपरेखा प्रस्तुत करने के जो प्रयत्न अब तक किये गये हैं उन्हीं का विवरण देंगे और उसमें भी अधिक घोर आधारभूत तथ्यों पर

1. Matter
2. Paleontology
3. Astrophysics
4. Biology

ही देंगे तथा विशेषकर यह बताने का प्रयास करेंगे कि इन तथ्यों के अनुसंधान से और उनकी सहायता से संसार की सम्पूर्ण व्यवस्था में पार्थिव मानव के वास्तविक स्थान का पता कहाँ तक लगाया जा सका है।

हमारी ज्ञानेन्द्रियों की संख्या और उनकी क्षमता निश्चय ही सीमित है और ब्रह्माण्ड-सम्बन्धी समस्याओं पर विचार करने का हमारा अनुभव केवल कुछ ही हजार वर्षों का है। इतने समय में तो सौर परिवार का बाह्यतम ग्रह प्लूटो[1] मुश्किल से सूर्य के दस-बारह चक्कर समाप्त कर पाया होगा। अतः हम से बहुत अधिक आशा नहीं करनी चाहिए। ब्रह्माण्ड को समझने के व्यापार में हम तो अभी नौसिखिया हैं। यदि हमारा पूर्व इतिहास देखा जाय तो निस्सन्देह हमारी सफलता बहुत अच्छी प्रतीत होगी, किन्तु वास्तव में हम अभी तक ब्रह्माण्ड की पूरी पुस्तक के प्रथम पृष्ठ को खोलकर उसकी प्रथम पंक्ति पर भी दृष्टिपात नहीं कर पाय हैं।

ब्रह्माण्ड सम्बन्धी ज्ञान में हमारी जो स्थिति है उससे प्रकट है कि, जैसा प्रथम अध्याय में बताया जा चुका है, इस भौतिक जगत् में मूल "गुण" अथवा आधारभूत सत्ताएँ साधारण से मालूम देने वाले आकाश, काल, द्रव्य तथा ऊर्जा हैं। इनमें भी द्रव्य और ऊर्जा वास्तव में एक ही सत्ता के दो विभिन्न रूप हैं जिनका पारस्परिक सबंध जिस समीकरण के द्वारा व्यक्त किया जाता है वह $२+२=४$ के बाद वर्तमान काल का सबसे अधिक लोकप्रसिद्ध समीकरण $E=mc^2$ है। इस समीकरण का अर्थ यह है कि द्रव्यमान m को ऊर्जा E में रूपान्तरित करने के लिए अथवा ऊर्जा को बराबर परिमाण के द्रव्यमान में परिणत करने के लिए हमें प्रकाश के वेग c का उपयोग करना पड़ता है जो सबसे अधिक मूलभूत प्राकृतिक मात्रक[2] है। इसी प्रकार आपेक्षिकता के सिद्धान्त[3] की दृष्टि से सामान्यतः आकाश और काल को भी अब युग्मित करके दिक्-काल[4] का रूप दे दिया जाता है। किन्तु हमारी वर्तमान व्यावहारिक विवेचना के लिए उपयुक्त चार सत्ताओं को दो युग्मों में व्यवस्थित करने वाली इन तुल्यरूपिता[5] की अभिमान्यताओं[6] की परवाह न करके हम प्रत्येक

1. (Pluto)
2. Unit
3. Theory of relativity
4. Spacc-time
5. Equivalence
6. Postulates

सत्ता पर पृथक्-पृथक् विचर करेंगे। किन्तु पहले मानव बुद्धि-सम्बन्धी कुछ सरल प्रविधियों अथवा तकनीकों के विषय में दो-एक बातें कह देना उचित होगा।

चार प्रारम्भिक वर्णमालाएँ

इतिहास बताता है कि विगत कई हजार वर्षों की मानव संस्कृतियाँ विचार-विनिमय के सरल साधनों के उपयोग पर ही बहुत कुछ आधारित रही हैं। हम इन साधनों को वर्णमालाएँ[1] कह सकते हैं, यदि इस शब्द को अधिक व्यापक अर्थ में लिया जाय क्योंकि इनमें केवल क ख ग के अतिरिक्त और भी बहुत कुछ समाविष्ट है। वर्णमाला के अक्षरों की सहायता के बिना हम आसानी से ऊँचे दरजे के प्रश्नोत्तर की व्यवस्था नहीं कर सकते और न वर्तमान पीढ़ी आगामी पीढ़ी के पास किसी प्रकार का संदेश भेज सकती है। जब से इन अक्षरों का आविष्कार और विकास हुआ है तब से बराबर ये अक्षर मनुष्यों को अपने ज्ञान तथा विचारों का समन्वय करने और अपने चारों ओर विस्तृत जटिल संसार की विभिन्न परिस्थितियों को समझने में सहायता करते रहे हैं। जो अव्यवस्था हमें सर्वत्र दिखाई देती है उसे कम करने में तथा व्यक्तियों और समुदायों में सभ्यतापूर्ण सहयोग की नींव रखने में भी इनसे बहुत सहायता मिली है। और इन्हीं अक्षरों के द्वारा मनुष्य अपनी संस्कृतियों को समुन्नत बना सके हैं तथा स्थायी समाजों की स्थापना कर सके हैं।

जंगल में जिस प्रकार गुर्राने तथा चीखने से और इशारों से मनुष्य का काम चल जाता था, उससे बहुत अधिक काल तक इस प्रमुख स्तनपोषी[2] का काम नहीं चला, क्योंकि इसके मस्तिष्क का भी विकास हो रहा था। इसके पास अपने साथियों से बातचीत करने के लिए वैसी अद्‌भुत शृंगिकाएँ[3] भी नहीं थीं जैसी कि चींटियों की होती हैं जिनकी सहायता से वे अपने श्रमसाध्य तथा परिष्कृत समाजों का निर्माण कर सकी हैं। यदि मनुष्य को अपना विकास करना था और जीवित तथा सुरक्षित रहकर विश्व की समस्याओं का समाधान करने योग्य

1. Alphabets
2. Principle mammal or primate
3. Antennae

अपने आप को बनाना था तो उसके लिए सामाजिक विचार-विनिमय के संकेत चिह्नों[1] का निर्माण करना अनिवार्य था और इस कार्य को उसे अन्य जानवरों तथा जंगल के अपने पूर्वजों की अपेक्षा बहुत अधिक प्रभावकारी रूप में करना भी आवश्यक था। संदेशों के सफल आदान-प्रदान के लिए यह भी आवश्यक था कि इन चिह्नों का संबंध ध्वनियों तथा विचारों के साथ स्थापित किया जाय। सामाजिक सहयोग के लिए उसे इन चिह्नों की सारणियों की भी आवश्यकता हुई और उसने ऐसी अनेक सरणियाँ बनायीं भी। संक्षेप में हम यों कह सकते हैं कि समाजों की व्यवस्था करने के लिए और इसके बाद अन्तरसामाजिक संस्कृति का विकास करने के लिए लिखने,पढ़ने और गणित की युक्तियों का आविष्कार करना और उनका व्यवहार करना मनुष्य के लिए अनिवार्य हो गया।

प्राथमिक वर्णमालाओं के अक्षरों की रचना का प्रारम्भ हुए अभी कुछ ही हजार वर्ष हुए हैं। वे क ख ग तथा १,२,३ के रूप में प्रकट हुए। बाद में इन अक्षरों के संयोजन से विचारों के द्योतक शब्दों की रचना हुई और तब संसार की पृथक्-पृथक् विभिन्न संस्कृतियों में ये शब्द नियत और निश्चित हो गये। फिर शब्दों से वाक्यांश[2] बने, उनसे वाक्य बने और तब कुछ समुन्नत संस्कृतियों में वाक्यों को एकत्रित करके अध्याय, पुस्तकें और पुस्तकालय बनाये गये।

संख्यात्मक अंक ही प्रारंभिक अर्थशास्त्र के आधार थे और क ख ग आदि से मिलकर इन्होंने ही वर्तमान संसार के व्यापार को जन्म दिया था। अंकों के ही द्वारा हमारी नाप-तौल पद्धति भी बनी। यदि ये वर्णमालाएँ—अक्षर और अंक—न होते तो सांसारिक दृष्टि से हम पक्षियों, मक्खियों तथा बन्दरों से अधिक उन्नत अवस्था को कभी प्राप्त कर ही नहीं सकते थे।

इनके अतिरिक्त दो अन्य वर्णमालाएँ भी दीर्घ कालसे विद्यमान हैं। एक का सम्बन्ध काल से है और दूसरी का आकाश से। पहली में दिन, सप्ताह, मास तथा वर्ष सहित पंचांग[3] हैं और दूसरी में वे मानचित्र हैं जिनमें पृथ्वी के नाप अर्थात् अक्षांश[4] तथा देशान्तर या रेखांश[5] अंकित हैं जिनके द्वारा क्षेत्रों, नगरों और देशों की सीमाओं का ज्ञान होता है।

1. Symbols
2. Phrases
3. Calendars
4. Latitude
5. Longitude

अब ये समस्त प्राथमिक वर्णमालाएँ न तो ब्रह्माण्ड-रचना के अध्ययन के लिए पर्याप्त हैं और न इस संसार को, जिसमें जानने योग्य बातों का भंडार भरा पड़ा है, समझने के व्यापक प्रयत्न के लिए उपयुक्त ही। प्रायः एक शताब्दी पहले तक की हमारी आवश्यकताओं के लिए तो ये काफी थीं, किन्तु ज्ञान की वृद्धि के कारण इन प्राथमिक वर्णमालाओं की सहायता के लिए हमें तर्कसंगत वर्गीकरण[1] का सहारा लेना पड़ा है। और तारों, परमाणुओं, विभिन्न प्रकार के पौधों, प्रस्तर श्रेणियों इत्यादि का ज्ञान प्राप्त करने के लिए जातियों तथा वर्गों की सुसंघटित सारणियों[2] की व्यवस्था भी करनी पड़ी है। ये सारणियाँ भी एक तरह से विशेष प्रकार की सहायक वर्णमालाएँ ही हैं।

अध्ययन में और भी अधिक सहायता प्राप्त करने के लिए अब हम काल, द्रव्य, आकाश और ऊर्जा इन चारों सत्ताओं के लिए एक-एक और व्यापक वर्णमाला का निर्माण करना चाहते हैं। हम आशा करते हैं कि विभिन्न घटनाओं के सम्बन्ध में इतनी अधिक विशिष्ट बातें मालूम हो जाने के कारण स्वभावतः जो जटिलता उत्पन्न हो गयी है उसे हम इन सारणियों के उपयोग से कुछ सुलझा सकेंगे। सौभाग्यवश, ऐसे दो मूलभूत वर्गीकरण पहले से ही तैयार हैं। वे पूर्णता को भी प्राप्त कर चुके हैं और उनका व्यावसायिक उपयोग भी हो रहा है। एक तो है द्रव्य के रासायनिक तत्त्वों की आवर्त-सारणी[3] और दूसरा है काल के भूवैज्ञानिक युगों[4] का अनुक्रम। पहले का सम्बन्ध द्रव्य के सूक्ष्म तात्त्विक रूप से है और दूसरे का समय के दीर्घ खंडों से। किन्तु अभी तो हम एक नयी सारणी से प्रारम्भ करेंगे जिसकी अभिकल्पना विशेषतः हमारे आकाशीय स्थान के निर्धारण के लिए की गयी है। किन्तु इससे पहले थोड़ा विषयान्तर आवश्यक है।

ब्रह्माण्ड-रचना-विज्ञान के उद्देश्य

वैज्ञानिक तथा स्वप्नद्रष्टा होने के कारण हम इस जगत् में अपनी स्थिति जानने के लिए उत्सुक हैं। ब्रह्माण्ड की "योजना" को जानने के लिए उत्सुक हैं और कभी-कभी इस योजना को बनाने वाले के विषय में भी चर्चा करने की इच्छा

1. Logical classification
2. Tables
3. Periodic table of elements
4. Geological ages

होतीहै। यह अत्यन्त चित्ताकर्षक प्रवृत्ति है। ब्रह्माण्ड-रचना सम्बंधी तथ्यों के विषय में सोचने और मनुष्य की नियति और उसकी कल्पनाओं के विषय में अनुमान लगा कर हम उत्तेजक तथा अन्त में संतोषप्रद अनभूति प्राप्त कर सकते हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य कीस्थिति का विषय अत्यन्त कष्ट-साध्य है—कुछ तो इस कारण कि मनष्य दुर्बोध तथा थोड़ा-बहुत मिथ्याभिमानी जन्तु है, किन्तु और भी अधिक इस कारण कि चाहे उसे मालूम हो या न हो, उसकी प्रवृत्ति तारों की ओर उद्दिष्ट है। वह अपने वनवासी बचपन में और अपने विगत असामाजिक जीवन में चाहे कितना ही क्रूर क्यों न रहा हो अब तो वह स्वभावतः नैतिक तथा सदाचारी हो गया है—इसलिए नहीं कि उसके सत्कर्मों से कुल-देवता प्रसन्न होंगे, किन्तु इसलिए कि ऐसा करना आर्थिक और सामाजिक लाभ की प्राप्ति के लिए अच्छी और चतुरतापूर्ण युक्ति है। वह विश्व के रहस्य को समझने के लिए भी कटिबद्ध है। इसके अतिरिक्त, जैसा कि आगे प्रकट होगा, मनुष्य अब जान गया है कि वह विकास के एक महान् अभियान में बड़े उच्च तथा विलक्षण स्तर पर सहयोग दे रहा है। अधिकांशतः वह अत्यन्त आनन्द-पूर्वक कम्पनशील परमाणु, विकिरणशील तारे[१], संघननशील नीहारिकाएँ[२], अन्वान्वेषी प्रजीव[३] तथा ऊर्ध्वारोही पक्षियों और तितिलियों से पूर्ण चिरजीवी जगल आदि-जैसे साथियों के साथ आगे बढ़ रहा है।

ब्रह्माण्ड-रचना के विद्यार्थी होने के कारण हमें ब्रह्माण्डीय क्रीड़ा के नियमों का आविष्कार करने में आनन्द आता है। हम इस खेल में विजय प्राप्त करने वाले प्राणियों का परिचय प्राप्त करके उनका अभिवादन करते हैं—यथा उन मछलियों तथा क्लब मॉसों[४] काजिनकी परंपरा अनेक भू-वैज्ञानिक युगों से बराबर अपरिवर्तित रूपों में चली आयी है। हम ऐसे पराजितों की पराजय को भी समझने काप्रयत्न कर सकते हैं, जैसे प्राचीन पुराजीव कल्प[५] के त्रि-पिण्डक[६] एक करोड़ वर्ष पूर्व के भी मसरट या डाइनोसॉर[७] तथा नीएन्डरथाल मानव[८] जिन का अब सर्वथा लोप हो गया है।

1. Radiating stars
2. Condensing nebulae
3. Grouping protozoa
4. Club mosses
5. Paleozoic era
6. Trilobites
7. Dinosaur
8. Neanderthol Man

कभी-कभी हम अपने प्रश्नों के गहरे उत्तर ढूंढ़ने के लिए विज्ञान के सीमान्त में प्रवेश करने का भी साहस करते हैं और अपनी इस आशा की भी आलोचना करना चाहते हैं कि भविष्य युगों के लिए फासिलमय चट्टानों[1] में अपनी खोपड़ियों के भग्नांशों के अतिरिक्त हम और कुछ भी छोड़ जायेंगे। स्वभावतः हमें मानव विचारों और कर्मचेष्टाओं पर तथा अपनी कविता तथा संगीत पर गर्व है। परमाणुओं, नीहारिकाओं और अनेक सार्वकालिक अज्ञेयों के समान ही विश्व के महान् नाटक के हम भी एक पात्र हैं।

बहुधा पुरातन इजराईल के पैगम्बरों ने ब्रह्माण्ड की शोभा और महिमा की प्रशंसा प्रमुदित मन से की है। यह सच है कि उनके समय में इस ब्रह्माण्ड का केन्द्र मनुष्य ही समझा जाता था। किन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से वे दिन बहुत आदिकालीन थे और मानव संस्कृतियों के प्रारम्भ से अब तक जितना समय बीत चुका है संभवतः उस जमाने तक उसका दो-तिहाई भी नहीं बीता था। उस समय के बाद मनुष्य की अन्वेषक बुद्धि ने जिन बातों का आविष्कार कर लिया है वे यदि इन प्राचीन पैगम्बरों को बतायी जातीं तो उन्हें इन पर विश्वास ही नहीं हो सकता था। यह स्पष्ट है कि उनकी आँखों में निकट दृष्टि[2] का दोष था। इसमें सन्देह नहीं कि हमारी दृष्टि भी दोषपूर्ण है, किन्तु कम से कम हम इतना समझ ही गये हैं कि जिस नाटक के हम पात्र हैं वह प्राचीन काल के अनुमानों की अपेक्षा बहुत अधिक शानदार है। दो या तीन सहस्र वर्ष पूर्व की आलोचनाओं में इस ब्रह्माण्डीय नाटक की महत्ता बहुत कम आँकी गयी थी। उस समय इसके प्रति आदर की भावना को कल्पना और अंधविश्वास का सहारा लेना पड़ता था। किन्तु थोड़े ही वर्षों पहले तक की मनोकल्पनाओं की अपेक्षा आज के सर्वमान्य तथ्य बहुत अधिक आश्चर्यजनक हैं। जो कोई भी छोटे से छोटे परमाणुओं तथा जवकोषिकाओं का तथा बड़े-बड़े तारों तथा नीहारिकाओं का अध्ययन करते हैं तो कम से कम ऐसा ही मालूम पड़ता है। अब हमें अपने मन में विस्मयाकुल विनय की भावना जाग्रत करने के लिए अंधविश्वास की सहायता की आवश्यकता नहीं है।

यह हो सकता है कि हम अपने विश्व-सम्बन्धी अन्वेषणों के कारण गर्वित होकर प्राचीन दर्शकों की अपूर्णता का निरादर करने लगें, किन्तु यदि हम दूर-

1. Fosiliferous rocks 2. Myopia

दर्शितापूर्वक यह समझ लें कि बहुत संभव है कि एक शताब्दी बाद वर्तमान युग का मानव भी ज्ञान और विचारों के क्षत्र में नौसिखिया ही समझा जाने लगेगा तो अवश्य ही हम अपने गर्व में स्वास्थ्यप्रद कमी का अनुभव करेंगे। निश्चय ही तारों और नीहारिकाओं सम्बन्धी अन्वेषणों के वर्तमान उद्देश्यों में दो तो ऐसे हैं जो विज्ञान के अन्य क्षत्रों के लिए भी हितकर प्रमाणित होंगे। उन में से एक है उन साक्ष्यों और प्रमाणों को प्रबल बनाना जिनके आधार पर इस समय हमारे सिद्धान्तों की रचना की जा सकती है और दूसरा है यथासंभव शीघ्रतापूर्वक ऐसी व्यवस्था करना जिससे हमें उन प्राचीन अभिकल्पनाओं और धारणाओं से मुक्ति मिल सके जिनके प्रति इस समय हमें बहुत मोह है। भविष्यमें हम बहुत अधिक ज्ञान की तथा अधिक स्वस्थ और निर्दोष विचारों तथा सिद्धान्तों की आशा करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि भविष्य में हमारे विचार अधिक गहन हो जायेंगे। हमारी इन्द्रियों का उपलब्धि-क्षेत्र अधिक विस्तृत हो जायगा, मानव मस्तिष्क के क्रियाकलाप को हम अधिक अच्छी तरह समझने लगेंगे तथा प्रकृति के महत्तम तथा जगत्-व्यापी व्यापार में—अर्थात् ब्रह्माण्ड के विकास में भाग लेने वाले मनुष्यों के मन में अधिक उच्च आकांक्षा का सचार होने लगेगा।

इस सुखद आह्वान का दिग्दर्शन करने के बाद हम ब्रह्माण्ड-रचना की आधारभूत वर्णमालाओं की ओर—स्थिति निर्धारण[1] की उच्चतर सारणियों की ओर—पुनः अग्रसर होना चाहते हैं।

आकाशीय विस्तार—प्रकृति के संगठनों की वर्णमाला

प्रकृति की व्यवस्था के विवेचन का प्रारम्भ हम विभिन्न प्रकार के मानव-संघों से करेंगे। जिस समुदाय में प्रथम कोटि की उत्कृष्टताएँ थोड़ी ही हैं हमारा यह व्यवहार उसके प्रति अवश्य ही चाटुकारिता का व्यवहार है। मनुष्यों का सरलतम संघ कुटुम्ब[2] है। स्वभावतः अनेक कुटुम्बों के पास-पास बसने से अधिकांश बस्तियों तथा ग्रामों की रचना होती है, किन्तु इनमें कुटुम्बों की पृथकता तथा उनकी विशेषताएँ ज्यों की त्यों बनी रहती हैं। अधिक उच्च व्यवस्था से होने वाले लाभों के लिए इनमें स्वाभाविक स्वतंत्रताओं का बलिदान नहीं दिया

1. Orientation 2. Family

जाता। किन्तु ये बस्तियाँ और ग्राम कदाचित् ही एक-दूसरे से स्वतंत्र रह पाते हैं। उनके सम्मेलन से राज्यों और राष्ट्रों की स्थापना हो जाती है और ज्यों-ज्यों इस उच्चतर संघीकरण का विकास होता जाता है त्यों-त्यों व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा स्वायत्तता घटती जाती है। अंतमें संभव है कि इन राष्ट्रों से भी ऊपर पृथ्वीव्यापी एक सार्वभौम राज्य[१] का कम से कम एक सार्वदेशिक सहयोगी सभ्यता का ही प्रादुर्भाव हो जाय।

मानव कुटम्ब तथा कुटुम्बों और वर्गों के समागम से आगे बढ़कर सामाजिक संगठन का एक और रूप है संश्लिष्ट निम्न कोटि का समाज-संगठन और सामाजिक समन्वय जो वोल्वोक्स[२] नामक प्रोटोज़ोआ में प्रकट हुआ है जबकि प्राणि-जगत् भर में सर्वोच्च कोटि का संगठन मधु मक्खियों[३], बर्रों[४], चींटियों[५] और दीमकों[६] आदि सामाजिक कीटों[७] में पाया जाता है।

जहाँ कहीं हमें व्यवस्था दिखाई देती है वहाँ निश्चय ही हम किसी व्यवस्थापिका शक्ति अथवा कारण के अस्तित्व का अनुमान कर सकते हैं। मनुष्य-समाज में संगठन शक्ति का आधार जहाँ व्यापक रूप से तो "प्रेम है", वहाँ हमारे ग्रामों से लेकर राष्ट्रों के उच्चवर्गीय संगठन का आधार मुख्यत: सुरक्षा है।[८] किन्तु सांस्कृतिक आकांक्षा तथा परिपूर्ण आर्थिक जीवन की लालसा को भी कम महत्त्व नहीं दिया जा सकता। सामाजिक कीटों के पारस्परिक आकर्षण का आधार जटिल है और अभी तक वह पूर्णरूप से समझ में नहीं आ सका है, किन्तु निस्सन्देह इसका सम्बन्ध रसनेन्द्रिय[९] से है जो चींटियों में निगले हुए भोजन के आदान-प्रदान के रूप में प्रकट होता है।

निर्जीव सूक्ष्म जगत् में इस संगठन की प्रवृत्ति का कारण वैद्युत तथा उसी प्रकार के अन्य बल हैं। इलैक्ट्रान, न्यूट्रान आदि मूल कणिकाओं के संगठन से परमाणु बन जाते हैं। परमाणुओं से अणु तथा अणुसंघ और उनसे क्रमश: और भी अधिक जटिल क्रिस्टल[१०] तथा कलिल अर्थात् कोलाइड[११] बनते हैं

1. World state 2. Volvox 3. Bees 4. Wasps
5. Ants 6. Termites 7. Social insects
8. Security 9. Organ of taste 10. Crystal
11. Colloid

मानव समाज ही की तरह ज्यों-ज्यों संगठन अधिक समुन्नत होता जाता है त्यों-त्यों मूल कणों की स्वतंत्रता भी अधिकाधिक घटती जाती है। दो नीहारिकाओं के मध्यवर्ती आकाश में परमाणु की अनियंत्रित स्वतंत्रता बंद कमरे की आक्सीजन और नाइट्रोजन गैसों के अणुओं में प्रायः सर्वथा लुप्त हो गयी है, क्योंकि यहाँ की वायु गुरुत्वाकर्षण के कारण पृथ्वी से आबद्ध है और अणुओं की अनवरत टक्करें किसी भी अणु को अपने स्थान से अन्यत्र नहीं जाने देतीं। मेरी पेन्सिल की ठोस धातु में परमाणु इतने अधिक ठसाठस भरे हैं तथा उनकी गति इतनी सीमित और नियंत्रित है कि पेंसिल की आकृति ज्यों की त्यों बनी रहती है। उसमें इलेक्ट्रान, प्रोटान तथा न्यूट्रान निरन्तर इधर से उधर दौड़ते तो रहते हैं, किन्तु वे मुक्त होकर स्वच्छन्दता-पूर्वक अन्तर-तारकीय आकाश में जा नहीं सकते। संगठन और व्यवस्था से होने वाले लाभों की कीमत सदैव अवयवों की स्वतंत्रता के विनाश के रूप में चुकानी पड़ती है। किसी भी सभ्य समाज में व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अत्यन्त सीमित हो जाना अनिवार्य है क्योंकि स्वतंत्रता की अधिकता से निश्चय ही सुरक्षा और सामाजिक उपयोगिता में कमी हो जायगी हमें स्मरण रखना चाहिए कि स्वाधीनतापूर्वक विचरण करनेवाले तथा पुलिस द्वारा अनियंत्रित डाइनोसॉरों को पानी के नलों की सुविधा प्राप्त नहीं थी।

कोलाइडीय स्तर पर जब यह सूक्ष्म जगत् समाप्त होने लगता है तब हम बृहत्तर तथा गुरुतर संगठनों की ओर अग्रसर होते हैं और उस स्थूल जगत् में प्रवेश करते हैं जिसमें प्रभावकारी नियंत्रण गुरुत्वाकर्षण का है। तारों के क्षेत्र में हम देखते हैं कि धूल के बारीक कणों के संघनन से उन प्राथमिक तारों[1] का जन्म होता है जिनमें गैस का दबाव तथा विकिरण प्रभावशाली गुरुत्वाकर्षण का विरोध करते हैं। बहुधा तारे दो-दो के युग्मों अथवा तीन-तीन के जुटों में भी दिखाई देते हैं। तारों के इससे बड़े संगठन तारा-पुंज[2] तथा तारा-मेघ कहलाते हैं।[3] इनके द्वारा तथा अकेले और बहुलक[4] तारों द्वारा उन विशाल विश्वीय संगठनों का निर्माण होता है जिन्हें हम नीहारिकाएँ अथवा "द्वीप विश्व" अथवा संक्षेप में "विश्व" भी कहते हैं। इस प्रकार परमाणु से लेकर नीहारिका पर्यन्त एक अविरत अनुक्रम का हमें परिचय मिलता है।

1. Proto stars
2. Star Clusters
3. Star Clouds
4. Multiple

सारणी—१*

द्रव्य के संगठनों का वर्गीकरण

—५. ....

—४. मूल कणिकाएँ

क. ....

ख. विकिरण के क्वाण्टम (Radiation quanta)

ग. इलेक्ट्रान (electron)

घ. प्रोटान (proton)

च. न्यूट्रान (neutron)

छ. पाज़िट्रान (positron)

ज. मेसान—१ से १० तक (Meson)

झ. न्यूट्रिनो (neutrino)

ट. ऐण्टीन्यूट्रिनों (antineutrino)

ठ. ऐण्टी प्रोटान (antiproton)

ड. ....

—३. परमाणु—(atoms) 0 से १०१+तक

—२. अणु (molecules) १ से n तक

—१. अणु-संघ (molecular systems)

i. क्रिस्टल (crystals)

ii. कोलाइड (colloids)

O. कोलाइड तथा क्रिस्टल संचय (aggregates)

(अ) अकार्बनिक (Inorganic) खनिज, उल्कापिंड (meteorites इत्यादि

* उपविभाजन के संकेत।

अ, आ, ई मुख्यतः मूल प्रकृति पर आधारित भेद;

o, १, २, ३ मुख्यतः विस्तार तथा द्रव्यमान पर आधारित भेद;

I II III मुख्यतः संरचना पर आधारित भेद;

क, ख, a, b. मुख्यतः प्रेक्षक की स्थति पर आधारित भेद;

[ ] ऐसे कोष्ठ कों में स्थित संघ आकस्मिक हैं और गुरुत्वीय संगठन नहीं हैं।

(आ) कार्बनिक (organic) सजीव (organisms) बस्तियाँ (colonies) इत्यादि

+ १. उल्कासंघ (meteoritic associations)

(१) उल्का-प्रवाह (meteor streams)

(२) धूमकेतु (comets)

(३) मेघाभ संहति (coherent nebulosity)

+ २. उपग्रहीय संघ (satellitic systems)

i. पृथ्वी-चन्द्रमा प्रतिरूपी (Earth-moon type)

ii. वृहस्पति प्रतिरूपी (Jovian type)

iii. शनि प्रतिरूपी (Saturnian type)

+ ३. तारे और तारासंघ (stars and star families)

(अ) आनुषगिकों सहित तारे (stars with secondaries)

i किरीट (corona), उल्का तथा धूमकेतु सहित

ii मेघाभ आवरण (nebulous envelopes) सहित

iii ग्रह उपग्रह (planets and setellites) सहित

(आ) समकक्षों सहित तारे (stars with equals)

i सन्निहित युग्म अथवा बहुलक (close pairs or multiples)

(a) ग्रहणशील (eclipsing)

(b) स्पैक्ट्रमदर्शीय (spectroscopic)

ii व्यवहित युग्म अथवा बहुलक (Wide pairs or multiples)

(अ) गुरुत्वीय (Gravitational)

(आ) प्रकाशीय (Optical)

iii गति-संलिष्ट (motion affiliates)

+ ४. तारागुच्छ (stellar clusters)

(अ) असंवृत्त (open)

(a) क्षेत्र वैषम्य (Field irregularities)

(b) संगम (associations)

(c) विरल संघ (loose groups)

(d) अविरल संघ (compact groups)

(e) सघन संघ (dense groups.).

(आ) गोलीय (Globular)।

I अधिकतम संकेन्द्रित (most concentrated)।

II . . . .

XII अल्पतम संकेन्द्रित (least concentrated)।

+५. नीहारिकाएँ (Galaxies or Nebulae)

(क) दीप्तिमान (Bright)।

I अनियमित (Irregular—1)

II सर्पिल (Spiral–S)।

(अ) असामान्य (abnormal——Sp)

(आ) धारीदार (barred–SB)।

(I) असंवृत (open–SBc)।

(II) मध्यम (medium–SBb)

(III) संकेन्द्रित (Concentrated–SBa)

(इ) नियमित (S)

(I) अत्यन्त चौड़ी भुजाएँ (arms very wide–Sd)।

(II) चौड़ी भुजाएँ (arms wide–Sc)

(III) सन्निहित भुजाएँ (arms close–Sb)

(.IV) अत्यन्त सन्निहित भुजाएँ (arms very close–Sa)

III.—गोलाभीय (Spheroidal E)।

(a) अधिकतम प्रलम्बित (most elongated E7)।

(b) अल्प प्रलम्बित (less elongated E6)।

– – – – – –

(g) अल्पतम प्रलम्बित (least elongated E1)।

(h) वर्तुल वाह्यरेखा (Circular outline EO)।

ख–-मन्दज्योति (Faint)—ब्रूस वर्गीकरण (Bruce Classification)।

संकेन्द्रण तथा	आकृति
a1, a2, a3	a10
b1, b2, b3	b10
– – – – – –	
– – – – – –	

f1, f2, f3. . . . . .f10

+ ६. नीहारिका संघ (Galaxy aggregations)

१—युग्म (dubles)

२—समूह (Groups)

३—पुंज (Clusters)

४—मेघ (Clouds)

[५. क्षेत्र की विषमताएँ (Field irregularities)]

+ ७—महानीहारिकाएँ (Metagalaxies)

(अ) अव्यवस्थित तारकीय पिंड तथा तारकीय संघ (organised sidereal bodies and systems)

१. उल्का (meteors)

२. उपग्रह (satellites)

३. ग्रह (Planets)

४. तारे (Stars)]

५. तारापुंज (Clusters)

६. नीहारिकाएँ (Galaxies)

(आ) ब्रह्माण्डीय द्रव्य (Cosmoplasma or Matrix)

(अ) अन्तरतारकीय कण (Interstellar particles)

(१) विश्वीय धूल तथा उल्काएँ (Cosmic dust and meteors)

(२) विस्तीर्ण मेघ (अदीप्त) (Diffused nebulosity dark)

(आ) अन्तर तारकीय गैस (Interstellar gas)

(१) कणिकाएँ (Corpuscles)

(२) परमाणु (atoms)

(३) अणु (molecules)

(३) विकिरण (radiations)

(ई) . . . .

+८—ब्रह्माण्ड. दिक्-काल संस्थान (The Universe : Space-Time Complex)

+९. . . . .

ऐसा मालूम देता है कि प्रकृति का यह मूल विधान है कि संगठनों का अधिकाधिक उच्चतर संगठन निरंतर होता रहता है। इस नियम का उपयोग करके हम एक महत्त्वपूर्ण वर्णमाला का निर्माण कर सकते हैं अथवा ऐसी सारणी बना सकते हैं जिसके द्वारा आकाश नामक सत्ता में हमारा अपना स्थान और हमारी निज की स्थिति स्पष्टतः निर्धारित हो सकें।

जड़-द्रव्य के संगठन सारणी १ में प्रदर्शित हैं। इसमें समस्त भौतिक द्रव्य समाविष्ट हैं—यहाँ तक कि इसमें अनाविष्कृत मूल कणिकाएँ भी हैं और सर्वोत्कृष्ट संगठन भी। सभी वर्गों के उपविभाजन भी दिखाये गये हैं।—२ वर्ग (परमाणु) का उपविभाजन आगे विस्तारपूर्वक दिया जायगा। जड़-द्रव्य की इस वर्णमाला में लगभग १०० विभिन्न जाति के परमाणु सम्मिलित हैं।

उत्तरोत्तर वर्धमान औसत विस्तार के अनुक्रम से बनायी हुई ऐसी सारणी से हमें वह आधारपट प्राप्त होता है जिस पर उन आकर्षणों और प्रेरणाओं के सम्बन्ध में हम अपने विचारों का प्रसार कर सकते हैं तथा जिनके कारण सभी भौतिक तथा जैविक व्यक्ति वर्गों या जातियों में संगठित होते हैं।

उपर्युक्त सारणी के कुछ वर्गों के उपविभाजन बहुसंख्यक तथा शिक्षाप्रद होंगे, यथा वर्ग ० के उपवर्ग आ का यहाँ नाममात्र लिखा गया है, किन्तु इसके जैविक उप-विभाग अनेक हैं। यदि हम समुचित सन्तुलन रखना चाहते हैं, तो ब्रह्माण्डीय संगठनों की इस सारणी में इन सजीवों को अधिक स्थान नहीं दिया जा सकता। जैविक संरचनाओं के विषय में हमें इतनी अधिक बातें ज्ञात हैं कि उन सब को इस सारणी में समाविष्ट करना संभव हो ही नहीं सकता। यदि केवल मनुष्य ही के पूर्वजों को इसमें प्रदर्शित करना चाहें तो उत्तरोत्तर घटती हुई व्यापकता वाले कम से कम दस वर्ग बनाने पड़ेंगे और फिर प्रत्येक वर्ग के कई उपविभाग बनाने पड़ेंगे। यथा

पार्थिव प्राणिजगत् [पौधे, जन्तु, एककोषी जीव (protista)]

जगत् (Kingdom)—जन्तु (animal)

समुदाय (Phylum)—(जन्तु जगत् के लगभग १५ समुदायों में से एक) कोरडेटा (Chordata)

उप समुदाय (Sub phylum)—मेरुदंडी (Vertebrates)

श्रेणी (Class)—नर-वानर अथवा प्राइमेट (primates)

वर्ग (order) ... ...

वंश (Family)—नरवंश (Hominidae) (यहीं से नर और वानर वंशों का पार्थक्य प्रारम्भ होता है)।
गण (Genus)—होमो (Homo)
जाति (Species)—सेपियन्स (Sapiens)
किस्म या कुल (race)—काकेशसी (Caucasian)
व्यक्ति (Individuals)
इनके अतिरिक्त अनेक मध्यवर्ती भेद भी हैं, यथा उपश्रेणी (Sub class), महावंश (Super family) इत्यादि।

द्रव्य के संगठनों की सारणी में जिन संगठनों का आनुक्रमिक अंक ऋणात्मक (negative) है वे सब सूक्ष्मजगत् (microcosmos) में माने जाते हैं। धनात्मक अंकों वाले संगठन स्थूल जगतीय (macrocomic) हैं। सूक्ष्म-जगत् की व्यवस्था में स्थिरवैद्युत (electrostatic) तथा आणविक (omlecular बलों का आधिपत्य है और स्थूल जगत् में गुरुत्वाकर्षण का। इन आणविक तथा गुरुत्वीय आकर्षणों का विरोध करने वाले और विरलकारी (dispersing) दल हैं विकिरण (radiation), गैस का दबाव, स्थिरवैद्युत प्रतिकर्षण तथा "विश्वीय प्रतिकर्षण (Cosmic repulsion)"। यह अन्तिम नाम हम उस प्रायः अस्पष्ट कारण को देते हैं जो नीहारिका-जैसे अत्यन्त विशाल संगठन को निरन्तर एक-दूसरे से दूर हटाता रहता है, सिवाय उन पुंजित नीहारिकाओं[1] के जिनमें गुरुत्वाकर्षण का कुछ दुर्बल-सा आधिपत्य अभी तक अवशिष्ट है।

यह संशय हो सकता है कि द्रव्य के संगठन की सूची में "मूल कणिकाओं" को स्थान देना उचित है या नहीं। क्या इन कणिकाओं को भी किसी प्रकार का वास्तविक संगठन समझा जा सकता है या ये अविभाज्य तथा निरवयवी हैं? यहाँ इन्हें इस सूची में स्थान यों दिया गया है कि सम्भवतः भविष्य के सूक्ष्मजगतीय विश्लेषणों द्वारा इलेक्ट्रानों और प्रोटानों की संरचना का भी पता लगाया जा सकेगा। न्यूट्रान तो अभी भी एक प्रकार से सूक्ष्मतर अवयवों से निर्मित माना जाने लगा है। जो भी हो, इस सारणी में मूल कणिकाओं को समाविष्ट कर लेना ही उचित है क्योंकि तब ही यह सूची हमें द्रव्य की समस्त ज्ञात रचनाओं का पूरा विवरण दे सकेगी।

1. Clustered galaxies

—५ तथ +९ अंक वाले संगठनों के स्थान अभी खाली हैं। ये भविष्य के लिए चुनौती हैं। ० अंक वाले संगठन के उप-संगठन (आ) के सम्बन्ध में इतनी जिज्ञासा तथा कल्पनाएँ विद्यमान हैं कि इसकी दोनों सीमाओं के दरवाजों को भविष्य के संभावित आविष्कारों के लिए वंद कर देना बुद्धिमानी नहीं है। इसी तरह हमने मूल कणिकाओं में तथा अन्तरतारकीय आकाश की रचनाओं के बीच भी भविष्य के अविष्कारों के लिए स्थान खाली छोड़ दिये हैं। इस चुनौती के द्वारा हम यह पूछना चाहते हैं कि क्या विकिरण के क्वाण्टमों[1] से भी अधिक मूलभूत और कुछ नहीं है या क्या इस सारणी में उदारतापूर्वक लिखी हुई मूल कणिकाओं के अतिरिक्त कोई और मूल कणिकाएँ नहीं हैं। और "विश्व-द्रव्य" के चतुर्थ खंड (ई) में हम यह जानना चाहते हैं कि अन्तरतारकीय आकाश में कणों, गैसों और विकिरण के अतिरिक्त क्या और कोई विशिष्ट वस्तु ऐसी है ही नहीं जो बोधगम्य हो और जिसका नाप किया जा सके।[2]

लगभग २५-३० वर्ष पहले तक हम समझते थे कि परमाणु केवल इले-क्ट्रानों तथा प्रोटानों के द्वारा वने हैं। किन्तु मूल कणिकाओं की वर्तमान सूची को देखिए। मेसान की कोटि में प्रायः एक दर्जन से अधिक प्रकार की क्षण स्थायी किन्तु वस्तुतः मूलकणिकाएँ विद्यमान हैं और इसी में V[२]-कणिकाओं की भी गणना करनी चाहिए।

भू वैज्ञानिक युग[3]—समय की उच्चतर वर्णमाला

उप-एलैक्ट्रान[4] से लेकर दिक्-काल संस्थान[5] तक की द्रव्य-संगठनों की सूची का पुनः निरीक्षण करने से हम इस वात से विशेषतः प्रभावित होते हैं कि इस पूरे अनुक्रम में सर्वत्र गति का साम्राज्य है। सभी वस्तुएँ गतिमान हैं। यह गति आपेक्षिक है-विभिन्न मूलविन्दुओं[6] अथवा निर्देशांक-तंत्रों[7] की अपेक्षा, या समान अथवा भिन्न लक्षणों वाली अन्य वस्तुओं की अपेक्षा। विकिरण क्वान्टम की

1. Quanta २. आकाश के क्वाण्टम (Space quanta) ? काल की कणिकाएँ (instons ot time) ? इमार्जान (Emergons) ? विचार की कणिकाएँ (psychons)? 3. Geological ages 4. Sub electron 5. Space time complex 6. Zeros 7. Coordinates

ऊर्जा प्रकाश के वेग से स्थानान्तरित होती है। और परमाणु की सामान्यतः स्वीकृत संरचना के अनुसार परमाणु के अन्तर्वर्ती इलेक्ट्रान भी अत्यन्त भीषण वेग से दौड़ते रहते हैं। किन्तु इतना तीव्र वेग साधारण अथवा सार्वत्रिक नहीं है। कुछ आपेक्षिक गतियाँ—यथा शिलानिबद्ध क्रिस्टलों की गतियाँ—इतनी मन्द हैं कि उनमें और गतिशून्यता की दशा में जो भेद है वह प्रायः नगण्य और अगम्य है। अन्य मन्दगतियों के उदाहरण हैं किसी ग्रह पर स्थित पौधों तथा जन्तुओं की गतियाँ। किसी तारे की परिक्रमा करते समय धूमकेतु का वेग तथा प्रसरणशील विश्व में निकटवर्ती नीहारिकाओं के वेग मध्यम वेगों के उदाहरण हैं।

इतनी सर्वव्यापी होने पर भी गति को द्रव्य-जगत् की मूल अथवा आधारभूत सत्ता मानना कठिन है। यह स्थान का परिवर्तन-मात्र है और इस परिवर्तन की दर का नाप आकाश (अर्थात् लम्बाई) में समय का भाग देने से किया जाता है। अतः सर्वत्र गति का विद्यमान होना यह प्रकट करता है कि द्रव्य-संगठनों की चर्या में काल एक आधारभूत वस्तु है। वृद्धि और क्षय दोनों ही काल पर आश्रित हैं। विन्यास और संगठन का लोप हो सकता है। उदाहरणार्थ, धूमकेतुओं का विलीन हो जाना प्रस्तुत किया जा सकता है। खुले तारा-गुच्छ धीरे-धीरे गुरुत्व के कम होने के कारण बिखर जाते हैं। विकिरण के प्रभाव से अणु विघटित हो जाते हैं। जैव शरीर सड़ जाते हैं और राष्ट्र भी नष्ट हो जाते हैं। दूसरी ओर, अनेक प्रकार के अविन्यस्त आद्य द्रव्यों से काल क्रम में विभिन्न प्रकार के भौतिक तथा जैविक संगठन नये-नये भी बनते रहते हैं। इनमें से अधिकांश के आयतन तथा जटिलता की वृद्धि बहुत ही धीरे-धीरे होती है, किन्तु कई ऐसे भी हैं जिनका परिवर्तन आकस्मिक रूप से और अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक भी हो जाता है।

काल का प्रभाव इस जगत् में सर्वत्र ही दिखाई देता है। जिस प्रकार द्रव्य के संगठनों की सूची के द्वारा हमें आकाश सम्बन्धी बातों को समझने में सहायता मिली थी, उसी प्रकार काल की अवधियों[1] की भी वर्णमाला बनाने से उत्पत्ति, वृद्धि, क्षय तथा मृत्यु के समझने में भी हमारी बुद्धि को बहुत सहायता मिल सकती है।

इस भौतिक जगत् की कालानुक्रमी प्रक्रियाओं के पूरे विवरण के लिए हमें काल की ऐसी अत्यन्त विस्तीर्ण पंजिका[2] का आयोजन करना है जिसके द्वारा

1. Intevals of time

2. Calend

अनेक विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। जो पंजिकाएँ घरों तथा दफ्तरों में हमारी सुविधा के लिए टँगी रहती हैं वे प्रयोगशाला में हाइड्रोजन के हीलियम में होनेवाले तत्त्वान्तरण का अथवा तारों की प्रक्रिया को चालू रखने के लिए आवश्यक पारमाणविक ऊर्जा की विस्फोटक उत्पत्ति का काल-निरूपण करने के लिए किसी भी काम की नहीं हैं। न ये पंजिकाएँ कीटों के अपेक्षाकृत मंदगति विकास अथवा नीहारिकाओं के घूर्णन की विवेचना के लिए ही उपयोगी हैं। इसके कालान्तराल इलेक्ट्रानों के लिए तो अत्यन्त ही बड़े हैं और पर्वतों के निर्माण के इतिहास के लिए अत्यन्त ही छोटे हैं। किन्तु उपर्युक्त अंतिम प्रक्रिया के लिए तो एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पंजिका हमारे पास पहले से ही मौजूद है—भूवैज्ञानिक युगों की सारणी।

अनुसंधानरत मानव के लिए बहुत बड़े मस्तिष्क के अतिरिक्त सबसे अधिक सौभाग्यपूर्ण तथा आशाप्रद बात यह है कि उसका विकास ऐसे ग्रह (पृथ्वी) पर हुआ है जो अत्यन्त पुरातन है। हमारे इस प्रसरणशील जगत् के बिलकुल ही आदिकाल में भी संभवतः जीव का आद्यरूप विद्यमान था। पृथ्वी की प्राचीनतम चट्टानें तो उस समय निस्सन्देह ही विद्यमान थीं। जिस समय उथले समुद्रों में त्रिपिण्डिकों का आधिपत्य था, उस समय नीहारिकाएँ वर्तमान समय की अपेक्षा बहुत पास-पास थीं। अब ऐसा विश्वास किया जाता है कि हमारे सबसे ज्यादा चमकने वाले तारों में से अधिकांश का जन्म तब हुआ था जब इस पृथ्वी से मध्यजीवकल्प[१] के बृहदाकार भीम सरट अथवा छिपकलियों[२] का लोप हो जाने के बाद भी दीर्घकाल बीत चुका था। यदि हम चाहें तो इस भूवैज्ञानिक पंजिका की भाषा का ज्योतिष के प्रसंग में भी उपयोग कर सकते हैं और तारों के लिए अतिनूतन युगी[३] आदि तथा नीहारिकाओं के लिए सितोपलयुगी[४] आदि विशेषणों का प्रयोग कर सकते हैं।

यदि इस पृथ्वी का और उसके जीव-जन्तुओं का तथा मनुष्य का जन्म ५+१०९ वर्ष पूर्व के किसी तारकीय विस्फोट के कारण न होकर लगभग ५००० वर्ष पहले की किसी आधुनिक तारकीय घटना के कारण हुआ होता

1. Mesozoic era
2. Lizards
3. Pliocene
4. Cretaceous

तो हमारे लिए तारों की ऊर्जा की उत्पत्ति का कारण जानना और तारों की आयु का अनुमान लगाना अत्यन्त ही कठिन हो जाता। तब हमारी आधार-रेखा[1] बहुत ही छोटी होती। हम सचमुच ही अत्यन्त भाग्यशाली हैं कि हमारी स्थापना अत्यन्त पुरातन तथा अपेक्षाकृत स्थायी पटल पर हुई थी।

प्रागैतिहासिक काल से ही समय को नापने के लिए शून्याकाश में पृथ्वी के घूर्णन[2] का ही सर्वोत्कृष्ट घड़ी के रूप में उपयोग किया जा रहा है। कोपर्निकस[3] के समय से पूर्व प्रायः सभी लोगों की यह भ्रान्तिपूर्ण धारणा थी कि पृथ्वी तो स्थिर है और सूर्य ही नित्यप्रति पृथ्वी की परिक्रमा करता रहता है। किन्तु इस मिथ्या विश्वास का परिणाम केवल यह हुआ कि काल-निर्धारण का श्रेय सूर्य तथा तारों को दे दिया गया। पृथ्वी का घूर्णन पहले भी अत्यन्त दूरवर्ती तारों को स्थिर निर्देशबिन्दु[4] मानकर उन्हीं की अपेक्षा नापा जाता था और अब भी वैसे ही नापा जाता है। और इस घूर्णन के आवर्तकाल[5] का--अर्थात् दिन का—परिणाम हमें एक सेकंड के दस लाखवाँ भाग आश्चर्यजनक यथार्थता[6] पूर्वक ज्ञात है। किन्तु यह यथार्थता भी आधुनिक विज्ञान के लिए पर्याप्त नहीं है। प्रतिवर्ष ध्रुवीय प्रदेशों के बरफ और हिम खंडों के परिवर्तनशील वितरण के कारण पृथ्वी का घूर्णन थोड़ा-सा विकृत हो जाता है और पृथ्वी के गर्भ में शिलाखंडों के आन्तरिक समंजन[7] का भी इस घूर्णन की नियमितता पर प्रभाव पड़ सकता है। इसके अतिरिक्त चन्द्रमा भी पृथ्वी की वायु में तथा उसके जल और स्थल में ज्वार उत्पन्न करके पृथ्वी के घूर्णन का वेग घटाता जाता है। सूर्य का भी प्रभाव ऐसा ही है, किन्तु अधिक दूरी के कारण यह उतना प्रबल नहीं है।

जब यह मालूम हो गया कि समय का उत्कृष्टतः यथार्थ माप करने में पृथ्वी अक्षम है तब अनेक चतुरतापूर्ण तथा विचक्षण घड़ियों का विकास हुआ, यथा लोलकवाली अत्यन्त परिशुद्ध दास-घड़ियाँ[8] तथा क्रिस्टलों और अमोनिया के अणुओं के अन्तर्वर्ती परमाणुओं के कम्पनों का उपयोग करने वाली

1. Base line
2. Rotation
3. Copernicus
4. Reference point
5. Period
6. Accuracy
7. (adjustment)
8. Slave-clocks

घड़ियाँ। अन्य प्रकार की पारमाणविक घड़ियों का विकास भी इस समय हो रहा है।

आवर्तक[१] तथा ग्रहणशील चरकांति[२] तारे भी खगोलीय घड़ियाँ हैं। किन्तु उनकी यथार्थता बहुत कम है। वृहस्पति तथा शनि की परिक्रमा करने वाले उपग्रह[३] भी इसी प्रकार के कालमापी हैं। हमारी आकाशगंगा के केन्द्र के चारों ओर सूर्य की परिक्रमा भी काल का एक मात्रक प्रस्तुत करती है। यह हमारे लगभग बीस करोड़ (२×१०^{८}) पार्थिव वर्षों के बराबर है, किन्तु इसके नाप में जो अनिश्चितता है वह कुछ सेकंडों, दिनों या महीनों की ही नहीं, वरन् लाखों वर्षों की है। इसे ब्रह्मा का वर्ष कह सकते हैं। यद्यपि इसका परिमाण भली प्रकार ज्ञात नहीं है तब भी नीहारिकाओं के रूपान्तर के प्रसंग में काल के इसी मात्रक का उपयोग किया जा सकता है। किसी तारा मंडल (यथा कृत्तिका)[४] के विलुप्त होने के समय की प्रागुक्ति करने के लिए अथवा हमारी आकाशगंगा की अनुमानित आयु का वर्णन करने के लिए भी यही मात्रक काम में आता है।

किन्तु ब्रह्माण्ड रचनाविज्ञान के लिए सबसे अधिक उपयोगी तथा चित्ताकर्षक काल पंजिका तो भूतल की चट्टानों में निविष्ट यूरेनियम[५], थोरियम[६] तथा अन्य रेडियोएक्टिव[७] परमाणुओं के स्वाभाविक तथा स्वतः प्रेरित क्षय[८] द्वारा प्रस्तुत होती है। यह विचित्र विरोधाभास है कि रेडियोऐक्टिव परमाणुओं के तत्त्वान्तरण[९] के माइक्रो-माइक्रो-सेकंड (१०$^{-१२}$ सेकंड) का सम्बन्ध उस भूवैज्ञानिक पंजिका[१०] से है जिसमें काल का मात्रक हजारों वर्ष लम्बा है। दीर्घतम को नापने के लिए हम सूक्ष्मतम का उपयोग करते हैं।

आकाश गंगा के परिक्रमण काल की ही तरह भू-वैज्ञानिक काल-निर्धारण में भी प्रतिशत यथार्थता कुछ अधिक नहीं है। फिर भी कल्पों की पंजिका[११]

1. Pulsating
2. Variable stars
3. Satellites
4. Pleiades
5. Uranium
6. Thorium
7. Radioactive
8. Decay
9. Transformation
10. Geological Calendar
11. Calendar of the Eras

निस्सन्देह ज्ञान का वह बहुमूल्य सूत्र है जिसे मनुष्य ने बड़े परिश्रम से जगत् के जटिल जंजाल में से सुलझाकर निकाला है।

जिन रेडियोऐक्टिव शिलाखंडों में यूरेनियम के परमाणु स्वतः ही उत्तरोत्तर विघटित हो-होकर संख्या में घटते हैं और इस प्रक्रिया के अंतिम उत्पादन हीलियम[1] तथा सीसे[2] के परमाणुओं की संख्या बढ़ती जाती है उन्हीं में पुरातन जीव के प्रस्तरीभूत जीवाश्म अर्थात् फासिल भी पाये जाते हैं। पुरातन फ़ासिलीभूत बालू और कीचड़ में हमें कभी-कभी हड्डियाँ, सीप, शंख तथा पत्तों की आकृतियाँ और बीजों तथा जन्तुओं के पद-चिह्न मिल जाते हैं। अतः हमारा यह अनुमान उचित है कि रेडियोसक्रियता द्वारा पाषाणों की आयु जितनी निकलती है उतनी ही आयु उनमें निविष्ट फासिलों की भी है। ये प्राचीन जन्तु तथा पौधे स्वयं तो अवश्य ही मर गये हैं, किन्तु जैविक विकास के इतिहास तथा कालानुक्रम के पुनर्निर्माण की दृष्टि से वे अत्यधिक जीवित हैं। इन फासिलों का वितरण उनके लक्षण तथा उनकी आयु का ज्ञान इस पृथ्वी की उत्पत्ति संबंधी समस्या के हल करने में तथा उसके प्रारम्भिक दिनों के रहस्य का उद्घाटन करने में बड़ा सहायक सिद्ध हुआ है। हम एक बार पुनः स्मरण करा देना चाहते हैं कि शिलाओं में निविष्ट फासिल पौधे इस बात की स्पष्ट घोषणा करते हैं कि सूर्य का जैसा प्रकाश आज हमें प्राप्त है वैसा ही अत्यन्त दीर्घकाल तक भविष्य में भी निश्चय ही प्राप्त होता रहेगा।

1. Helium 2. Lead

सारणी २
भू-वैज्ञानिक कालानुक्रम

कल्प (Era)	युग (Period)	प्रारंभ से बीता हुआ समय ($१०^८$ वर्षोंमें)	प्रतिनिधि तथा प्रधान जीव Representative and Dominant Organisms.
मानसजीव (Psycho-zoic)	अभिनूतन (Pleistocene)	१	नरवानर (प्राइमेट Primates) कीट (Insects); पुष्प; मछ-लियाँ; पक्षी
नवजीव (Genozoic)	अतिनूतन (Pliocene)	१५	स्तनधारी (Mammals); शस्य (Grasses); पक्षी कीट; पुष्प-धारी पौधे; कछुए (Turtle); मछलियाँ, साँप, और मगरमच्छ
	अल्पनूतन (Miocene)	३५	
	अधिनूतन (Oligocene)	५०	
	आदिनूतन (Eocene)	६०	
	पुरानूतन (Paleocene)	७०	
मध्यजीव (Mesozoic)	सित पिल (Cretaceous)	१२०	प्रथमपक्षी; स्तनधारी; पुष्प; पर्णपाती पेड़ (deciduous trees) भीमसरट (dinosaurs) मछलियाँ, ताल वृक्ष, कीट; शृंगाश्म (ammonites)
	महासरट (Jurassic)	१७०	
	रक्ताश्म (Triassic)	२००	

सारणी २

भू-वैज्ञानिक कालानुक्रम (क्रमागत)

पुराजीव (Proleozoic)	परमियन (Parmian) पेनसिल्वेनियन (Pennsylvanian) मिसीसिपियन Mississipian) मत्स्य अथवा डेवो- नियन (Devonian) प्रवाल अथवा (सल्यूरियन अSilurian) ओवरप्रवाल अथवा डॉविशियन (Ordovician) त्रिखंड अथवा कैम्ब्रियन (Cambrian)	 २२० २४० २६० ३१० ३५० ४०० ५००	मछलियाँ; पर्णांग (फर्न-Ferns- मेंढक; मूँगा (Coral); नलि- नीकुल (Crinoids); आद्यशंकु- वृक्ष (Conifers); प्रथमकीट शैवाल (Alage); प्रवाल या मूँगा; स्टारफिश (Star fish) नलिनी कुल (Crinoids); प्रथम पर्णांग (Eerns); प्रथम मछलियां; क्लैम (Clams) घोंघे ((Snails) तथा त्रिखंडी (Trilobites
प्रातर्जीव (Proterozoic		(१०००)	शैवाल (Alage) तथा प्रथम स्पंज (Sponges)
आद्य जीव (Archeo- zoic)		(२०००)	प्रथम शैवाल (Algae)
जीव पूर्व (Cosmic)		(५०००)	जीवोत्पत्ति से पूर्व

भू-विज्ञान, ऐक्सकिरण-विज्ञान; पुराजीव-विज्ञान[१], भू-भौतिकी तथा भू-रसायन[२] के अनुसंधानकर्ताओं ने जिस भू-वैज्ञानिक काल-पंजिका को अब प्रस्तुत किया है वह अब से ५० करोड़ वर्ष पहले के कैम्ब्रियन युग के प्रारम्भ काल तक की अति उत्तम पंजिका है (सारणी २)। इसमें उस और भी पुरातन आग्नेय[३] शिलाओं के कालका भी स्थूलरूप से उल्लेख है जिसके साथ अविकसित शैवाल[४] तथा फफूंद[५] के प्राचीनतम अस्पष्ट आलेखों का सम्बन्ध है। ये आलेख बहुत ही थोड़े हैं और बहुत विश्वसनीय भी नहीं हैं, किन्तु उनसे इस बात का आभास मिलता है कि सूर्य के प्रकाश का उपयोग कर सकने वाले जीव कम से कम १५० करोड़ वर्ष पहले भी विद्यमान थे।

रेडियोसक्रियता पर आधारित विश्वीय काल-पंजिका के निर्माण के लिए प्रारंभ में मुख्यतः जिन तत्त्वों का उपयोग किया गया था वे यूरेनियम, रेडियम, थोरियम, हीलियम तथा सीसा ही थे। किन्तु आजकल फासिलों, पाषाणों, और मानव कलाकृतियों[६] के काल-निर्णयन के लिए और भी अनेक तत्वों का उपयोग किया जाता है, यथा पोटासियम जिसके क्षय से कैलशियम तथा आर्गन बनते हैं, रूबीडियम जिसके तत्त्वान्तरण से स्ट्रांशियम उत्पन्न होता है। आक्सिजन तथा कार्बन के समस्थानिकों[७] की आपेक्षिक बहुलता[८] का भी उपयोग किया जाता है। ज्यों-ज्यों प्राविधिक उन्नति होती जायगी त्यों-त्यों संभवतः अन्य तत्त्व भी इस कार्य में सहायता करने लगेंगे। इस काल-पंजिका की प्रामाणिकता बढ़ती जा रही है।

सारणी २ में जो भू-वैज्ञानिक कल्प तथा युग समाविष्ट हैं, उनके प्रारम्भ होने के समय भी बताये गये हैं तथा उनसे सम्बन्धित जीवों की सूची भी दी गयी है। किन्तु न तो उनका उपविभाजन[९] किया गया है और न अभी यह बताया गया है कि ब्रह्माण्ड-रचना के अध्ययन में शिलाओं की आय का क्या महत्त्व है।

1. Paleontology 2. Geo chemstry
3. Igneous 4. Algae 5. Fungus
6. Artifacts 7. Isotopes
8. Relative abundance 9. Subdivision

परमाणूओं की आवर्त-सारणी[१]

हमारी चार सारणियों में से तीसरी सारणी संभवतः मनुष्य द्वारा आयोजित ज्ञान के संकलन की सबसे अधिक संक्षिप्त तथा अर्थपूर्ण युक्ति है। जो काम जगत् के कालनिर्णयन में भू-वैज्ञानिक युगों की सारणी करती है वैसा ही काम रासायनिक तत्त्वों के सम्बन्ध में यह आवर्त-सारणी करती है। इसका इतिहास सूक्ष्मजगत् पर मनुष्य की विजय का इतिहास है। न्यूलैण्डस्,[२] मेयर[३] और विशेषतः मैन्डेलीय[४] के मार्गदर्शक कार्य का अनुसरण करके रसायन तथा भौतिकी के क्षेत्र में अनुसन्धान करनेवालों के उत्साही समुदाय ने परमाणुओं की इस आधारभूत सूची के समस्त आवश्यक अंगों की पूर्ति कर दी है।

इस सारणी में वे समस्त प्रकार के परमाणु प्रदर्शित हैं जो इस समय ज्ञात हैं। वे इस प्रकार विन्यस्त हैं कि विभिन्न खड़े स्तम्भों[५] में स्थित परमाणुओं के विभिन्न वर्ग बन गये हैं और आड़ी पंक्तियों में उनकी विभिन्न श्रेणियां[७] बन गयी हैं। और यदि समुचित रूप में पूर्णतः प्रदर्शित हो तो इस सारणी[८] के द्वारा परमाणुओं की संरचना[९] के सम्बन्ध में हमें बहुत-सी बातें मालूम हो सकती हैं।

हाइड्रोजन परमाणु क्रमांक[१०] से प्रारम्भ करके हीलियम, कार्बन, आक्सिजन, लोह, रजत, सुवर्ण, यूरेनियम (परमाणु-क्रमांक ९२) आदि सभी प्रकार के द्रव्यों का समावेश इसमें है। और हमारे पारमाणविक बिजलीघरों द्वारा[११] निर्मित यूरेनियम से भी भारी अनेक अस्थायी तत्त्व भी प्रदर्शित हैं। अंतिम तीन तत्त्वों को विश्वविख्यात वैज्ञानिकों––आइन्स्टाइन[१२] फर्मी[१३] तथा मेन्डेलीव[१४]––के नाम दिये गये हैं।

1. Periodic table 2. Newlands
3. Meyer 4. Mende-leev
5. Columns 6. Groups 7. Series
8. इसमें जो संकेत (Symbols) दिये गये हैं वे तत्त्वों के नामों के संक्षिप्त रूप हैं। रसायन विज्ञान की समस्त आधुनिक पाठ्य पुस्तकों में इनके पूरे नामों की सूची लिखी रहती है।
9. Structure 10. Atomic numbers
11. Atomic powerhouses 12. Einstein
13. Fermi 14. Mendeleev

सारणी–३

रासायनिक तत्त्वों की आवर्त-सारणी

(Periodic Table of Elements)

1																	2
H																	He
3	4	5	6											7	8	9	10
Li	Be	B	C											N	O	F	Ne
11	12	13	14											15	16	17	18
Na	Mg	Al	Si											P	S	Cl	A
87	88	89	90	91	92	93	94	95	96	97	98	99	100	101			
					U	Mp	Pu	Am	Cm	Bk	Cf	Ei	Fm	M			

गत शताब्दी के वैज्ञानिकों ने न केवल द्रव्य की इस द्वि-विमितीय[1] सुसंगत तथा पूर्ण वर्णमाला की रचना की है, किन्तु वीसियों समस्थानिकों का उत्पादन तथा पहचान करके उन्होंने इसमें तीसरी विमिति भी जोड़ दी है। मख्यतः आजकल के परमाणु-भंजकों[2] की तत्त्वान्तरण क्षमता के प्रभाव से ये समस्त प्रकार के परमाणु समस्थानिक रूप में अर्थात् विभिन्न भार के नाभिकों[3] से युक्त रूप में भी उत्पन्न किये जा सकते हैं। उदाहरण के लिए, प्राकृतिक रेडियोऐक्टिव यूरेनियम के परमाणु का भार २३८ मात्रक भी हो सकता है और २३५ भी। पारद के दस समस्थानिक होते हैं जिनमें सात स्थायी हैं। टिन के दस समस्थानिक तो स्थायी होते हैं और सात रेडियोऐक्टिव। वहुत-से समस्थानिक तो प्राकृतिक होते हैं, किन्तु मनुष्य द्वारा बनाये हुए कृत्रिम समस्थानिकों

1. Two-dimensional　　2. Atom smashers　　3. Nuclei

की संख्या और भी अधिक है। यद्यपि एक ही तत्त्व के विभिन्न समस्थायनकों के परमाणु-भारों में फर्क होता है तथापि उनके इलेक्ट्रानों की बाह्य संरचना बिलकुल एक-सी होती है। अतः उनके रासायनिक तथा स्पैक्ट्रमीय[1] गणधर्म भी निश्चय ही बिलकुल एक समान होते हैं।

अधिकांश तत्त्वों के जो समस्थानिक साइक्लोट्रोन[2] जैसी मशीनों से बनाये जाते हैं, वे अल्पायु होते हैं। रेडियोएक्टिव क्षय[3] के कारण एक सेकंड के अल्पांश मात्र समय में ही उनका लोप हो जाता है। किन्तु दुर्भाग्यवश हाइड्रोजन-बम में से उत्पन्न भयानक स्ट्रांशियम ऐसा अल्पायु नहीं होता और अपनी विस्फोटक उत्पत्ति के बाद बीसों वर्ष तक मनुष्य के लिए विषमय विभीषिका बना रहता है।

रोगों के निदान तथा चिकित्सा में तथा जीव-वैज्ञानिक अनसंधानों में जो अनुसरण-प्रविधि[4] अब अत्यन्त प्रभावशाली हो गयी है उसके मूल में अनेक साधारण तत्त्वों के रेडियोएक्टिव समस्थानिक ही है। भू-विज्ञान में भी इनका महत्त्व उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। चिकित्सा-विज्ञान की भाषा में हम यों कह सकते हैं कि रेडियम, सीसा और रुबीडियम जैसे अनुसरणतत्त्व अथवा ट्रेसर-तत्त्व पाषाणों के वार्धक्य रोग का निदान करने में सहायता करते हैं। अतः ये फासिल पौधों की मदद से सूर्य की पूर्व-कालीन जीवन-शक्ति का इतिहास खोज निकालते हैं।

आवर्त-सारणी के वर्गों और श्रेणियों में निहित नियमों और उनके व्यावहारिक ज्ञान के बिना आज का औद्योगिक युग संभव ही नहीं हो सकता था। इसका "अव्यावहारिक" पक्ष यह है कि भौतिक जगत् में मनुष्य का स्थान निर्धारित करने के लिए उच्चतर वर्णमालाओं की उपयोगिता को कोई भी अन्य सारणीकरण इतनी अच्छी तरह प्रदर्शित नहीं कर सकता।

अनेक कारणों से विश्व-रसायन के विद्यार्थी को चमकते हुए तारों और उनके स्पैक्ट्रमों से भलीभाँति परिचित होना आवश्यक है। प्राचीनतम सभ्यताओं के काल से मनुष्य के दार्शनिक विचारों पर तारों का प्रभाव रहा है। इस जगत् में मनुष्य की स्थिति के ज्ञान का प्रारंभ भी इन्हीं से होता है। इसके अतिरिक्त तारे

1. Spectroscopic
2. Cyclotron
3. Decay
4. Tracer technique

वास्तव में ऐसी उच्चतापीय प्रयोगशालाएँ भी हैं जिनमें न केवल परमाणुओं के गुणधर्मों की, किन्तु स्पैक्ट्रम-वैज्ञानिक की चतुराई की भी परीक्षा हो सकती है।

पृथ्वी पर जो एक सौ प्रकार के परमाणु विद्यमान हैं उनमें से साठ से अधिक सूर्य के स्पैक्ट्रम में भी प्रकट होते हैं। तारों के स्पैक्ट्रमों का भी बिलकुल यही हाल है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि सूर्य में अन्य तत्त्वों का भी अस्तित्व है, किन्तु उनका पता लगाना उतना आसान नहीं है। किन्तु संभवतः मनुष्य द्वारा उत्पन्न किये हुए अनेक कृत्रिम समस्थानिकों का अस्तित्व केवल पृथ्वी पर ही है और यदि वे सूर्य में विद्यमान भी हों तो निश्चय ही सूर्य के पृष्ठीय क्षेत्र में तो अवश्य ही उनका अभाव है।

आकाश में सर्वत्र फैली हुई इन तारकीय प्रयोगशालाओं में अभी तक तो हमें पार्थिव रसायन से भिन्न किसी अन्य विचित्र प्रकार के रसायन का पता नहीं लगा है। जो अपसारी[1] नीहारिकाएँ हमसे अत्यन्त दूर हैं उनमें भी कैलशियम और हाइड्रोजन के परमाणुओं की प्रतिक्रियाएँ ठीक वैसी ही मालूम पड़ती हैं जैसी कि सूर्य के पृष्ठ पर अथवा इस पृथ्वी के वासी अन्वेषकों की प्रयोगशालाओं में होती है। मानव-निर्मित टेकनीशियम[2] (आवर्तसारिणी में क्रमांक ४३) भी कई अत्यन्त दूरवर्ती विचित्र तारों के वातावरण के स्पैक्ट्रमों में पहचान लिया गया है। अतः टेकनीशियम का परमाणु रेडियो ऐक्टिव होता है और उसकी आयु भी अपेक्षाकृत छोटी होती है, इसलिये यह प्रकट है कि वह तारों के पृष्ठीय भाग में, संभवतः कुछ "तारा-कलंकों"[3] में किसी अज्ञात विधि से बराबर बनता रहता है।

इस जगत् के जितने भाग का ज्ञान मनुष्य प्राप्त कर सका है उसमें सर्वत्र रासायनिक संगठन एक ही प्रकार का दिखाई पड़ता है। यह सही है कि विभिन्न तारों में परमाणुओं की आपेक्षिक बहुलता में अंतर पाया गया है तथापि परमाणुओं का आचरण सर्वत्र बिलकुल एक-सा ही है।

आरगन का जगद्व्यापी यातायात[4]

आवर्त सारणी के अंतिम स्तम्भ में हीलियम, नीयान, आरगन, क्रिप्टन

1. Receding
2. Technetium
3. Star spots
4. Worldwide Argon Traffic

आदि जितनी अक्रिय[1] गैसें अवस्थित हैं उन सबकी मात्राएँ पृथ्वी के वायुमंडल में अत्यन्त सूक्ष्म हैं। आक्सिजन तथा नाइट्रोजन के परमाणु तो अनेक प्रकार के अन्य परमाणुओं से संयोजित हो जाते हैं—विशेषकर कार्बन से जिसके यौगिकों[2] के द्वारा समस्त जीव-शरीर संरचित है। किन्तु उपर्युक्त अक्रिय गैसों के परमाणु ऐसे बन्धनों से सर्वथा मुक्त रहते हैं। आरगन को छोड़कर ये समस्त "कुलीन"[3] कहलाने वाली गैसें पृथ्वी की वायु में अत्यन्त ही सूक्ष्म मात्राओं में पायी जाती हैं—सब मिलाकर लगभग १ प्रतिशत के एक हजारवें भाग से अधिक नहीं।

किन्तु आरगन के परमाणु हमारे वायुमंडल के समस्त परमाणुओं में से लगभग ½ प्रतिशत हैं। वे आक्सिजन तथा नाइट्रोजन के परमाणुओं की भीड़ में अच्छी तरह घुल-मिल गये हैं और भूत, भविष्य तथा वर्तमान के समस्त श्वास लेने वाले प्राणियों में इनका विनिमय होता रहता है। न तो ये कभी नष्ट होते हैं और न आणविक संयोजन के द्वारा इनके व्यक्तित्व पर ही कोई आँच आती है। हाइड्रोजन और हीलियम के हलके परमाणुओं की तरह ये वायुमंडल में से अन्तरतारकीय आकाश में नहीं निकल भागते। इनकी उत्पत्ति पोटाशियम के एक विशेष समस्थानिक की स्वाभाविक रेडियो सक्रियता का परिणाम है।

हमारे अथवा मनुष्य के ही बराबर शरीर वाले किसी भी अन्य जन्तु में प्रत्येक श्वास के साथ आरगन के चार सहस्र करोड़ अरब (४×१०^{११}) परमाणु प्रविष्ट होते हैं और किसी भी अन्य वस्तु के साथ इनका संयोजन असंभव होने के कारण ये सब पुनः बाहर निकल आते हैं और तब पवन के द्वारा अत्यन्त शीघ्रता से ये पृथ्वी के वायुमंडल में सर्वत्र फैल जाते हैं। आदम ने अथवा किसी आद्य मानव ने जिन आरगन-परमाणुओं को प्रथम श्वास के साथ अपने शरीर में खींचा था उनमें से कुछ हम सब लोगों के अगले श्वास में भी अवश्य ही विद्यमान होंगे। और हमारे आज के श्वास में जो आरगन-परमाणु हैं वे ही एक शताब्दी बाद जन्म लेने वाले समस्त बच्चों के प्रथम श्वास में भी होंगे। आरगन का यह यातायात अत्यन्त अर्थपूर्ण है और संसार की विचित्र एकसूत्रता का द्योतक है क्योंकि सूर्य के प्रकाश की ही तरह इसे भी कोई राष्ट्रीय सीमाएँ मान्य

1. Inert 2. Compounds 3. Noble

नहीं हैं। अत्यन्त पुरातन तथा सुदूर भविष्य के श्वास लेने वाले प्राणियों से यह एक प्रकार से हमारा जातीय संबंध स्थापित कर देता है।

ईथर का स्पैक्ट्रम--ऊर्जा की वर्णमाला[1]

ऊर्जा के विवेचन के लिए उपयोगी एक और सारणी का निर्माण कर लेने से ब्रह्माण्ड-रचना संबंधी साधन पूरे हो जायेंगे। यह सारणी तथाकथित "ईथर के स्पैक्ट्रम" अथवा विद्युत्‌चुम्बकीय विकिरण[2] के स्पैक्ट्रम से प्राप्त हो सकती है। यह इतनी व्यापक और सन्तोषप्रद तो नहीं होगी जितनी आकाश, काल और द्रव्य की सारणियाँ हैं। ऊर्जा के गरुत्वीय[3] तथा यांत्रिक[4] रूप भी होते हैं जो इस विकिरण के अनुक्रम में प्रत्यक्षतः समाविष्ट नहीं है। किन्तु ब्रह्माण्ड का अन्वेषण करने और उसे पूर्णतः समझने के लिए ऊर्जा के सबसे अधिक रहस्यभेदी तथा उपयोगी रूप वही हैं जो विद्युत्-चुम्बकीय स्पेक्ट्रम में अभिलिखित होते हैं। पृथ्वी पर जीवों की उत्पत्ति और स्थिति विकिरण ऊर्जा के ही कारण संभव हुई। हमारा अस्तित्व, हमारी उष्णता, हमारा भोजन और हमारे ज्ञान का अधिकांश भाग इस समय भी सूर्य से प्राप्त उस ऊर्जा पर निर्भर है जो ईथर-स्पैक्ट्रम के एक छोटे से खंड में निविष्ट होती है। (अतः सूर्य की पुरुषानक्रमी पूजा हमारे लिए स्वाभाविक होनी ही चाहिए)

1. The Ether spectrum, An Alphabet for Energy
2. Electromagnatic radiation
3. Gravitational
4. Mechanical

सारणी ४

विकिरण का अनुक्रम

(The Radiation Sequence)

विकिरण	रंग-दैघर्य (मीटर)	विकिरण	तरंग-दैर्घ्य (मीटर)
अंतरिक्ष-किरणें –प्राथमिक	10^{-20}	दृश्य-प्रकाश (visible light)	$10^{-6.4}$–$10^{-6.}$
(Cosmic rays–द्वैतीयिक	10^{-15}	अवरक्त (infa-red)	$10^{-6.2}$–10^{-4}
गामाकिरणें (Gamma rays)	10^{-12}	माइक्रोतरंक—— (microwave)	10^{-3}–10^{+1}
एक्स किरणें–रोग निदाना- (X-rays) पयोगी	10^{-10}	रेडियो (Radio)	10^{+1}–10^{+4}
अतिवेधी (hard)	10^{-8}		
–अल्पवेधी (soft)	10^{-7}–	विद्युत् शक्ति (Power)	10^{+7}
पराबैंगनी—— (Ultraviolet)	10^{-7}– $10^{-6.5}$	मैक्रोतरंग (Macrowave)	10^{+8} ....

उप-विभागों को छोड़कर इस सारणी का संक्षिप्त तथासरल रूप सारणी ४ में प्रदर्शित है। हमें मनष्य की बद्धि और उसके अध्यवसाय का आदर करना चाहिए कि उसने अपनी इन्द्रियों की सहायता के लिए कृत्रिम सावनों का निर्माण करके विकिरण के बोधगम्य चाक्षुस अनुक्रम के विस्तार को इतना अधिक बढ़ा दिया है जितना पूरे मानव इतिहास में एक शताब्दी से पहले तक कभी भी ज्ञात नहीं हो सका था। विकिरण ऊर्जा का ज्ञान और उपयोग अब केवल बैंगनी से लाल तक के स्पैक्ट्रम-खंड में ही सीमित नहीं है। अब वह बैंगनी को पार कर के पराबैंगनी, एक्स-किरण तथा गामा-किरण प्रदेशों तक विस्तृत हो गया है। दूसरी ओर वह लाल और अवरक्त को अतिक्रम करके, रेडियो तथा गृहों और उद्योगों की प्रकाश तथा शक्ति सम्बन्धी सेवाओं में प्रयुक्त अत्यन्त लम्बी तरंगों (मैक्रोतरंगों) तक फैल गया है। यह विस्तार जिन सहायक "ज्ञानेन्द्रियों" के द्वारा संभव हुआ है उनमें फोटोग्राफी का प्रकाश-सुग्राही इमलशन,[1] तापीययुग्म,[2]

1. Emulsion 2. Thermocouples

फोटान नलियां;[१] ट्रान्सिस्टर;[२] दोलनदर्शी[3] गाइगर गणक;[४] मेघ-कोष्ठ[५] और अनेक इलेक्ट्रानिक यंत्रों का आश्चर्यजनक समुदाय सम्मिलित है। इस नवागत नृवंशी मानव के लिए इतनी प्रगति अवश्य ही अति प्रशंसनीय है।

ऊर्जा का मूल सत्ता के रूप में विवेचन करने के लिए हमें अनेक ऐसे आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारों का भी वर्णन करना पड़ेगा जिनका ब्रह्माण्ड-रचना से घनिष्ठ सम्बन्ध है। भौतिकज्ञों, ज्योतिषियों तथा इंजीनियरों ने स्पैक्ट्रमीय विश्लेषण की सीमा को उच्च ऊर्जा वाली लघु तरंगों तक विस्तृत करने के लिए जिन उपायों और युक्तियों का उपयोग किया है उन सब का भी विवरण देना पड़ेगा। यह भी बताना पड़ेगा कि मनुष्य की चक्षुरिन्द्रिय (आँखों) का स्थान क्रमशः उपर्युक्त विचक्षण यन्त्रों ने किस प्रकार ले लिया है। प्रकृति ने मनुष्य को जो साधन दिये थे उन की अपेक्षा बहुत ही उत्कृष्ट साधन अब उसने प्राप्त कर लिये हैं।

विद्युत्-चुम्बकीय स्पैक्ट्रम में दाहिनी और बायीं ओर की बीसियों ऐसी सप्तकों[६] का अध्ययन कर लिया गया है जो अब तक हमारी पहुँच से बाहर थीं। साठ वर्ष पहले, एक्स-किरणों का आविष्कार हुआ था और तुरन्त ही उनका उपयोग मनुष्य के स्वास्थ्य तथा ज्ञान की उन्नति के लिए होने लगा। अदृश्य पराबैंगनी किरण अब उद्योग तथा चिकित्सा का साधन बन गयी है और अणुओं तथा जैवकोषिकाओं के स्वरूप सम्बन्धी अनुसन्धानों में उससे बड़ी सहायता मिली है। दृश्य प्रकाश की पूर्ववर्ती एकमात्र सप्तक का विस्तार अधिक लम्बी तरंगों के क्षेत्र में हो जाने से भी उतनी ही अधिक मानव-सेवा तथा उतना ही अधिक औद्योगिक विकास संभव हुआ है। दीर्घ तरंगों के क्षेत्र में रेडियो तथा रेडार[७] सम्बन्धी विकास ने तथा अतिलघु[८] तरंगों के क्षेत्र में गामा-किरणों की विस्फोटक ऊर्जाओं ने एक नवीन संस्कृति––पारमाणविक सभ्यता––को जन्म दिया है। थोड़े-से दशाब्दों में ही द्रव्य तथा ऊर्जा सम्बन्धी अनुसन्धानों ने मानव जीवन के स्वरूप को बदल दिया है और मनुष्य के सामाजिक दर्शन पर गहरा प्रभाव डाला है। इस निबन्ध का एक अंग यह विचार भी है कि इन वैज्ञानिक

1. Photon tubes 2. Transiutors 3. Oscilloscopes
4. Geiger Counters 5. Cloud-chambers
6. Octaves 7. Radar 8. Ultra short

आविष्कारों तथा उन पर आश्रित प्रविधियों के कारण प्राचीन दर्शनों तथा सिद्धान्तों में गहरा उलट-फेर अवश्यम्भावी है। उनके द्वारा मनुष्य के अनेक आधार-भूत विश्वासों में आमूल परिवर्तन हो जाने की संभावना स्पष्ट दिखाई देती है। इस विचारधारा को आगे के अध्यायों में परोक्षतः अधिक संपुष्ट किया गया है।

यह विकिरण-स्पैक्ट्रम अनेक अश्चर्यकारी विकासों में भी संश्लिष्ट है। यथा (१) पृथ्वी के वायुमंडल के ओजोन[१] स्तर के पार यद्ध-प्रेरित राकेटों[२] का गमन (२) उच्च ऊर्जा वाले फोटान[३] तथा अत्यन्त तीव्र वेग वाली इलेक्ट्रान, प्रोटान, न्यूट्रान आदि कणिकाओं के प्रहार के द्वारा एक परमाणु का दूसरे परमाणु में तत्त्वान्तरण करने की कीमियागिरी और (३) भारी परमाणुओं के विखंडन[४] तथा हलके परमाणओं के संलयन[५] के द्वारा कल्याणकारी शांति तथा अनिष्टकारी युद्ध के लिए पारमाणविक ऊर्जा की उत्पत्ति।

इस विद्यत्-चुम्बकीय स्पैक्ट्रम द्वारा प्रस्तुत प्रचुरता में से बाद में कुछ बातों की छांट कर हम उनका इस दृष्टि से गहरा अध्ययन करेंगे कि ब्रह्माण्ड-रचना की व्याख्या तथा भविष्य सम्बन्धी प्रागुक्तियों के लिए उनसे कितनी सहायता मिल सकती है। मानव-स्थिति-निर्धारण में अवश्य ही वे उपयोगी सिद्ध होंगी।

ब्रह्माण्ड रचना-विज्ञान के लिए गौण सारणियां

उपर्युक्त चार प्रमुख सारणियों की सहायता के लिए कुछ थोड़ी-सी संक्षेपक सारणियाँ और भी बना लेना बहुत उपयोगी होगा। कुछ तो इन्हीं चार प्रमुख सारणियों के उपविभाजन से प्राप्त हो जायेंगी—यथा विभिन्न प्रकार की नीहारिकाओं अथवा द्वीप-विश्यों की सारणी तथा विभिन्न प्रकार की मूल द्रव्य-कणिकाओं की सारणी। इनके अतिरिक्त निम्नलिखित अपेक्षाकृत छोटी पाँच सारणियाँ भी उपयोगी हैं।

(१) सौर परिवार के ग्रहों, उनके वर्षों, दिनों तथा उनकी दूरियों और विस्तारों की सारणी। पृथ्वी की उत्पत्ति के विवेचन में इन सब बातों का ज्ञान लाभकारी है।

1. Oxone 2. Rockets 3. Photons
4. Fission 5. Fusion

(२) जन्तुओं तथा पौधों के प्रमुख समुदायों[१] की सारणी। ये समस्त प्राणी सूर्य के प्रकाश तथा उथले समुद्रों के आद्य "पतले-जूष"[२] की पार्थिव सन्तान हैं।

(३) स्तनपोषियों के विभिन्न वर्गों की सूची जिनमें ह्वेल मछली से लेकर चमगादड़, गायें और नर वानर तक सभी सम्मिलित हैं।

(४) तारकीय स्पैक्ट्रमों का अनुक्रम[३] मृग अर्थात् ओरियन[४] तारामंडल के उत्तप्त नील वर्ण द्वितीय मृग राइगेल[५] नामक तारे—से पीतवर्ण अगस्त्य[६] तथा सूर्य एवं ताप के अनुक्रम में और भी नीचे जाकर लालरंग के आर्द्रा[७] तथा ज्येष्ठा[८] तक के तारों की वर्ण तथा तापीय क्रम की सूची।

(५) जन्तु समाजों की सूची जिसमें अंडे देने वाली सामन[९] मछली, एक पत्नीक राबिन पक्षी,[१०] भैंसों का झुंड और मानव समाज तथा और भी आगे बढ़कर मधुमक्खियों के तथा फफूंद की कृषि करने वाली चींटियों के संभवतः सर्वोत्कृष्ट सामाजिक संगठन सभी सम्मिलित हैं।

आकाश, काल, द्रव्य तथा ऊर्जा की दृष्टि से मनुष्य की स्थिति के निर्धारण का सारांश

स्थिति-निर्धारण की समस्या की पर्यालोचना के अंत में यह देखना है कि इन मूल सत्ताओं की दृष्टि से हमारा स्थान वास्तव में कहाँ है। स्मरण रहे कि हम केवल भौतिक जगत् के ही सम्वन्ध में विचार कर रहे हैं। जिस जगत् को शायद चिन्ता का प्रवाह"[११] कहा जा सकता है उसमें या किसी रहस्यमय आध्यात्मिक सूची में तो अपनी स्थिति का पता हम लगा ही कैसे सकते हैं ? अतः हम तो केवल काल, आकाश, ऊर्जा और द्रव्य के ही जगत् में अपनी स्थिति का संक्षिप्त दिग्दर्शन करेंगे।

1. Phyla
2. Thin soup
3. Sequence of Stellar spectra
4. Orion
5. Rigel
6. Canopus
7. Betelgeuse
8. Antares
9. Salmon
10. Robin
11. Stream of thought

(१) **काल**—यह तो स्पष्ट ही है कि काल की दृष्टि से हम यथार्थतः भूत और भविष्य के बीच में अवस्थित हैं। भविष्य के विषय में हम थोड़ा-सा बहिर्वेशन[1] कर सकते हैं, किन्तु बहुत सावधानी से। जहाँ तक ग्रहों, तारों और नीहारिकाओं का सम्बन्ध है, स्पष्टतः हमें इस भौतिक जगत् का अन्त नहीं दिखाई देता। हम केवल अपूर्ण सिद्धान्तों के आधार पर कुछ अनुमान ही लगा सकते हैं। भूतकाल के सम्बन्ध में इस बात के स्पष्टतर संकेत मिलते हैं कि पाँच और पंद्रह अरब वर्षों के बीच में कोई समय T_0 ऐसा था जिसका महत्त्व इस भौतिक जगत् के इतिहास में असाधारण समझा जा सकता है। हमारा विश्वास है कि भूतकाल में तो कोई विशेषतः निर्दिष्ट क्षण ऐसा अवश्य था जिस समय इस संसार की सृष्टि हुई थी, किन्तु भविष्य में इतनी ही अच्छी तरह से निर्दिष्ट क्षण कोई भी नहीं है। हम इस विकासशील ब्रह्माण्ड के विगत व्यापार को तो परिमित मानते हैं, किन्तु इसके भविष्य को अनन्त ही समझते हैं।

यदि हम उपर्युक्त T_0 के अस्तित्व का निराकरण करके यह न मान लें कि किसी भी विशेष क्षण में इस संसार की सृष्टि नहीं हुई थी, इन धूल और तारों से परिपूर्ण नीहारिकाओं का कोई वास्तविक आदिकाल नहीं था, और इस प्रसरणशील विश्व के व्यापार का प्रारम्भ कभी नहीं किया गया था तो हम इस परिणाम पर अवश्य ही पहुँचेंगे कि काल की दृष्टि से अभी हम अपेक्षाकृत युवावस्था में ही हैं। हम अभी संसार के अंत समय के निकट नहीं पहुँचे हैं। अभी तो आधी दूर भी नहीं पहुँच सके हैं। तारों को उत्तप्त करने वाला हाइड्रोजन का ईंधन अत्यन्त प्रचुर मात्रा में विद्यमान है। अभी तो हमारी-नीहारिकाओं, तारों और जीवजन्तुओं आदि की प्रगति का अच्छी तरह प्रारम्भ भी नहीं हुआ है। हमारे विगत $१०^{१०}$ वर्ष अनन्त भविष्य की तुलना में सचमुच ही अत्यन्त सूक्ष्म तथा उपेक्षणीय हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि इसके विकल्प में दूसरी परिकल्पना भी बनायी जा सकती है। उसके अनुसार समस्त वस्तुओं को अपने अन्तरंग में धारण करने वाले किसी प्राक्तन अतिपरमाणु[2] के अस्तित्व और उसके विस्फोटन की धारणा मिथ्या है और भविष्य जितना अनन्त है उतना ही अनन्त भूतकाल भी है। इस परिकल्पना[3] में ईश्वरवाद तथा प्राचीन धर्मशास्त्रों की थोड़ी गंध तो आती है, किन्तु

1. Extrapolation 2. Super atom 3. Theology

यदि इसे परीक्षार्थ मान लिया जाय तो हमें यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि इस भौतिक जगत् की प्रसरणशीलता के कारण जितना द्रव्य इसके सीमान्त को पार करके निरन्तर बाहर निकलता और विलुप्त होता रहता है उतने ही की शून्य अथवा असत् में से सृष्टि (प्रादुर्भाव) भी निरन्तर अवश्य ही होती रहती है। इस प्राक्तन अतिपरमाणु की परिकल्पना का सुझाव पहले-पहल पादरी लिमेत्र[1] ने दिया था। और सन्देह नहीं कि अनेक प्रेक्षणों के साथ इसमें सांगत्य भी है। इस संतत सृष्टि[2] की परिकल्पना के प्रणेताओं में जार्डन[3], बोन्डी[4], गोल्ड[5] और हायल[6] के नाम लिये जाते हैं, किन्तु इसकी सुन्दरता के प्रलोभन अनुरूप प्रेक्षणात्मक अनुमोदन अभी तक इसे प्राप्त नहीं हो सका है। इस समय केवल इतना स्वीकार कर लेने में कोई हानि नहीं कि इस जगत् का भूतकाल अत्यन्त दीर्घ था और इसका भविष्य भी उतना ही अथवा उस से भी अधिक लम्बा है।

(२) आकाश—विस्तार[7] अथवा आयतनों[8] की सूची में हमारा (मनुष्य का) स्थान सरलता से निश्चित हो सकता है। बात यह है कि मनुष्य की अपेक्षा सूर्य जितना बड़ा है उतना ही बड़ा मनुष्य हाइड्रोजन-परमाणु की अपेक्षा है इसी बात को गणोत्तर श्रेणी[9] की भाषा में हम यों कह सकते हैं कि भौतिक वस्तुओं की श्रेणी में हमारा स्थान लगभग बीच में है अर्थात् $\frac{\text{तारा}}{\text{मनुष्य}} = \frac{\text{मनुष्य}}{\text{परमाणु}}$ हम इनके तौलों को चाहे ग्रामों में नापें या इनके व्यासों को सेण्टीमीटरों में, उपर्युक्त वक्तव्य दोनों ही दशाओं में सत्य होगा। तारों और नीहारिकाओं के बीच में मनुष्य का स्थान कहाँ है इसकी विवेचना अध्याय में की गयी है।

(३) ऊर्जा—ऊर्जा की सारणी में मनुष्य को स्थान देने का कोई अर्थ ही नहीं है। हो सकता है कि हम अपने शरीरों के द्रव्यमानों के द्वारा व्यक्त ऊर्जा का परिमाण गणना द्वारा मालूम कर लें और उसकी तुलना तारों और परमाणुओं

1. C anon Le maitre
2. Centinous creation
3. J ordan
4. Bondi
5. G old
6. Hoyle
7. Size
8. Volume
9. Gemetrical progression

के द्रव्यमानों द्वारा व्यक्त ऊर्जा से कर लें। पर ऐसी तुलना तो हम भौतिक जगत् में अपना स्थान निर्धारित करते समय पहले ही कर चुके हैं। ऊर्जा की सारणी में अपना स्थान निर्धारित करने का एक अस्पष्ट तरीका यह भी हो सकता है कि हम यह अनुमान करें कि हम कितनी ऊर्जा का उपयोग कर सकते हैं। हमारे पूर्वजों को जितनी ऊर्जा उपलब्ध थी उसकी तुलना में, ऐसा ज्ञात होता है कि हमारा भंडार बहुत ही बड़ा हो गया है। अब हमारे पास ईंधन से चलने वाले डायनमों[1] हैं; जल-विद्युत् के कारखाने भी हैं[2] और पिछले कुछ वर्षों में हमने पारमाणविक ऊर्जा[3] के कुछ थोड़े-से अंश पर भी विजय प्राप्त कर ली है। किन्तु ऊर्जा उत्पादन के इन समस्त पार्थिव साधनों को एकत्रित करके यदि हम यह कहें कि ऊर्जा की सारणी में हमारा स्थान इन समस्त साधनों के द्वारा निश्चित होना चाहिए तो हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि जितनी ऊर्जा औसत दर्जे का एक तारा एक क्षण में विकीर्ण करता है उसकी तुलना में इनकी ऊर्जा कुछ भी नहीं है। यह अनुमान लगाया गया है कि एक अच्छा-सा भूकम्प, जिसे मनुष्य न तो स्वयं उत्पन्न कर सकता है और न नियंत्रित ही कर सकता है, ऊर्जा की दृष्टि से एक हजार परमाणु-बमों के बराबर होता है। एक सामान्य विस्तार की सौर-ज्वाला[4] के सामने हमारे ये "नगरविध्वंसक" बम अत्यन्त छोटे पटाखे के सदृश दिखाई पड़ते हैं। संक्षेप में, जगत् की समस्त ऊर्जा-उत्पादक क्रियाओं तथा साधनों की तुलना में मनुष्य और उसकी मशीनों का महत्त्व बहुत ही कम—लगभग नगण्य—है।

(४) द्रव्य—उदारता तथा मिथ्याभिमान की दृष्टि से द्रव्यों की सूची में हम अपने लिए बहुत अधिक अच्छे स्थान का दावा कर सकते हैं। यद्यपि आकाश, काल और ऊर्जा की दृष्टि से हम उपेक्षणीय तथा अनुषंगीमात्र ही हैं तथापि हममें यह विशेषता तो है ही कि जितने नाना प्रकार के रासायनिक परमाणु हममें विद्यमान हैं वे वही हैं जो इस जगत् की विराट् सत्ताओं में—अजीव ग्रहों, तारों, नीहारिकाओं तथा विश्वीय धूल में—पाये जाते हैं। मनुष्य भी एक प्रकार से तारों के ही द्रव्य से बना है। उस की रचना में वे ही महत्त्वपूर्ण बीस तत्त्व हैं जो पृथ्वी के पृष्ठीय स्तर में भी विद्यमान हैं। उसके शरीर में

1 Dynamo
2. Hydro electric plants
3. Atomic energy
4. Solar prominence

कुछ रासायनिक तत्त्वों का तो बाहुल्य है, किन्तु कुछ ऐसे भी हैं जिनकी मात्रा अत्यन्त सूक्ष्म है। स्तनपोषी जन्तुओं की संरचना में सबसे प्रमुख परमाणु निम्नलिखित हैं। प्रत्येक द्रव्य के सामने सन्निकट प्रतिशतता भी लिख दी गयी है।

आक्सिजन	— ६५%
कार्बन	— १८
हाइड्रोजन	— १०
नाइट्रोजन	— ३
केल्शियम	— २
फासफोरस	— १
अन्य	— १

एक प्रचलित सिद्धान्त के अनुसार सूर्य तथा सूर्योपम तारों के वायुमंडलों में द्रव्य का वितरण निम्न प्रकार है :—

हाइड्रोजन	८१.७६%	सिलीकन	०.००६
हीलियम	१८.१७	गंधक	०.००३
आक्सिजन	०.०३	कार्बन	०.००३
मैंगनीशियम	०.०२	लोहा	०.००१
नाइट्रोजन	०.०१	अन्य	०.००१

और ताराभौतिकीय[1] साक्ष्य के एक अन्य निर्वाचन तथा सिद्धान्त के अनुसार सूर्य के संरचक द्रव्य निम्नलिखित हैं—

हाइड्रोजन	८७%	मैगनीशियम	.००३
हीलियम	१२.९	सिलीकन	.००२
आक्सिजन	०.०२५	लोह	.००१
नाइट्रोजन	०.०२	गंधक	.००१
कार्बन	०.०१	अन्य	.०३८

वायु तथा समुद्रों सहित पृथ्वी के पृष्ठीय आवरण में—

आक्सिजन	४९.२%	सोडियम	२.६
सिलीकन	२५.७	पोटाशियम	२.४
ऐल्यूमिनियम	७.५	मैगनीशियम	१.९
लोह	४.७	हाइड्रोजन	०.९
कैलशियम	३.४	अन्य	१.७

1. Ast rephy sicai

किन्तु यदि परिकल्पित लोह-निकल मय केन्द्रीय भाग को भी सम्मिलित कर लिया जाय तो पूरी पृथ्वी के अवयवों का अनुमान निम्नलिखित है:—

लोह	६७%	निकल	४
आक्सिजन	१२	अन्य	१०
सिलीकन	७		

मनुष्य के शरीर में जितने तत्त्व हैं वे सब के सब पृथ्वी की ठोस पपड़ी में या उसके ऊपर मौजूद हैं ही। यदि सबका नहीं तो उनमें से अधिकांश के अस्तित्व का तारों के उत्तप्त वातावरणों में भी परिचय मिला है। जन्तुओं के शरीरों में किसी प्रकार के भी एसे परमाणु नहीं मिले हैं जिनकी उपस्थिति अजीव परिवेश में सुपरिचित न हो। स्पष्ट है कि मनुष्य भी तारों के साधारण द्रव्य से ही बना है और उसे इस बात का गर्व होना चाहिए।

एक बात में जन्तु और पौध तारों से बढ़ कर हैं। अणुओं तथा आणविक संगठनों की जटिलता में जीवित प्राणी अजीव-जगत् के पारमाणविक संयोजनों से बहुत आग बढ़ गय हैं। कैटरपिलर की रचना कार्बनिक रसायन सम्बन्धी रचना की तुलना में सूर्य के प्रज्वलित वातावरण तथा अन्तरंग की रासायनिक सरचना बहुत ही सरल पायी गयी है। यही कारण है कि हम कीटडिम्भ[1] की अपेक्षा तारों का रहस्य अधिक समझ सके हैं। तारों की प्रक्रियाएँ गुरुत्वाकर्षण के, गैसों के तथा विकिरण के नियमों के अनुसर होती हैं। अतः उन पर दबाव, घनत्व तथा टेम्परेचर का प्रभाव पड़ता है। किन्तु प्राणियों के शरीर गैसों, द्रवों तथा ठोस पदार्थों के निराशाजनक मिश्रण हैं—निराशाजनक यों कि उनके लिए हम कोई परिपूर्ण गणितीय तथा भौतिक-रासायनिक सूत्र प्राप्त करने में सफल नहीं हो सके हैं। जीव-रसायनविज्ञानी[2] को जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है उनको देखते हुए तारा भौतिकज्ञ[3] का काम बहुत ही सरल है।

1. Insect larvae
2. Biochemist
3. Astrophysicist

अध्याय ४

दूसरी दुनियाओं की खोज

मनुष्य और उसकी भवितव्यता को ब्रह्माण्ड के लिए महत्त्वपूर्ण घोषित करने से पहले हमें समस्त तारों भरे आकाश में और ब्रह्माण्डीय काल में जीव-द्रव्य अर्थात् प्रोटोप्लाजम[1] के अस्तित्व और वितरण की संभावना की तरफ ध्यान देना चाहिए। अब हमें इस परिकल्पना से संतोष नहीं हो सकता कि सजीव प्राणियों का निवास केवल इस पृथ्वी ही पर है। किन्तु सजीव प्राणी कहाँ-कहाँ पर विद्यमान हैं, इस पर विचार करने से पहले हमें इस प्रश्न का विवेचन करना चाहिए कि जैविक प्रक्रियाओं के लिए उपयुक्त स्थान कहाँ-कहाँ हैं। हमारे सामने सबसे प्रथम विचारणीय विषय यह नहीं है कि ऐसे स्थानों में इस समय जीवों का निवास है या नहीं। हम तो पहले यह जानना चाहते हैं कि क्या कोई दूसरे खगोलीय पिंड भी जीवों के रहने योग्य हैं--ऐसे पिंड जहाँ यदि जीव पहुँच जाय तो उसे प्रश्रय मिल सकता है। इसमें सन्देह नहीं कि अन्तरतारकीय आकाश की सीमाओं के उस पार रहस्यपूर्ण आनन्दमय लोकों में मनुष्य अथवा मनुष्य के सदृश्य किसी अन्य जीवों की खोज के समान मनोरंजक अनुसंधान-क्षेत्र दूसरा नहीं है। किन्तु या वास्तव में ऐसे आनन्दमय लोक वर्तमान हैं?

अन्य तारें और अन्य ग्रह

सभी व्यावहाकि लोग स्वीकार करते हैं कि हमारा अस्तित्व है। इस विषय पर विचार करने वालों में ऐसे अत्यन्त ही थोड़े होंगे जिनके मन में ऐसी शंका होती हो कि शायद हम हैं ही नहीं और यह संसार स्वप्नमात्र है, माया है और केवल एक जटिल कल्पना है। किन्तु हम तो इस विषय में बहुमत का साथ

1. Protoplasm

देंगे और आपके और मेरे अस्तित्व को तथा हमारे चारों ओर के भौतिक संसार के अस्तित्व को भी वास्तविक मान लेंगे। और इस विवेचन को प्रारम्भ करने से पहले ही सरलता की दृष्टि से हम यह भी मान लेंगे कि यदि कोई अभौतिक[1] संसार हो तो उसका भी अस्तित्व है। "अभौतिक" (यदि कोई हो) तथा "अस्तित्व" आदि इन शब्दों के सम्बन्ध में बहुत वाद-विवाद हो सकता है, किन्तु इन वाक्-युद्धों के शस्त्र अधिकतर शब्द ही होंगे—विचार नहीं।

जिस पृथ्वी पर हम रहते हैं उसी पर दस लाख से भी अधिक अन्य अनेक प्रकार के प्राणी भी हमारी ही तरह के जैविक विकास के अनुभव से आनन्दित अथवा दुःखित हो रहे हैं। अतः यह स्वाभाविक है कि हम इस "जीवित रहने" की प्रक्रिया का मनन करें। हम देखते हैं कि जीवों के नाना प्रकार के विभिन्न रूप वर्तमान हैं, और जिन परिस्थितियों में वे जीवित रहते हैं उनमें भी चरम कोटि की विभिन्नता है। हम यह भी देखते हैं कि मनुष्य में अपने आपको विभिन्न परिस्थितियों के अनुकूल बनाने की भी अद्भुत क्षमता है। स्वभावतः ही यह प्रश्न उठता है कि "क्या हमारे-जैसे जीव अन्यत्र भी हैं ?" यह प्रश्न कभी-कभी तो धर्मगुरुओं से और दार्शनिकों से तथा सामान्यतः ज्योतिषियों से ही पूछा जाता है। मैं ज्योतिषियों की ओर से इसका उत्तर देने का साहस करूँगा। किन्तु इस अध्याय में तो हम मुख्यतः इससे पूर्ववर्ती प्रश्न पर ही विचार करेंगे; क्या हमारी पृथ्वी के सदृश ग्रह अन्यत्र भी हैं ?

मानव शरीर केवल उन्हीं रासायनिक तत्त्वों से बना है जिनसे प्रायः सभी लोग परिचित हैं। उसमें इन तत्त्वों के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है पिछले अध्याय में हमने जन्तु-शरीरों के मुख्य परमाणुओं की सूची बनायी थी। हमें स्मरण रखना चाहिए कि रासायनिक संगठन की दृष्टि से मनुष्य भी निःसन्देह एक जन्तु ही है। हमारे शरीर का ६५% भाग आक्सिजन से बना है, १८% कार्बन से, १०% हाइड्रोजन, ३% नाइट्रोजन, तथा २% कैलशियम से। शेष २% में सिलिकन, फासफोरस, सोडियम, गंधक, लोह और एक दर्जन अन्य तत्त्व सम्मिलित हैं। ये समस्त तत्त्व पृथ्वी के पृष्ठीय भाग में तथा सूर्य की ज्वालाओं में भी विद्यमान हैं। चूहे से लेकर जोंक तक और जलीय अष्टबाहु[2] से लेकर कठोर मूंगे[3] तक इन परमाणुओं की प्रतिशतता में थोड़ा-बहुत अन्तर

1. Non.physical 2. Octopus 3. Coral

तो होता है। यथा हड्डियों वाले मेरुदंडियों[1] में कैलशियम औसत से अधिक होता है, बाहुपादों[2] में सिलिकन अधिक होता है, जैलीफ़िश[3] मछली में जल अधिक होता है। किन्तु सभी जन्तु अपने शरीर के निर्माण में उपर्युक्त सभी साधारण परमाणुओं का उपयोग करते हैं। जो तत्त्व पाषाणों और शिलाओं में बहुत कम पाये जाते हैं, यथा सुवर्ण, प्लैटिनम तथा रेडियम उन सबका मनुष्य के शरीर में भी अभाव है।

तारों में जीवन का अभाव

तारों में भी वे ही द्रव्य हैं जिनसे सूर्य तथा पृथ्वी-तल बने हैं। जिन द्रव्यों से पार्थिव जीव-जन्तु बने हैं उन्हीं से तारे भी बने हैं। और जहाँ तक हमें मालूम हो सका है भौतिक नियम सर्वत्र बिलकुल एक समान हैं। जिन नियमों का आधिपत्य हमारी आकाशगंगा के केन्द्र में है ठीक वे ही नियम सूर्य के निकटवर्ती तारों में तथा अत्यन्त दूरवर्ती नीहारिकाओं में भी कार्य करते हैं।

जब समस्त जगत् में भौतिकी तथा रसायन की क्रियाएँ एक-समान हैं तो क्या हमें यह आशा नहीं करनी चाहिए कि जीव-जन्तु तथा पौध भी सर्वत्र ही विद्यमान होंगे? यह बात सर्वथा तर्कसंगत जान पड़ती है। और शीघ्र ही हमें यह भी कहना पड़ेगा कि ऐसा होना अनिवार्य भी मालूम देता है। किन्तु अन्य ग्रहों में जीवों की वास्तविक उपस्थिति का प्रमाण देना अभी हमारे लिए असंभव है, क्योंकि तारे हम से इतनी अधिक दूरी पर हैं और हम, पृथ्वीनिबद्ध आकाश के अनुसंधानक, तारकीय वास्तविकताओं की तुलना में अत्यन्त दुर्बल हैं। किन्तु सांख्यिकीय विश्लेषण[4] के द्वारा यह सिद्ध करना कठिन नहीं है कि जीवधारियों के रहने योग्य ग्रहों की प्रायिकता[5] अत्यन्त उच्च है। वस्तुतः दो-एक छुट-पुट प्रेक्षणों की अपेक्षा सांख्यिकीय तर्क अधिक विश्वसनीय होता है।

इस विवेचन को अधिक स्पष्ट करने के लिए प्रारम्भ में ही हम दो साधारण बातों का स्मरण करा देना चाहते हैं—(१) जीवन से हमारा मतलब उस जीवन से है जिससे हम इस पृथ्वी के निवासी परिचित हैं—अर्थात् वह

1. Vertebrates 2. Brachiopods 3. Gellyfish
4. Statistical analysis 5. Probability

जीवरासायनिक प्रक्रिया जिसका सम्बन्ध कार्बन तथा नाइट्रोजन से है और जिसमें जल का उपयोग द्रव अवस्था में होता है; (अन्य प्रकार के जीवन की कल्पना भी सम्भव है जिसमें कार्बन का स्थान सिलिकन ले ले या गंधक की क्रिया वैसी ही हो जैसी यहाँ आक्सिजन की होती है। ऐसे जीवन की कल्पना तो की जा सकती है, किन्तु उसके अस्तित्व की संभावना बहुत कम है), (२) अतः हमारे सौर परिवार[1] में मंगल[2] तथा शुक्र[3] ही ऐसे अन्य ग्रह हैं, जो जीवित प्राणियों के निवास के योग्य समझे जा सकते हैं। इस बात के काफी अच्छे प्रमाण हैं कि यदि मंगल ग्रह में जीवित प्राणी हैं तो वे निम्न श्रेणी के लाइकेन[4] नामक वनस्पति के जैसे ही हो सकते हैं और शुक्र के पृष्ठ की समस्या तो अभी तक रहस्यमयी ही बनी है, किन्तु उसके वातावरण के घातक रासायनिक संघटन के कारण वहाँ जीवन की संभावना बहुत ही कम है।

जीवन की अनेक परिभाषाओं में से एक निष्ठुर तथा कठोर परिभाषा यह भी है—"जीवन द्रव्य का ऐसा संगठन है जिसमें उस संगठन को अमर बनाये रखने की क्षमता है।" इसमें मुख्य बात है चिरस्थायी बनाना। शायद इसे यों व्यक्त करना अधिक उचित है—"किसी द्रव्य-संगठन द्वारा अपने संगठन को अमर बनाने की प्रक्रिया का नाम जीवन है।" यह परिभाषा जितनी व्यक्तियों के लिए उपयुक्त है उतनी ही जातियों तथा समाजों के लिए भी। ये सब भी जीवित होती हैं। यदि हम मृत्यु की यथोचित परिभाषा दे दें तो इन सबकी मृत्यु भी हो जाती है। किन्तु इस परिभाषा के अनुसार हमारे श्वास में जो चिरचंचल तथा मृत्युहीन परमाणु हैं वे जीवित नहीं हैं।

जीवन बड़ा रक्षणशील, दृढ़ तथा दुरन्त होता है, और यदि उसे बदली हुई परिस्थितियों के अनुकूल बनने[5] का समय मिल जाय तो वह चिरस्थायी भी होता है। वह उष्णोच्छलिकाओं[6] में तथा गरम पानी के स्रोतों में भी पाया जाता है। कई फूल बरफ के नीचे भी खिलते हैं। उत्तप्त रेगिस्तानों में भी कभी-कभी पौधे और जानवर दीर्घकाल तक जीवित रहते हैं। कई प्रकार के बीज बिलकुल सूख जाने पर अथवा अत्यन्त शैत्य से भी नष्ट नहीं होते। इस पृथ्वी

1. Solar System 2. Mars 3. Venus
4. Lichen 5. Adaptation 6. Geysers

पर जिस जीवन से हमारा परिचय है उसमें अनुकूलन-क्षमता बहुत ही अधिक तो है, किन्तु फिर भी उसकी कुछ सीमाएँ हैं। किसी तारे के पृष्ठ के निकट का प्रचंड ताप तथा विकिरण एसी सीमा के बाहर है। वहाँ जीव तत्त्व अर्थात् प्रोटोप्लाज्म के अणुओं का विघटन[1] हो जाता है।

अतः इस विशाल ब्रह्माण्ड में जीवन के निवासस्थानों की खोज में हमें लाखों करोड़ प्रज्वलित तारों पर जीवन के अस्तित्व के विचार को तो तुरन्त ही छोड़ देना चाहिए। सूर्य की ज्वालाओं में आक्सिजन, कार्बन, हाइड्रोजन, नाइट्रोजन और कैलशियम आदि जीवशरीर के मुख्य संघटक द्रव्यों के चंचल परमाणु प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। किन्तु भौतिक चंचलता और जैविक चंचलता सर्वथा भिन्न प्रकार की क्रियाएँ होती हैं।

आर्द्रा[2] तथा ज्येष्ठा जैसे ढंडे तारों के पृष्ठ पर तथा सूर्य के शीतल धब्बों में बीसियों प्रकार के परमाणुओं के अतिरिक्त हमारे परिचित अणु भी थोड़ी मात्रा में पाये जाते हैं। किन्तु वे न तो इतने जटिल हैं और न इतने नाजुक जितने कि सरलतम जीवशरीर के आणविक संगठन—प्रोटीन होते हैं। यह तो प्रकट ही है कि तारों में जल द्रव अवस्था में नहीं होता।

उल्काओं तथा धूमकेतुओं में भी जीवन का अभाव

अतः जीव के निवासस्थानों की गिनती में तारे तो आ ही नहीं सकते। और शायद जगत् के समस्त द्रव्य का आधे से अधिक भाग इन तारों में ही है। ऐसा विश्वास है कि अवशिष्ट भाग का अधिकांश अन्तर-तारकीय गैस के तथा थोड़ा-सा भाग धूल के रूप में है। यही धूल पृथ्वी के वायुमंडल से टकरा कर उल्काओं के रूप में प्रकट होती है और हमारी आकाशगंगा की ज्योति के बीच में पड़ कर उसमें धब्बे उत्पन्न करने वाला दूरवर्ती, काला, नीहारिकासम, झिलमिल, आवरण भी इसी धूल के कारण है। इन सूक्ष्म उल्कीय कणों पर अथवा अपेक्षाकृत बड़े बड़े उल्का-पिंडों पर भी किसी प्रकार का जीवन नहीं है। इसके कई कारण हैं। (१) इनके द्रव्यमान इतने स्वल्प हैं कि वहाँ गुरुत्वाकर्षण किसी भी प्रकार के वायुमंडल की रक्षा करने में असमर्थ है। हमारा

1. Dissociation 2. Betelgause 3. Antarea

चन्द्रमा भी जानवरों और पौधों के श्वास लेने के लिए आवश्यक आक्सिजन तथा कार्बन डाइआक्साइड को पकड़ कर नहीं रख सकता। (२) इसके अतिरिक्त तारों के बीच के आकाश में वर्तमान ये उल्काएँ इतनी ठंडी हैं कि उन पर द्रव्य-जल का अस्तित्व संभव ही नहीं है। (३) ये तारों के सांघातिक परावैंगनी विकिरण से सर्वथा अरक्षित हैं।

धूमकेतुओं पर जीवन का क्या हाल है ? जो व्यापक तर्क उल्काओं तथा उल्का-पिंडों के लिए उपस्थित किया गया है वही धूमकेतुओं पर भी लागू है, क्योंकि वास्तव में ये भी उल्का-द्रव्य के टुकड़ों और चूर्ण के संग्रह मात्र ही हैं जिनमें निर्गत गैस भी व्याप्त है। इसके अतिरिक्त सौर परिवार के बड़े धूम-केतुओं में से अधिकांश अपनी अधिकतम दीप्ति के समय सूर्य के निकट आ जाने के कारण इतने गरम हो जाते हैं और शेष समय में अपने कक्षों[1] के वाह्य भागों में अत्यन्त दूर चले जाने के कारण इतने ठंडे हो जाते हैं कि वहाँ प्राणियों का जीवित रहना सम्भव नहीं हो सकता।

केवल ग्रह ही जीवों के निवास योग्य हो सकते हैं

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि जीवन के लिए उपयुक्त स्थान की खोज के लिए अब केवल ग्रह ही बच गये हैं। जिन ग्रहों में जीवों के अस्तित्व की तथा उनके जीवित रहने की संभावना हो सकती है वे न तो तत्सम्बन्धी तारे के बहुत निकट होने चाहिए और न इतने दूर कि वहाँ की ठंडक से कभी छुटकारा ही न मिल सके। वे इतने छोटे भी नहीं होने चाहिए कि उनमें आक्सिजन का वातावरण सम्भव ही न हो। यदि हम केवल ऐसे अविकसित जीवों से ही सन्तुष्ट रहना चाहते हों जिन्हें आक्सिजन की आवश्यकता न हो तो बात दूसरी है। (कुछ थोड़े से निम्न श्रेणी के जीव अवश्य ऐसे भी हैं जो अयौगिक[2] आक्सिजन की अनुपस्थिति में भी जीवित रहते हैं और जिनकी वृद्धि भी होती रहती है।)

जीवों के निवासयोग्य ग्रहों में स्वास्थ्यकर जल तथा अनुकूल शिलामय स्थल उपलब्ध होना चाहिए और उनका वातावरण विषैला नहीं होना चाहिए। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यदि पर्याप्त समय मिल जाय तो जीव अपने आप को ऐसी परिस्थितियों के भी अनुकूल बना सकते हैं जो पृथ्वी पर विकसित

1. Orbits 2. Elemental

वर्तमान प्राणियों के लिए विषमय हों तथा जिनमें पार्थिव जीवों का जीवित रहना असम्भव हो। इसके अतिरिक्त जो अनुकूल ग्रह विस्तार तथा टेम्परेचर की दृष्टि से और रासायनिक दृष्टि से भी उपयुक्त हों उनकी कक्षाओं की उत्केन्द्रता[१] भी कम होनी चाहिए। यदि उनकी कक्षाएँ धमकेतुओं की कक्षाओं के समान अत्यधिक उत्केन्द्र हों तो उनके वर्ष के तारा-नीच[२] भाग में तो वे तारे के बहुत ही निकट पहुँच जायेंगे और तारोच्च[३] भाग में वे अत्यन्त ही दूर चले जायेंगे। इसके परिणामस्वरूप तापमान की जो अत्यधिक घट-बढ़ होगी वह आद्य जीवन के लिए सुखद तो हो ही नहीं सकती। शायद वह उसकी उत्पत्ति और स्थायित्व को भी असम्भव बना दे। इसके अतिरिक्त रात और दिन के तापमानों में अत्यधिक अन्तर का निवारण करने के लिए यह भी अभीष्ट है कि ये ग्रह अपने अक्ष पर तीव्र वेग से घूमते रहें और हमारी पृथ्वी की ही तरह उनके अक्ष भी कक्षीय तलों[४] के प्रति बहुत अधिक आनत[५] हों।

उपर्युक्त समस्त आवश्यक प्रतिबंधों को ध्यान में रखकर हम यह जानना चाहते हैं कि जीवन के लिए उपयुक्त ग्रह वास्तव में कितने हैं। इसके साथ ही यह जानना भी आवश्यक है कि ग्रहों की उत्पत्ति कैसे होती है।

जगत् की उत्पत्ति के सम्बन्ध में बीसवीं सती का सिद्धान्त

ऐसा कहा जाता है कि आदिकाल में पूरी अव्यवस्था[६] थी। यदि हम पादरी लिमेत्र द्वारा प्रतिपादित आद्य परमाणु[७] के सिद्धान्त को मान भी लें जिसके अनुसार प्रारम्भ में इस जगत् का समस्त द्रव्य और इसकी समस्त ऊर्जा एक ही पिंड में—एक ही चरमाणु[८] में—संगृहीत थी, तो कम से कम इस चरमाणु के विस्फोटन द्वारा हमारे प्रसरणशील जगत् का प्रारम्भ हो जाने के बाद तो अवश्य ही सब कुछ अस्तव्यस्त था। पाँच से लेकर दस करोड़ तक के पार्थिव वर्षों से पहले के व्यवस्थाहीन काल में द्रव्य का औसत घनत्व[९] अवश्य ही बहुत अधिक

1. Eccentricity
2. Periastron
3. Apastron
4. Orbital planes
5. Inclind
6. Chaos
7. Primeval Atom
,8 Super Atom
9. Average density

था। तारे सब पास-पास थे। यदि उस समय नीहारिकाओं का संगठन हो चुका था तो बहुत-सी नीहारिकाएँ भी परस्परान्तर्प्रवेशी[1] थीं और यदि तब तक नीहारिकाएँ नहीं बनी थीं तो निर्माणोन्मुख प्राक्नीहारिकाएँ[2] परस्पर अतिछादित[3] थीं। उन व्यवस्थाहीन भीड़-भड़क्के के युगों में टक्करों और छोटे-मोटे विस्फोटों की प्रचुरता भी अवश्य ही रही होगी। वेग से उड़ने वाली गैस आकाश की ठंडक में पहुँच कर शीघ्रतापूर्वक द्रवीभूत[4] तथा संपिंडित[5] होकर नाना प्रकार को छोटे बड़े ग्रहोपम पिंडों में परिणत हो गयी होगी। विस्फोटनों और भयानक टक्करों के कारण पिंडों के चूर्ण हो जाने से धूल के कणों और गैसों की उत्पत्ति हुई होगी और उन्हीं से बाद में तारों का जन्म हुआ होगा। यदि हम इस परि-कल्पना को स्वीकार कर लें कि ब्रह्माण्डीय प्रसरण के द्वारा फैल जाने से पहले यह जगत् अत्यन्त छोटा था और ठसाठस भरा था तो उपर्युक्त सब क्रियाएँ तर्कसंगत मालूम देती हैं। इसके अतिरिक्त, इससे अच्छी कोई अन्य परिकल्पना बनाना भी तो अत्यन्त कठिन है।

पृथ्वी के जन्मसम्बन्धी इस परिकल्पना-विशेष का विवेचन हम विस्तार-पूर्वक करना चाहते हैं। अति उत्तम आद्य परमाणु के विस्फोटक प्रसार से उत्पन्न बड़ी संहतियाँ[6] गैस के रूप में रही होंगी। यदि उनके द्रव्यमान बहुत बड़े या बहुत छोटे नहीं थे तो अन्त में उन्होंने ही दीप्त तारों का रूप ले लिया होगा। जो संहतियां बहुत बड़ी थीं उनमें एक ओर तो गुरुत्वीय आकर्षण और दूसरी ओर विकिरण का दबाव तथा गैस-विसरण[7] जनित प्रतिकर्षण एवं तीव्र वेग से घूमने वाली वस्तुओं का केन्द्रापसारी[8] बल उन्हें एक तारे के रूप में संगठित और सन्तुलित रखने में असमर्थ हो गया। तब उन अतिविस्तृत संहतियों ने तारा-युग्म[9] बहुलक तारे[10] या विभिन्न संख्यक तारों के गुच्छ[11] का रूप ले लिया।

1. Interpenetrating
2. Protogalaxies
3. Overlapping
4. Liquified
5. Solidified
6. Masses
7. Gas diffusion
8. Multiple stars
9. Double stars
10. Multiple stars
11. Clusters

लिलिपुटी तारे*[१]

जो संहतियाँ हमारे सूर्य से तो बहुत छोटी, किन्तु हमारे ग्रहों की अपेक्षा बड़ी थीं—ऐसी करोड़ों ही रही होंगी—वे रहस्यमय ही रह गयीं क्योंकि तारकीय जगत् के इस अंश का मनुष्य को कुछ भी ज्ञान नहीं है। हमारे ज्योतिषीय फोटो चित्रों में इनमें से एक भी दिखाई नहीं देती। किन्तु ब्रह्माण्डीय काल की घड़ी के हिसाब से हमारा मानव समय भी तो अत्यन्त ही स्वल्प है। इन संहतियों का द्रव्यमान इतना अवश्य था कि वे सिकुड़ कर संघनित वातावरण के सहित स्थायी पिंड बन सकें, पर वह इतना न था कि उनमें ऐसी ज्योति उत्पन्न हो जाय जो अत्यन्त निकट न होने पर भी दिखाई दे सके। सूर्य के $\frac{१}{५०}$ वें भाग के बराबर वाले लिलिपुटीतारों से लेकर $\frac{१}{५००}$ वें भाग के बराबर वाले ब्राबडिगनैगी ग्रहों[२] तक सभी द्रव्यमानों के छोटे-बड़े अगणित तारकीय पिंड इस अदृश्य वर्ग में वर्तमान हो सकते हैं। यह भी सम्भव है कि इनकी संख्या उन पिंडों की संख्या से बहुत अधिक हो जो वास्तव में तारे कहलाते हैं।

सबसे बड़े लिलिपुटी ता ों में से हलका-सा अवरक्त[३] प्रकाश निकल सकता है और यदि वह हमारे निकट हो तो हमें उसका पता भी चल सकता है। किन्तु अधिकांशतः तो वे प्रकाशहीन पर्यटक ही होंगे।अन्त में शायद वैज्ञानिक साधनों के द्वारा हमें उनका पता लग जाय। यदि इन अदृश्य पिंडों में प्रबल वैद्युत वातावरण हो तो उनसे हमारे पास रेडियो के संकेत पहुँच सकते हैं। और यदि

*. अंग्रेजी भाषा में "गुलिवर की यात्राएँ (Gulliver's Travels) नामक स्विफ्ट (Swift) की लिखी एक पुस्तक है। उसमें जिन काल्पनिक देशों का वर्णन है उनमें "लिलपुट" नामक देश ऐसे बौने मनुष्यों क देश था जिनकी लम्बाई एक-दो इंच से अधिक नहीं होतीथी। अतः अत्यन्त छोटे विस्तार वाले तारों को लिलिपुटी तारें कह गया है। इसी प्रकार उसी पुस्तक में वर्णत दूसरे देश का नाम ब्राबडिगनैग (Brobdingnag) था जिसमें मनुष्यों की लम्बाई २०–२५ फुट होती थी। अतः इस शब्द द्वारा बहुत बड़े विस्तार वाली वस्तुओं को व्यक्त किया जाता है।

1. Lilliputians
2. Brobdingnagian Planets
3. Infra-red

उनमें ज्वालामुखी-जैसी क्रिया अत्यधिक परिमाण में होती हो तो उसके द्वारा भी वे हमें दिखाई दे सकते हैं। यह भी हो सकता है कि किसी दिन ऐसा कोई पिंड भटक कर हमारे सौर ग्रहमंडल में आ पहुँचे। तब उसकी अभिव्यक्ति या तो उसके द्वारा परावर्तित सूर्य के प्रकाश से हो जायगी या वाह्यतम ग्रहों तथा धूमकेतुओं की कक्षाओं की विकृति से। किसी अत्यन्त पुरातन विस्फोटक युग में उत्पन्न हुए ऐसे किसी मध्यमाकार पिंड का साक्षात्कार बहुत ही शिक्षाप्रद होगा। जो भी हो, उनके अस्तित्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। उनका बाहुल्य संदिग्ध है, किन्तु शायद उनकी संख्या है बहुत अधिक। ग्रहों के जन्म-सम्बन्धी उपर्युक्त सिद्धान्त से भिन्न अन्य सिद्धान्तों के अनुसार भी इन लिलिपुटी पिंडों के अस्तित्व की संभावना कम नहीं है।

आद्य अव्यवस्था तथा उसका परिमार्जन

प्रारम्भ में ऐसा कोई आद्य परमाणु जसिमें जगत् का सब कुछ समाविष्ट था, सचमुच विद्यमान था या नहीं इस बात में सन्देह हो सकता है, किन्तु यह तथ्य संशयहीन दिखाई देती है कि करोड़ों तारों से परिपूर्ण नीहारिकाएँ, जो इस समय तीव्र वेग से दौड़ कर एक दूसरी से दूर हटती जा रही हैं, अवश्य ही दूसरी प्राचीन काल में अत्यन्त ही संकीर्ण स्थान में ठसाठस भरी हुई थीं। यह बात भी अत्यन्त अर्थपूर्ण है कि शिलाओं की रेडियो-सक्रियता के द्वारा इस पृथ्वीतल की आयु का जो अनुमान किया जाता है, ठीक उतना ही अनुमान इस ब्रह्माण्डीय प्रसरण की आयु का भी प्राप्त होता है।

तारों के जन्म की इस कहानी को पूरा करने के लिए मान लीजिए कि किसी विशेष विकासोन्मुख तारे (प्राक्सूर्य[१]) के चारों ओर आद्य विस्फोटन अथवा किसी उत्तरकालीन विस्फोटन से उत्पन्न नाना प्रकार के टुकड़ों का घना आवरण विद्यमान है। ये क्रमशः ठंडे होते जाने वाले द्वैतीयिक पिंड[२] उस प्राक्सूर्य के गुरुत्वाकर्षण के अदृढ़ नियंत्रण में तो कम से कम अवश्य ही थे। और हम यह भी मान सकते हैं कि इस प्राक्सूर्य की परिक्रमा करने वाले इन पिंडों (प्राक्-ग्रहों[३]) में

1. Proto-Sun
2. Secondary bodies
3. Proto-planets

से एक-दो इतने बड़े भी थे कि प्रारम्भ से ही अन्य छोटे पिंडों के नियंत्रण में वे भी प्रभावशाली भाग ले रहे थे। यदि इन बड़े-बड़े द्वैतीयिक पिंडों में से दो, जिन के नाम प्राक्बृहस्पति[1] तथा प्राक्शनि[2] रखे जा सकते हैं, प्राक्-सूर्य की परिक्रमा लगभग एक ही समतल में और एक ही दिशा में करते थे तो अवश्य ही वे ऐसी स्थिति में भी रहे होंगे कि लघुतर पिंडों की गति और उनके भविष्य को नियंत्रित कर सकें। और छोटे-छोटे ग्रहोपम पिंडों में से कुछ--संभवतः लगभग सभी--इतनी अधिक उत्केन्द्र[3] दीर्घवृत्तीय[4] कक्षाओं में चक्कर लगा रहे होंगे कि वे सुरक्षित रह ही नहीं सकते थे। या तो रविनीच[5] विन्दु पर वे सूर्य के वहुत निकट पहुँच जाने के कारण सूर्य में गिर पड़े या जब वे अपनी कक्षाओं के दूरवर्ती बाह्य-भाग में पहुँचे तो उन दो दानव ग्रहों द्वारा आत्मसात् कर लिये गये या वे सौर-मंडल में से विलकुल बाहर निकल कर अन्तरतारकीय आकाश में चले गये।

देवताओं की यह त्रि-खंडी चक्की अरबों वर्षों से चलती रही है। इस दीर्घ काल में पश्चगामी पिंड[6]--अर्थात् वे पिंड जो बड़े ग्रहों से विपरीत दिशा में सूर्य की परिक्रमा कर रहे थे--गुरुत्वीय क्षोभ[7] के कारण लुप्त हो गये होंगे। वस्तुतः आजकल परिमार्जन--क्रिया के इन अंतिम दिनों में सत्त्वहीन धूमकेतुओं का यही हाल हो रहा है। कभी-कभी तो उनकी गति की दिशा बहुत बदल जाती है और उनकी कक्षा की उत्केन्द्रता में भी बड़ा परिवर्तन हो जाता है। कोई-कोई धूमकेतु तो ग्रहों की पकड़ में आकर छोटी कक्षाओं में परिक्रमण करने लगते हैं। और सुदीर्घ भूतकाल में अनेक धूमकेतुओं को बड़े ग्रहों ने सौर परिवार में से सदा के लिए निकाल भी फेंका होगा, क्योंकि जब कोई धूमकेतु सूर्य से वहुत दूर चला जाता है तब सूर्य का गुरुत्वाकर्षण इतना घट जाता है कि जिस किसी भारी ग्रह के निकट उसे उसकी कक्षा ले जाती है वही उसके भाग्य का विधाता बन बैठता है और तब उसे मिलनेवाले अनेक संभव आदेशों में से एक आदेश निष्कासन[8] का भी हो सकता है।

आदिकाल की व्यवस्थाहीन अवस्था की तथा धीरे-धीरे परिमार्जन होने

1. Proto-Jupiter 2. Proto-Saturn 3. Highly eccentric
4. Elliptical 5. Perihelion 6. Retrograde bodies
7. Gravitational disturbance 8. Ejection

की प्रस्तावित परिकल्पना[1] के अनुसार आकस्मिक उत्पात[2] ने सूर्य को तथा जिन अनेक अन्य पिंडों को जन्म दिया था उन्हीं में से एक भाग्यशाली टुकड़ा पृथ्वी का पूर्वज ग्रह बन गया था। उसकी कक्षा वृत्ताकार अथवा लगभग वृत्ताकार होने से वह सुरक्षित हो गया और निकटवर्ती दूसरे ग्रहों (शुक्र और मंगल) से उसकी दूरी इतनी अधिक थी कि इस कक्षा में कोई प्रबल क्षोभ भी सम्भव नहीं हुए।

जिस नाटकीय काल में सौर परिवार का निर्माण हो रहा था उसी में सूर्य के निकटवर्ती कुछ तारों में तथा अन्य अनेक तारों में भी इसी प्रकार की घटनाएँ हो रही थीं। यदि कोई उस समय के युवा नभोमंडल को देखता, जो अनेक धूमकेतुओं तथा उल्काओं से भरा था और जिसमें ग्रहों ने अपने-अपने स्थान ग्रहण नहीं कर लिये थे किन्तु सब स्वतंत्रतापूर्वक विचरण कर रहे थे, तो निश्चय ही उसका अनुभव अत्यन्त उत्तेजक होता।

यदि प्रारम्भ में पृथ्वी की तथा अन्य वर्तमान ग्रहों की कक्षाएँ बहुत अधिक दीर्घवृत्तीय अर्थात् अधिक उत्केन्द्र रही हों तो भी विभिन्न ग्रहों के मध्यवर्ती आकाश में उपस्थित आदिकालीन धूलिमय माध्यम ने जिसमें होकर ये ग्रह सूर्य की परिक्रमा कर रहे थे, अवश्य ही इन कक्षाओं को अधिक वृत्ताकार बना दिया होगा। इस धूलिमय माध्यम ने ग्रहों की गति का प्रतिरोध किया होगा जिससे कक्षा की उत्केन्द्रता घटी होगी। फलतः पारस्परिक टक्कर तथा ग्रास[3] से ये ग्रह सुरक्षित हो गये होंगे। वर्तमान सौर परिवार में अधिकतर ग्रहीय कक्षाओं की आनति[4] लगभग उतनी ही है जितनी कि वृहस्पति और शनि की हैं। उक्त परिकल्पना के अनुसार यह अव्यवस्था में से सुव्यवस्था[5]* को उत्पन्न

1. Hypothesis 2. Catastrophe 3. Engulfment
4. Inclination or tilt 5. Order

* "आभासी अव्यवस्था सें से सुव्यवस्था" कहना अधिक उत्तम होगा, क्योंकि इस भौतिक जगत् में वास्तविक अव्यवस्था जैसी कोई चीज है ही नहीं। वस्तुतः सब कुछ व्यवस्थित ही है। सभी घटनाओं पर भौतिक नियमों का नियन्त्रण है। अव्यवस्था केवल अलक्षित (unperceived) व्यवस्था ही है। इस शब्द के द्वारा केवल मनुष्य के मन की परिमितता का तथा प्रेक्षित तथ्यों की कमी का ही बोध होता है। "अव्यवस्था", "आकस्मिक", "संयोग", "अनपेक्षित" आदि शब्द हमारें अज्ञान को ढकने के साधन मात्र हैं।

करने वाले दीर्घकाल व्यापी समंजन में होने वाली टक्करों तथा गुरुत्वीय आकर्षणों का ही परिणाम है।

सूर्य के ग्रहों तथा अन्य तारों के ग्रहों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में उपर्युक्त विचार लेखक ने निराशावश बहुत वर्ष पहले प्रस्तुत किये थे। उस समय ग्रहों की उत्पत्ति सम्बन्धी दोनों प्रचलित सिद्धान्तों—नीहारिकीय आकुंचन सिद्धान्त[१] तथा ज्वारीय विघटन सिद्धान्त[२]—का प्रेक्षित तथ्यों तथा अन्तर-तारकीय धूल के स्वरूप और आचरण-सम्बन्धी स्वीकृत विचारों से मेल नहीं बैठता था। प्रेक्षित तथ्य ही ब्रह्माण्डोत्पत्ति के सिद्धान्तों के प्रमुख दुश्मन रहे हैं। यदि हमें इतने तथ्य मालूम न होते तो हमें बहुत कम बातों की व्याख्या ढूँढ़नी पड़ती। सौर परिवार की मुख्य-मुख्य नियमितताओं की व्याख्या के प्रयत्न में पुरानी परिकल्पनाओं को जिन-जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था वे सब उपर्युक्त "आद्य-अव्यवस्था सिद्धान्त[३]" के सामने नहीं आतीं। किन्तु इसमें भी कठिनाइयाँ अथवा कमियाँ हैं। अन्य सिद्धान्तों की ही तरह इसे भी कहीं-कहीं अनेक परिपोषक उपपरिकल्पनाओं के द्वारा सहारा देने की आवश्यकता है। यह "अव्यवस्था-सिद्धान्त" निम्नलिखित दो मुख्य धारणाओं पर आधारित है—

(१) कई अरब वर्षों पहले एक विस्फोटक दुर्घटना[४] के द्वारा तारों की तथा हमारे सूर्य की उत्पत्ति हुई थी जिसके कारण समस्त आकाश गैस, द्रव तथा छोटे-बड़े सभी नापों के ठोस टुकड़ों से भर गया था। जो टुकड़े सबसे भारी थे उनके गुरुत्वाकर्षण बल का नियंत्रण चारों ओर के अपने-अपने परिमित आकाश में सीमित था। आकाश के जिस प्रदेश में हम अवस्थित हैं उस पर नियंत्रण करने वाला हमारा यह सूर्य था।

(२) धूल, गैस और ग्रहोपम पिंडों के इस आद्य संग्रह में, जिस पर प्राक्-सूर्य[५] का आधिपत्य था, दो-एक बड़े-बड़े प्राक्ग्रह[६] भी थे जो उस सर्व-नियंत्रक प्राक्-सूर्य की परिक्रमा लगभग उसी समतल में कर रहे थे जो इस समय सौर परिवार की ग्रहीय कक्षाओं का माध्य समतल है।

1. Nebular Contraction Theory
2. Tidal Disruption Theory
3. Chaotic.origin Theory
4. Catastrophe
5. Proto-Sun
6. Protoplanets

शेष प्रक्रम इन्हीं दो अभिकल्पनाओं का स्वाभाविक परिणाम है जिसके अनुसार इन टुकड़ों में से अधिकांश तो इस संग्रह में से निकल कर बाह्य आकाश में चले गये और कुछ थोड़े से टुकड़े सुरक्षित प्रदेशों में व्यवस्थित होकर सुरक्षित कक्षाओं में परिक्रमण करने लगे।

इस परिकल्पना का अधिक विस्तृत विवेचन हम यहाँ नहीं करेंगे। केवल इतना ही कह देना चाहते हैं कि इसमें जो त्रुटियाँ हैं उनमें निम्नलिखित दो मुख्य हैं—

(१) इस समय जो ग्रह अवशिष्ट हैं उनकी दूरियों के आश्चर्यजनक क्रम की व्याख्या संतोषजनक नहीं हो सकी। यह दोष अन्य परिकल्पनाओं में भी है।

(२) सौर परिवार के ग्रहीय पिंडों की कक्षाओं में उच्च आनतियों के लगभग पूर्ण अभाव की भी व्याख्या नहीं हो सकी है यद्यपि यह सच है कि दीर्घ आवर्तकाल वाले धूमकेतु सार्वग्रहिक माध्यकक्षीय तल की पर्याप्त रूप से अवज्ञा करते हैं और मंगल तथा वृहस्पति ग्रहों के मध्यवर्ती क्षुद्र ग्रहों में से अनेकों की कक्षाओं की आनति भी वहुत अधिक है।

इस परिकल्पना को एक प्रवल धक्का लग जायगा यदि हम यह प्रमाणित कर सकें कि विस्फोटक आद्य परमाणु में से अथवा वाद में किसी अधिनव तारे[१] में से पूर्ण या लगभग पूर्ण आकार के तारे नहीं निकलते, किन्तु अन्तरतारकीय[२] धूल आदि के संघनन[३] के कारण उनका धीरे-धीरे निर्माण होता है। इसी प्रकार यदि हमें यह विश्वास हो जाय कि यह पृथ्वी भी वास्तव में अन्तरग्रहिक[४] द्रव्य के दीर्घकाल तक धीरे-धीरे संचय होने से बनी है तो या तो कोई सहायक उप-परिकल्पना आवश्यक हो जायगी या हमें इस परिकल्पना के कुछ अंश का त्याग कर देना पड़ेगा। फिर भी इस परिकल्पना में यह सुविधा है कि विस्फोटनों में से या जिसे हम अव्यवस्था कहते हैं उसमें से द्रव्य की लगभग कैसी भी मूल व्यवस्था के तथा किसी प्रकार की भी मूल गति के उत्पन्न होने की कल्पना की जा सकती है। और ग्रहों के घूर्णन तथा कक्षीय परिक्रमण के वेगों के वर्तमान वितरण की, उलझन में डालने वाली, समस्या असंगत तथा अनावश्यक हो

1. Supernova
2. Interstellar
3. Condensation
4. Interpalnetary

जाती है। ग्रह-निकायों की उत्पत्ति के एक संभव प्रक्रम को विचारार्थ प्रस्तुत करने वाली परिकल्पना के रूप में तो यह अव्यवस्था-सिद्धान्त अवश्य ही सुरक्षित रखने योग्य है—कम से कम उस समय तक तो है ही जब तक इसके कोई ऐसे व्यापक विकल्प का विकास नहीं हो जाता जिसको ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के एकमात्र तर्कसंगत सिद्धान्त के रूप में विस्तृत मान्यता प्राप्त हो सके।

उपर्युक्त सुझाव को कुछ विस्तारपूर्वक प्रस्तुत करने का कारण यह है कि यदि अन्त में ऐसा ही कोई सिद्धान्त सर्वमान्य हो जाय तो उसके साथ ही यह महत्त्वपूर्ण उपसिद्धान्त[1] भी अनिवार्य हो जायगा कि संभवतः ग्रहीय निकाय भी लगभग उतने ही बहुसंख्यक हैं जितने बहु-संख्यक तारे हैं तथा जीवन के लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ भी ब्रह्मांड भर में फैले हुए बहु-संख्यक स्थानों में विद्यमान हैं। और तब "क्या हम अकेले हैं ?", क्या हम इस ब्रह्माण्ड की अद्वितीय जैविक रचना[2] हैं ?" आदि प्रश्नों का नकारात्मक उत्तर दृढ़तापूर्वक दिया जा सकेगा किन्तु पृथ्वी की उत्पत्ति के और भी अनेक सिद्धान्त हैं और जीव के निवास-योग्य स्थानों के ब्रह्माण्डीय वितरण की समस्या के विवेचन के हित में आवश्यक है कि हम यह बता दें कि उनमें कौन-कौन से थोड़े-बहुत विश्वासोत्पादक हैं।

ग्रहो की उत्पत्ति की अनेक प्रक्रियाएँ

प्राचीन काल में पृथ्वी की उत्पत्ति का श्रेय किसी "आकस्मिक घटना" अथवा किसी तारा-भौतिकीय[3] प्रक्रिया को न देकर अनेक प्रकार के अलौकिक देवताओं को दिया जाता था। किन्तु यह विश्वास भी असाधारण नहीं था कि पृथ्वी अनादि है अर्थात् वह सदैव विद्यमान थी। सूर्य, ग्रह, उपग्रह, धूमकेतु, अन्तरतारकीय धूलमय ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति की व्याख्या के लिए जिन तर्काधारित सिद्धान्तों का विकास हुआ था उनमें से अनेक तो अब पूर्णतः अमान्य हो गये हैं। कुछ सिद्धान्तों में तो सूर्य की उत्पत्ति का भी समावेश था, किन्तु कुछ में ग्रहों के आविर्भाव के पहले भी सूर्य का अस्तित्व मान लिया गया था। अधिकतर सिद्धान्त अर्वाचीन हैं और पिछली थोड़ी-सी दशाब्दियों में संचित तत्सम्बन्धी वैज्ञानिक तथ्यों के तथा विचक्षण विचारकों की बढ़ती हुई संख्या

1. Corollary 2. Biological construct 3. Astrophysical

के स्वाभाविक परिणाम हैं। गत चालीस वर्षों में संसार के ज्योतिषियों ने जितने नवीन ज्ञान का संचय किया है वह उससे पहले के समस्त भूतकाल में संचित ज्ञान की अपेक्षा कई गुना अधिक है।

निम्नलिखित सूची में सन्निकटतः कालक्रमानुसार पन्द्रह परिकल्पनाएँ संकलित हैं जो इस्राइल, जरमनी, फ्रांस, आस्ट्रेलिया, भारतवर्ष, अमेरिका, इंग्लैण्ड, रूस, स्वीडन तथा हालैंड के वैज्ञानिक चिंतकों के विचारों का दिग्दर्शन करती हैं। इस भौगोलिक वितरण से प्रकट है कि ब्रह्माण्ड में मनुष्य की भौतिक स्थिति सम्बन्धी जिज्ञासा अत्यन्त विस्तृत क्षेत्र में फैली हुई है।

(१) हजरत मूसा का ब्रह्माण्डोत्पत्ति विषयक मत तथा उसी प्रकार की प्राचीन धार्मिक मान्यताएँ।

(२) नीहारिकीय परिकल्पना[1]—विख्यात कान्ट[2] हैं तथा लापलास[3] का दीर्घजीवी सिद्धान्त।

(३) धूमकेतु की टक्कर के द्वारा सूर्य के आंशिक विभंजन[4] से ग्रहों की उत्पत्ति।

(४) सूर्य के आंतरिक उद्गिरण[5] द्वारा ग्रह-संरचक ग्रहाणुओं[6] की उत्पत्ति।

(५) आकाश में से अथवा अन्य तारों से छीनकर ग्रहों का सूर्य के द्वारा बन्दीकरण[7]

(६) पास से निकल कर जाने वाले तारे के कारण सूर्य में ज्वार[8] की उत्पत्ति और उत्पन्न गैसीय तन्तुओं का ग्रहों के रूप में संघनन (यह उपर्युक्त चौथी परिकल्पना का ही परिवर्तित रूप है)

(७) तारों की विसर्पी टक्कर[9] (६ का परिवर्तित रूप)

(८) किसी तारायुग्म[10] के एक संघटक[11] का पास से जाने वाले किसी तीसरे तारे द्वारा विखंडन।

1. Nebular Hypothesis 2. Kant 3. Laplace
4. Disruption 5. Solar eruption
6. Planetesimals 7. Capture
8. Tide 9. Glancing collision
10. Binary star 11. Component

(९) कल्पित प्राक्-सूर्य का विस्फोटक विखंडन।[१]

(१०) अस्थायी आवर्तक[२] चरकांति तारे का विभंजन।

(११) नीहारिकीय सिद्धान्त का पुनरुत्थान और धूलि और गैस के संचयन[३] सम्बन्धी आधुनिक सिद्धान्तों के द्वारा उसका पुष्टीकरण।

(१२) आकुंचमान नीहारिका के विद्युत्-चुम्बकीय संघनन[४]–(२ का विकल्प)।

(१३) तारा-युग्म में नवतारा[५] का विस्फोट और उससे परिक्रमणशील ग्रहोपम पिंडों की उत्पत्ति।

(१४) नीहारिकीय माध्यम में सक्रिय शीत ग्रहाणुओं[६] की परिकल्पना का पुनरुत्थान (४,११ तथा १२ के परिवर्तित रूपों का सम्मिश्रण)।

(१५) आद्य विस्फोटक अव्यवस्था[७] तथा परिस्थिति के अनुकूल[८] पिंडों का स्थायित्व अथवा अतिजीवित्व[९]। यही मेरी नौराश्य की परिकल्पना[१०] है जिसकी रूपरेखा ऊपर दी जा चुकी है।

इन सभी सिद्धान्तों का विवरण विस्तारपूर्वक दिया जा सकता है। कई तो अशंतः एक-समान हैं। कुछ स्पष्टतः दूषित होने के कारण अथवा अपूर्ण होने के कारण अमान्य हो गये हैं, यथा १, ३, ४, ५, ९ और १० संख्यक। २ तथा ६ संख्यक निर्बल हैं। अतः केवल ७, ८, ११, १२, १३, १४ और १५ संख्यक बच रहते हैं। हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि ग्रहों की उत्पत्ति में कई प्रक्रियाएँ एक-साथ भी संभव हैं। यह आवश्यक नहीं है कि हम किसी एक ही प्रक्रिया की तलाश करें और यह समझ लें कि अन्य प्रक्रियाएँ संभव हो ही नहीं सकतीं।

इन सब सिद्धान्तों पर विचार करने से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि इस समय इनमें से एक भी सिद्धान्त पूर्णतः सन्तोषजनक नहीं है। जो इनमें

1. Explosive fission　2. Pulsing
3. Accretion　4. Electro-magnetic Condensation
5. Nova　6. Gold planetesimal
7. Primeval explosive chaos　8. Conforming
9. Survival　10. Hypothesis of desperation

सर्वोत्तम है उसमें भी और अधिक विकास की आवश्यकता है। निम्नलिखित प्रेक्षित नियमितताओं तथा विन्यासों की व्याख्या तो इनमें से अनेक आसानी से नहीं कर सकते--

(क) सौर परिवार के नौ बड़े-बड़े ग्रह सूर्य की परिक्रमा एक ही दिशा में करते हैं।

(ख) सूर्य तथा, जहाँ तक ज्ञात है, अधिकांश ग्रह और उपग्रह अपने-अपने अक्षों पर एक ही दिशा में घूमते हैं।

(ग) ग्रहों के कक्षीय तलों की आनतियाँ ऐसी हैं कि धूमकेतुओं को छोड़ कर शेष सौर परिवार बहुत अधिक चपटा है।

(घ) यम अर्थात् प्लूटो[1] को छोड़कर जो संभवतः वरुण अर्थात् नेपच्यून[2] का ही विमुक्त उपग्रह है, अन्य सब छोटे ग्रह अपेक्षाकृत सूर्य के निकट ही हैं। सूर्य से सब बड़े ग्रहों की दूरी पृथ्वी की कक्षीय त्रिज्या[3] की तुलना में पाँच से तीस गुनी तक है।

(ङ) वृहस्पति तथा शनि के उपग्रह-निकायों में लगभग वे ही लक्षण हैं जो सूर्य के ग्रह-निकाय में है।

(च) ऐसा जान पड़ता है कि यदि उन तत्त्वों को छोड़ दिया जाय जो सूर्य के वातावरण में से निकल कर बाहर चले गये हैं तो सूर्य का रासायनिक संघटन वैसा ही है जैसा कि पृथ्वी का और संभवतः अन्य ग्रहों का है।

(छ) ग्रह-निकाय में कोणीय संवेग[4] का वितरण अनेक सिद्धान्तों के लिए सांघातिक दिखाई देता है। सूर्य तो इतना धीरे-धीरे घूमता है और ग्रहों का घूर्णन इतना वेगवान् है कि बिना किसी संरक्षक उपकल्पना की सहायता के कोई भी सिद्धान्त इन्हें एक-ही उद्‌गम से उत्पन्न प्रमाणित नहीं कर सकता।

दो-तीन को छोड़कर उपर्युक्त समस्त सिद्धान्तों के दो विभाग किये जा सकते हैं—आकस्मिक उत्पात मूलक[5] अथवा शांत संचय-मूलक[6]। दूसरे शब्दों

1. Pluto
2. Neptune
3. Orbital radius
4. Angular momentum
5. Catastrophic
6. Calmly accretional

में ग्रहों की उत्पत्ति या तो किसी प्रचंड आकस्मिक क्रिया द्वारा एकदम हुई है या वे द्रव्य के उत्तरोत्तर संचयन के द्वारा धीरे-धीरे बने हैं। पहले प्रकार के सिद्धान्तों के अनुसार पृथ्वी या कम से कम प्राक्-पृथ्वी[1] किसी समय पृष्ठ से केन्द्र तक उत्तप्त थी। किन्तु दूसरे प्रकार के सिद्धान्तों के अनुसार पृथ्वी का पृष्ठीय भाग कभी भी पिघला हुआ नहीं था। ज्यों-ज्यों बाह्य द्रव्य के संचयन स उसका द्रव्यमान बढ़ता गया, त्यों-त्यों स्वभावतः ही केन्द्र गरम होता गया और इस गरमी का प्रभाव पृथ्वी की बाहरी परतों पर भी पड़ा।

पृथ्वी-जैसे अन्य ग्रहों के ब्रह्माण्ड में अन्यत्र अस्तित्व के सम्बन्ध में इन सिद्धान्तों का अनुमान क्या है? यदि हम यह मान लें कि तारों की उत्पत्ति नीहारिका-आकुंचन विधि से हुई है अर्थात् मुख्यतः तारे गैस के ठंडे बादलों के संघनन से ही बने हैं और ग्रह इसी क्रिया के उप-उत्पादन हैं तब तो हमें यह भी मान लेना पड़ेगा कि हमारे परिचित ग्रहों ही के जैसे तथा द्रव्यमान में, टेम्परेचर में और रासायनिक संघटन में उन्हीं के सदृश अन्य ग्रह भी विकासशील ब्रह्मांड के स्वाभाविक तथा साधारण परिणाम हैं। आद्य अव्यवस्था सिद्धान्त तथा संचयन-सिद्धान्त, दोनों ही के अनुसार ऐसे ग्रहों की प्रचुरता समान रूप से ऊँची होनी चाहिए।

हमें सदा यह स्मरण रखना चाहिए कि हमारा सूर्य एक अत्यन्त साधारण तारा है। अधिकतम कांतिमान दस लाख तारों में से प्रायः एक लाख तारे निश्चय ही बिलकुल सूर्य के जैसे हैं। इस सादृश्य का पता हमें स्पैक्ट्रमीय विश्लेषण के द्वारा चलता है जिसका संक्षिप्त विवरण अध्याय में दिया गया है और जिससे हमें तारों की ज्योति,[2] द्रव्यमान,[3] विस्तार,[4] गति तथा रासायनिक संघटन का ज्ञान हो जाता है। बड़े प्रतिदर्शों[5] से हमें इनका अनुपात[6] दस प्रतिशत प्राप्त हुआ है। इसके अतिरिक्त यह अमवश्यक नहीं है कि जिन तारों के साथ जीवों के रहने योग्य ग्रह विद्यमान हों वे सूर्य के ही समान हों। यदि तारा अधिक गरम होगा, तो द्रव जल का प्रदेश अधिक दूरी पर होगा और यदि तारा अपेक्षाकृत ठंडा होगा तो जीवनोपयोगी ग्रह उस तारकीय शक्ति-स्रोत[7] के अधिक निकट होंगे।

1. Proto-earth 2. Luminosity 3. Mass
4. Size 5. Samples
6. Proportion 7. Powerplant

इस सूर्य का तथा उसी के सदृश उपर्युक्त १००,००० तारों का आकाशगंगा में कोई विलक्षण स्थान नहीं है। ये सब तारे एक सामान्य बड़ी सर्पिल नीहारिका के बाह्य प्रदेश में अवस्थित हैं और इस ब्रह्मांड में इसी प्रकार की हजारों—संभवतः करोड़ों—सर्पिल नीहारिकाएँ विद्यमान हैं। इन सूर्योपम तारों का (इनमें से अधिकांश का) इतिहास भी उसी पुरातन भयंकर तथा अशांत ग्रहोत्पादक युग में प्रारम्भ हुआ था। इस प्रकार निवास-योग्य ग्रहों की प्रचुरता के पक्ष में प्रेक्षित तथ्यों की वृद्धि होती जा रही है।

किन्तु इन सभी सिद्धान्तों में जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले ग्रहों के सार्वत्रिक प्रादुर्भाव तथा संरक्षण का विरोधी एक महत्त्वपूर्ण तथ्य भी विद्यमान है। यह है बहुसंख्यक युगल[1] तथा बहुल[2] तारों का लगभग सार्वत्रिक अस्तित्व। एक शताब्दी पहले युगल तारे बहुत विरल समझे जाते थे। दूरबीनों की शक्ति तथा युगल और बहुल तारों की खोज में प्रेक्षकों की निपुणता बढ़ जाने से अब स्थिति बिलकुल बदल गयी है। अब हमारा विश्वास है कि चालीस प्रतिशत या इससे भी अधिक तारे युगल अथवा त्रितय[3] हैं। पृथ्वी से एक लाख अरब ($१०^{१४}$) मील की दूरी तक जो ५५ तारे हमें ज्ञात हैं उनमें से केवल ३१ ही अकेले हैं। हो सकता है कि भविष्य में इनमें से भी कुछ के साथियों का पता चल जाय। द्वि-तारकीय या त्रि-तारकीय निकायों के द्रवजलीय प्रदेश में ग्रहों के होने की संभावना बहुत ही कम है। गुरुत्वीय नियम इसके विरुद्ध हैं क्योंकि ऐसी दशा में कक्षाएँ अस्थायी होंगी। हमें यह स्वीकार करना ही पड़ता है कि ग्रहों को आश्रय दे सकने वाले तारे वे ही हो सकते हैं जो अकेले हों। शायद ऐसे युगल भी हो सकते हैं जिनमें दोनों तारों का अन्तराल बहुत अधिक हो, क्योंकि तब संभव है कि उनमें से एक तारे की परिक्रमा करने वाले ग्रह की कक्षा के स्थायी होने में दूसरा तारा कोई बाधा उपस्थित न करे। अन्य ग्रहों के चिरस्थायित्व की दृष्टि से हमें गोलीय तारा-पूंजों के केन्द्र की अत्यन्त घनी भीड़ में अवस्थित तारों को भी शायद छोड़ देना चाहिए।

टक्करों की विरलता[4],

यदि हम नीहारिका-आकुंचन की परिकल्पना (यथा १४) पर विचार करें

1. Double 2. Multiple 3. Triple 4. Infrequency

तो हम देखेंगे कि संभवतः ग्रहों की उत्पत्ति और उनके स्थायित्व के लिए वही सबसे अधिक हितकर है। किन्तु मान लीजिए कि इसके स्थान में हम किसी टक्कर पर आधारित परिकल्पना स्वीकार कर लें—धूमकेतु की टक्कर को नहीं, क्योंकि हम जानते हैं कि धूमकेतुओं का द्रव्यमान इतना कम होता है कि उनकी टक्कर किसी तारकीय दुर्घटना का प्रबल कारण नहीं हो सकती। दो या अधिक तारों की टक्करें अब इतनी कम होती हैं कि शायद उन्हें ग्रह-निकायों की उत्पत्ति का कारण नहीं माना जा सकता। इस समय हमारे सूर्य और उसके पड़ोसी तारों के बीच की दूरी इतनी अधिक है कि उनकी टक्कर होना लगभग बिलकुल असंभव है। यही बात उन सब अकेले तारों के लिए भी सही है जो किसी तारा-पुंज के अथवा किसी नीहारिका के केन्द्रीय भाग में अवस्थित न हों। सूर्य से निकटतम तारा जो हमें ज्ञात है प्रथम किन्नर[1] है और सूर्य से उसकी दूरी पचीस हजार अरब (२५ + १०[१२]) मील है। यदि किसी तारे का आपेक्षिक औसत वेग २० मील प्रति सेकंड हो तो वह लाखों वर्ष दौड़ते रहने पर भी सूर्य से टकरा नहीं सकता। वह उसके नजदीक भी नहीं पहुँच सकता। यदि हमारा आग्रह यह हो कि ग्रहों की उत्पत्ति हमारी आकाशगंगा जैसी पूर्णतः विकसित नीहारिका में केवल प्रौढ़[2] तारों की ही टक्कर से अथवा उनके अत्यन्त निकट आ जाने से हो सकती है तब तो हमें यह भी विश्वास करना पड़ेगा कि पृथ्वी को जन्म देने वाली दुर्घटना या टक्कर अवश्य ही अद्वितीय होगी और ब्रह्माण्ड भर में ऐसी दुर्घटना केवल एक ही बार हुई होगी और हम उसी अत्यन्त पुरातन तथा प्रायः अघटनीय घटना के परिणाम हैं। तब हमें यह भी कहना पड़ेगा कि हम सर्वथा एकाकी हैं और जो कोई सर्वशक्तिमान् सत्ता ऐसी विरल दुर्घटनाओं की देख-भाल करने वाली है उसको विशेषकर हमारी ही चिन्ता करनी पड़ती है।

किन्तु दो प्रेक्षण ऐसे हैं जो इस अनुमान को निर्बल कर देते हैं या उसका बिलकुल ही निराकरण कर देते हैं। पहली बात तो यह है कि हम अपने विचार को केवल दस सहस्र करोड़ तारों वाली अपनी आकाशगंगा तक—अपने परिमित विश्व[3] तक—ही सीमित नहीं रख सकते जिसमें समस्त तारे एक दूसरे को आकर्षित तो करते हैं, किन्तु टक्कर से सदा बचते रहते हैं। किन्तु हमारी दूर-

1. Alpha Centauri 2. Mature 3. Universe

बीनों की पहुँच में इसी प्रकार के अरबों विश्व अथवा नीहारिकाएँ अन्य भी हैं और सभवतः हमारे प्रत्यक्ष ज्ञान की सीमा से बाहर हजारों अरब विश्व और भो विद्यमान हैं। इसके कारण टक्करों की सम्भावना बढ़ जाती है, यह बात भी हमें ध्यान में रखना चाहिए। ब्रह्माण्ड में जीवन की सम्भावना की समस्या के सम्बन्ध में हमें इन समस्त विश्वों को अपने विवेचन में सम्मिलित करना चाहिए। यदि ऐसे सौ विश्वों में से किसी एक में भी तारों की ग्रहोत्पादक टक्कर हुई हो तो ऐसी टक्करों की संख्या करोड़ों तक पहुँच जायगी।

केवल टक्करों के ही कारण जीवनोपयोगी ग्रहों का निर्माण सभव है, इस परिकल्पना पर आधारित हमारे एकाकीपन के विरुद्ध दूसरा प्रबलतर तथ्य यह है कि अब हमें अपेक्षाकृत नये, किन्तु सुदृढ़ प्रमाण ऐसे मिल गये हैं जिनसे प्रकट होता है कि इस ब्रह्माण्ड[1] अथवा महाविश्व[2] का प्रसार[3] हो रहा है अर्थात् उसका विस्तार निरंतर बढ़ता जा रहा है। वास्तव में प्रेक्षण यह है कि ये समस्त नीहारिकाएँ सभी दिशाओं में एक दूसरे से दूर हट रही हैं और संपूर्ण ब्रह्मांडीय आकाश में द्रव्य का औसत घनत्व निरन्तर घटता जा रहा है। यदि हम इसी प्रेक्षण की उलटी दिशा पर विचार करें तो हम इस परिणाम पर पहुँचेंगे कि आज की अपेक्षा कल ये नीहारिकाएँ अधिक पास-पास थीं तथा दस लाख वर्ष पहले ये और भी ज्यादा पास-पास थीं और कई अरब वर्ष पूर्व ये सब अपेक्षाकृत बहुत छोटी जगह में ठसाठस भरी हुई थीं, परस्पर मिली-जुली और एक दूसरी पर आतछादित थीं। जिस अवस्था को पादरी लिमेत्र ने नाटकीय ढंग से "आद्य परमाणु" का नाम दिया है उसी अवस्था की दिशा में ये नीहारिकाएँ इस समय की अपेक्षा बहुत दूर पीछे हटी हुई थीं। जितनी टक्करें तथा विध्वंसक समागम[4] आज संभव हैं उनकी अपेक्षा उन प्रारंभिक दिनों में ये करोड़ों गुने अधिक होते होंगे। अतः नीहारिकाओं से भरे समूचे ब्रह्माण्ड में किसी न किसी प्रकार से अगणित ग्रह-निकायों का निर्माण हो गया होगा। पहले तो ये अन्य तारों के प्रभाव के कारण संकटमय अवस्था में रहे होंगे, किन्तु ज्यों-ज्यों ब्रह्माण्ड का प्रसार होता गया होगा त्यों-त्यों ये भी उत्तरोत्तर अधिकाधिक सुरक्षित होते गये होंगे।

1. Cosmos
2. Metagalaxy
3. Expansion
4. Disruptive approaches

अरबों ग्रह-विकाय

हमारी आकाशगंगा के तारों की प्रतिदर्शी गणना[1] के आधार पर तथा जिस सीमा तक वर्तमान दूरवीनें देख सकती हैं उस सीमा तक की नीहारिकाओं के प्रतिदर्शी को गणना के आधार पर यह तुरन्त ही मालूम हो जाता है कि इस ब्रह्माण्ड में $१०^{२०}$ से भी अधिक तारे हैं और प्रत्येक तारे के विकिरण में ऐसी प्रकाश[2] रासायनिक प्रतिक्रियाओं के पोषण की क्षमता है जिन पर पौधों और जन्तुओं का जीवन निर्भर करता है। इनमें से प्रतिशत शायद कुछ थोड़े ही तारे एकाकी होंगे और उन्हीं में ग्रहों की उपस्थिति की संभावना हो सकती है। इन थोड़े-से तारों में भी प्रति सैकड़ा कुछ थोड़े ही से ऐसे होंगे जिनका विकास सुदूरभूत काल में नीहारिकीय आकुंचन द्वारा अथवा उपयुक्त टक्कर द्वारा इस प्रकार का हुआ होगा कि उनमें इस समय स्थायी ग्रह विद्यमान रह सकें। और जो तारे स्थायी कक्षावाले स्थायी ग्रहों को धारण करने में सफल हो गये उनमें से भी कुछ ही प्रतिशत ऐसे होंगे जिनमें एक या एकाधिक ग्रह केन्द्रीय तारे से यथोचित दूरी पर अवस्थित होगा। और इन समुचित दूरी पर अवस्थित ग्रहों में से भी शायद एक प्रतिशत ही की कक्षाएँ इतनी वृत्ताकार होंगी कि उनका टेम्परेचर सदैव पर्याप्ततः एक-सा रह सके। इसी प्रकार हम और भी प्रतिबंध लगा कर इन अल्पसंख्यक ग्रहों की संख्या को उत्तरोत्तर और भी कम करते जा सकते हैं क्योंकि यह भी तो आवश्यक है कि वहाँ की वायु विषरहित हो, वहाँ द्रव-जल विद्यमान हो तथा परिस्थिति ऐसी हो कि कार्वन, आक्सिजन, हाइड्रोजन और नाइट्रोजन की वह विशेष रासायनिक क्रिया प्रारम्भ हो सके जिसे हम "जीवन" कहते हैं। जो ग्रह जीवन के लिए उपयुक्त निवासस्थान हों और जिनमें जीव-जन्तु वास्तव में निवास करते हों उनकी संख्या इन सब प्रतिबंधों के कारण घट कर अंत में प्रायः शून्य ही हो जा सकती है।

इन सब कठिन प्रतिबंधों के द्वारा भी हम अपने आप को सबसे अलग करने में और इस ब्रह्माण्ड में कोई विशिष्ट तथा अनन्य स्थान प्राप्त करने में सफल नहीं हो सकते क्योंकि तारों की संख्या बहुत ही अधिक है। इस विवेचन में तीन बातें निर्विवाद हैं—(१) पृथ्वी पर जीवन की सृष्टि करने वाले हमारे सूर्य की साधारणत अर्थात् किसी प्रकार की विशिष्टता का अभाव, (२) जिन

1. Sampling Census 2. Photo chemical

भौतिक और रासायनिक नियमों से हम यहाँ परिचित हैं उनकी सर्वव्यापकता के प्रमाण, (३) जीवन के लिए १०^{२०}से भी अधिक सुयोगों या अवसरों का अर्थात् एक अरब खरब से भी अधिक तारों का अस्तित्व।

इन बहुत बड़ी संख्याओं पर एक बार फिर गौर करिए और उपर्युक्त विवेचन पर एक बार पुनः दृष्टि डालिए। मान लीजिए कि युगलता, पुंजीभवन, द्वैतीयिक टक्करों इत्यादि के कारण एक हजार तारों में से केवल एक ही तारा ग्रह-निकाय से संयुक्त है। मेरा व्यक्तिगत विचार तो यह है कि ऐसे तारों की संख्या का अनुमान पचास में से एक समझना अधिक सही होगा। और तारों की उत्पत्ति के नीहारिका-आकुंचन सिद्धान्त में विश्वास करने वालों में से अनेक तो कहेंगे कि प्रति दस तारों में से कम से कम एक तो ऐसा है ही जिसके साथ ग्रह विद्यमान हों। किन्तु अनुमान में अनुचित वृद्धि की शंका मिटाने के लिए हम मान लेते हैं कि एक हजार में से केवल एक ही तारा ग्रह-संयुक्त है और ऐसे एक हजार ग्रह-संयुक्त तारों में से केवल एक ही तारे के एक या अधिक ग्रह उस तारे से इतनी यथोचित दूरी पर अवस्थित हैं कि वहाँ द्रव-जल का अस्तित्व भी संभव है और प्रोटोप्लाज्म के लिए समुचित उष्णता भी है। हमारे सौर परिवार में इस यथोचित दूरी की अवधि में केवल दो या तीन ही ग्रह हैं। इसके अतिरिक्त हम यह भी मान लेते हैं कि यथोचित दूरी पर अवस्थित ग्रहों सहित तारों में से भी केवल एक प्रति सहस्र तारों के ग्रहों में एक-एक ग्रह इतना बड़ा है कि वह अपने वायुमंडल को सुरक्षित रख सके। हमारे सौर परिवार के नौ ग्रहों में से सात में वायुमंडल मौजूद हैं। इस हिसाब से जीवन के लिए उपयुक्त ग्रहों के अस्तित्व की संभावना घटकर एक अरब तारों में से केवल एक ही तारे में रह जायगी।

अभी इन उपयुक्त ग्रहों पर एक प्रतिबंध और भी लगाना जरूरी है। वहाँ वायु तथा जल का रासायनिक संघटन ऐसा होना चाहिए कि जिससे स्वभावतः उत्पन्न जटिल अकार्बनिक अणुओं का कार्बनिक अणुओं के रूप में विकास हो सके। संभवतः ऐसा भी एक हजार ग्रहों में से एक ही में हो सकता है।

अब यदि एक प्रति सहस्र के परिमाण की उपर्युक्त चारों प्रायिकताओं का सम्मेलन कर दिया जाय तो अनुमान यह बैठता है कि १०^{१२} तारों में से केवल एक ही हमारे समस्त प्रतिबंधों की परीक्षा में उत्तीर्ण हो सकता है—अर्थात् एक लाख करोड़ तारों में से केवल एक। मेरा विश्वास है कि उपर्युक्त चारों प्रायिक-

ताओं के अनुमान बहुत कम हैं, किन्तु ब्रह्माण्ड, भर में अपनी अनन्यता[1] को प्रमाणित करने और अपने महत्त्व को बढ़ाने के प्रयास में हम जीवन के निवास के लिए उपयुक्त अन्य ग्रहों के अस्तित्व को यथासंभव कठिन बना देना चाहते हैं। किन्तु यथाचित प्रकार के ग्रहों को इस अत्यधिक अप्रायिकता[2] का परिणाम क्या निकलता है? तारों की पूरी संख्या $१०^{२०}$ में एक लाख करोड़ अर्थात् $१०^{१२}$ का भाग देने से हमें $१०^{८}$ की संख्या प्राप्त होती है ($१०^{२०} \div १०^{१२} = १०^{८}$) अर्थात् जीवों के निवास योग्य ग्रह-निकायों की संख्या दस करोड़ है। यह संख्या तो लघुतम है और मेरे व्यक्तिगत मत के अनुसार, अध्याय ५ में बताये हुए कारणों से, इस संख्या को कम से कम एक हजार से--संभवतः दस लाख से—गुणा कर देना चाहिए।

इस समस्त विवेचन को संक्षेप में यों लिखा जा सकता है। आधुनिक काल के अन्वेषणों ने जीवों के निवासयोग्य ग्रहों के सम्बन्ध में हमारी धारणाओं को समुन्नत तथा सुस्पष्ट कर दिया है। सर्पिल नीहारिकाओं के वस्तुतः तारकीय संगठन के आविष्कार के कारण तारों तथा नीहारिकाओं से परिपूर्ण आकाश के अत्यन्त दूरव्यापी अन्वेषण के द्वारा प्रक्ष्य तारों की संख्या पूर्वकालिक अनुमान से अरबों गुनी अधिक हो जाने के कारण तथा ब्रह्माण्ड की प्रसरणशीलता के आविष्कार और उससे उत्पन्न इस विश्वास के कारण कि कई अरब वर्ष पूर्व तारों और ग्रह-निकायों का द्रव्य आज की सी अपेक्षाकृत शांत अवस्था की तुलना में अत्यन्त संघनित तथा क्षुब्ध और संकुलित था, हमारा विश्वास पृथ्वी से भिन्न अन्य "जगतों" के अस्तित्व के सम्बन्ध में अधिक दृढ़ हो गया है। हमारी वर्तमान धारणा यह है कि हमारा संसार कुछ-कुछ पीले रंग के एक साधारण तारे के घूर्णमान परिवार के तीसरे ग्रह का पृष्ठदेश है और यह तारा ऐसे ही अरबों तारों से परिपूर्ण एक प्रतिरूपी नीहारिका के बाह्य प्रदेश में अवस्थित है तथा हमारी यह निज नीहारिका एक महानीहारिका[3] अथवा ब्रह्मांड की कई अरब नीहारिकाओं में से ही एक है।

यह तो हुआ हमारे ग्रह-निकाय की सीमान्त प्रदेशीय अवस्थिति के विषय में तथा जीव-निवासोपयुक्त ग्रहों की प्रचुरता के सम्बन्ध में। अगले अध्याय में हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि इन निवासोपयुक्त ग्रहों में से कितनों में सचमुच ही जीवों का निवास है।

1. Uniqueness 2. Improbability 3. Meta-galaxy

अध्याय ५

आद्य जीवन के संकट

हमारे मूल विवेचन के लिए इस बात का वस्तुतः कुछ भी महत्त्व नहीं है कि जीवनोपयुक्त स्थान अत्यन्त ही प्रचुर संख्या में विद्यमान हैं या ऐसे ग्रहों की संख्या केवल दस लाख मात्र है जिनमें चेतनायुक्त जीव रहते हैं और अपनी परिस्थिति से संघर्ष करते रहते हैं। प्रकृति का रहस्य समझने के प्रयत्न में इस छोटी संख्या से भी इस बात की आवश्यकता स्पष्टतः प्रकट होती है कि हमें ब्रह्मांड के चित्र में पृथ्वीवाह्य[1] जीवन को भी समाविष्ट करना चाहिए क्योंकि शुद्ध पार्थिववाद[2] सीमित है, निरर्थक है और अब तो वह वस्तुतः मृत ही हो गया है। इस दृष्टिकोण का जन्म तीन महत्त्वपूर्ण तथा अपेक्षाकृत आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण हुआ है और उन्हीं के कारग अभी से वह विस्तृत मान्यता प्राप्त कर रहा है। य हैं (१) जीवन शक्ति को आश्रय दे सकने योग्य तारों और विश्वों की अत्यन्त बड़ी संख्या, (२) जिस ब्रह्मांड से हम आज परिचित हैं उसकी कई अरब वर्ष पूर्व की अत्यन्त सघन तथा संकुल अवस्था (जिसके कारण अगणित ग्रह-निकायों का जन्म संभव हुआ), (३) जटिल किन्तु जीवरहित प्राकृतिक अणुओं तथा प्रजननशील जीवन की सरलतम अभिव्यक्ति के बीच में जो गर्त है उसकी रासायनिक प्रयोगशालाओं में अंशतः पूर्ति। इन तीनों आविष्कारों का विस्तारयुक्त वर्णन अध्याय ७ में मनुष्य के "चतुर्थ समन्वय"[3] के सम्बन्ध में किया जायगा।

यद्यपि प्रोटोप्लाज्मीय जीवन के क्षत्र के बृहत् विस्तार पर और ज्यादा जोर देने की अब अधिक आवश्यकता नहीं है तथापि शायद यह उचित है कि हम इन बातों पर गहरा विचार कर लें कि जीवन कहाँ-कहाँ पर विद्यमान है, उसे किन-किन संकटों का सामना करना पड़ता है और हमारे जीवन से भिन्न अन्य प्रकार के

1. Extra-terrestrial 2. Terrestrialism 3. Fourth Adjustment

जीवन की भी संभावना हो सकती है या नहीं। "इस साधारण तथा विशेषताहीन ग्रह पर जीवन विद्यमान है" और जैसा हम अध्याय ९ में बतावेंगे "वह यहाँ प्राकृतिक रूप से ही उत्पन्न हुआ था" ये तथ्य ही इस बात में लगभग पूरा विश्वास उत्पन्न करने के लिए काफी हैं कि जीवन ऐसी घटना है जो ब्रह्मांड भर में फैली हुई है।

प्रोटोप्लाज्म के आदिकालीन संकट

पिछले अध्यायों के विवेचन के अनुसार एक अरब तारों में से कम से कम एक तो ऐसा अवश्य ही होगा जिसके साथ ठोस पृष्ठ वाला ऐसा अगैसीय ग्रह भी विद्यमान होगा जो जीवों के रहने के लिए पूर्णतः उपयुक्त हो। तारों के प्रकाश से प्रदीप्त ये ग्रह भी जीवन के लिए उतने ही संतोषप्रद होने चाहिए जितनी कि यह पृथ्वी है जिसके समुद्रों और स्थलीय भागों में सूर्य के प्रकाश की सहायता से लाखों-करोड़ों प्रकार की वनस्पतियों का तथा जन्तुओं का विकास हुआ। बड़ी दूर-दूर के बहुत-ब्रह्मांडीय प्रदेशों के प्रतिदर्शों में तारों की गणना करने से हमें पूरा विश्वास हो गया है कि कुल तारों की संख्या $१०^{२०}$ से भी अधिक है। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि जो तारे केवल एक प्रति अरब के हिसाब से ही जीवों के निवासयोग्य समझे जा सकते हैं उनकी संख्या सम्पूर्ण तारकीय ब्रह्माण्ड में बहुत ही कम है।

किन्तु यद्यपि कोई ग्रह जीवन के लिए अनुकूल हो और यद्यपि उसमें वायु, जल, उष्णता तथा विविध रासायनिक द्रव्यों के घोल भी यथोचित विद्यमान हों तथापि इन बातों से यह परिणाम नहीं निकाला जा सकता कि उसमें अवश्य ही अत्यन्त विकसित जीव सचमुच रहते भी हैं। यह भी नहीं समझा जा सकता कि पृथ्वी के सर्वोत्तम प्राणियों के ही सदृश अथवा उनसे भी उत्कृष्ट अत्यन्त चेतना-युक्त तथा बुद्धिमान प्राणियों का विकास भी इन समस्त सैकड़ों अरब जीवयुक्त ग्रहों में हो गया है। इसका कारण यह है कि प्रोटोप्लाज़्म को––विशेषकर अनुभवहीन प्रोटोप्लाज़्म को––अनेक संकटों का सामना करना पड़ता है।

यह संभव है कि किसी ग्रह की परिस्थिति जीवन के लिए सर्वथा अनुकूल हो तथापि वहाँ कोई भी जैविक घटना ऐसी न हुई हो जो महत्त्वपूर्ण समझी जा सके। जिस व्यक्ति का यह विश्वास हो कि यदि परिस्थिति अनुकूल हो तो जीवों की उत्पत्ति अवश्यम्भावी है और उनका चिरस्थायी होना भी निश्चित है तथा इस अनुकूलता की सीमाएँ भी बहुत विस्तृत हैं उसको तो यह बात अवश्य ही अत्यन्त

असम्भव मालूम होगी। किन्तु मान लीजिए कि किसी प्रारंभिक युग में ऐसा संकट उपस्थित हो गया कि अकस्मात् वहाँ की वायु में मुक्त आक्सिजन की मात्रा बहुत बढ़ गयी और फलतः जो सुकुमार आणविक संगठन स्थायी जैविक अवस्था को प्राप्त करने का प्रयास कर रहे थे वे सब जलकर नष्ट हो गये, अथवा मान लीजिए कि आकाश में से आने वाली निरक्षीय किरणें[१] अत्यन्त प्रवल थीं, अथवा अत्यन्त निर्बल थीं अथवा वायुमंडल के अणुओं के कारण वे इतनी क्षीण हो गयी थीं कि उस प्रारंभिक वायुमंडल[२] में उपस्थित मीथेन,[३] अमोनिया,[४] जल तथा हाइड्रोजन के संयोजन से सरलतम अमीनोऐसिड[५] बनने की रासायनिक क्रिया का प्रारम्भ करने के लिए आवश्यक ऊर्जा प्रदान करने की क्षमता उन किरणों में न बची हो। और यह भी हो सकता है कि जीवन की उत्पत्ति तो हो गयी हो किन्तु परिस्थितियाँ उसे जीवित रखने के अनुकूल न रही हों। अतः ऐसे ही अनेक कारणों से बहुत से ग्रहों में परम आद्यजीव की पैदा होते ही निस्सन्देह मृत्यु हो गयी होगी।

इस पृथ्वी पर जीवन का प्रारम्भ प्रसरणशील ब्रह्मांड के प्रारंभिक युग में हुआ था और वह यहाँ जीवित रहने तथा परिवर्तित होने में सफल भी हुआ। शीघ्र ही उद्भिद् वनस्पति ने पृथ्वी के वायुमंडल के विकास में सहयोग देना प्रारंभ कर दिया और उस समय के गैसीय वातावरण के अत्यधिक मात्रीय जल-वाष्प तथा हाइड्रोजन के स्थान में आक्सिजन की वर्तमान प्रचुर मात्रा से भर दिया। इस समय पौधों में से उत्पन्न होने वाली आक्सिजन का सन्तुलन जन्तुओं द्वारा अन्तर्ग्रहीत आक्सिजन से अंशतः हो जाता है; और जो कार्बन-डाइआक्साइड जन्तु अपने श्वास के साथ बाहर निकालते हैं या जो कार्बन डाइआक्साइड वनस्पति के सड़ने, आग के जलने तथा ज्वालामुखी पहाड़ों आदि से उत्पन्न होती है उसी के द्वारा पेड़-पौधों को अपना कार्बोहाइड्रेट[६] बनाने के लिए कार्बन प्राप्त हो जाती है।

संभवतः सौर परिवार के चतुर्थ ग्रह मंगल पर भी जीवन का प्रारम्भ हुआ था। मंगल के वातावरण का रासायनिक संघटन और वहाँ के मौसिम की अवस्था

1. Cosmic rays
२. वायुमण्डल के अन्य प्रकार के रासायनिक संघटनों का वर्णन परिच्छेद ९ में देखिये।
3. Methane
4. Ammonia
5. Amino-acid
6. Carbohydrates

हमारे यहाँ से बहुत ही भिन्न है। फिर भी संभवतः वहाँ विकास की प्रवृत्ति उतनी ही है जितनी कि पृथ्वी पर है—कम से कम पहले तो थी ही। किन्तु आक्सिजन की कमी मंगल के जीवों को, यदि वे वर्तमान हों, विकास की निम्न अवस्था में ही बनाये रखती है। (अध्याय ९ में जीवों के जन्म लेने में जो कठिनाइयाँ हैं उन पर पुनः विचार किया जायगा।)

उन्नत जैविक विकास के लिए उपयुक्त ग्रहों में यदि एक प्रति सहस्र भी ऐसे हों जिनमें प्रोटोप्लाज़्मीय क्रियाएँ वास्तव में हमारे ही समान ऊँचे स्तर पर पहुँच चुकी हैं तब भी, जैसा कि हम पिछले अध्याय में देख चुके हैं, कम से कम १०^{८} उच्चजीवी ग्रह बच जाते हैं—अर्थात् अत्यन्त उन्नत जीवों के निवास-स्थानों की संख्या दस करोड़ से भी अधिक बच रहती है। हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि हमारा सूर्य केवल औसत प्रकार का तारा है, हमारे पड़ोसी तारे भी असाधारण नहीं हैं और आकाश में हमारा जो स्थान है उसमें ऐसी कोई विशेषता नहीं है जिसके कारण खास इसी ग्रह के साथ विशेष रियायत की गयी हो और इसे जैविक विकास के लिए असाधारण अवसर प्राप्त हुए हों।

समुन्नत जीवों के पोषक तारों की अनुमानित संख्या को १०^{२०} से भी अधिक से घटाकर हम १०^{८} पर ले आये हैं। अन्य तारों में से बहुतों के ग्रहों में शायद चिरस्थायी जीवक क्रियाओं का सर्वथा अभाव ही है। या कुछ निम्न श्रेणी के जीवों का निवास हो भी सकता है। तारों की अनुपयुक्तता के जो कारण, तारों की युगलता, स्थिति की अनुत्तमता और दोषपूर्ण रासायनिक संघटन आदि हमने बताये हैं वे सब अत्यन्त निर्मम हैं। हमने उन्नत जैविक स्तर पर प्रतियोगिता के अस्तित्व का निराकरण करने के समस्त संभव उपायों की खोज की है। यह खोज ऐसे लोगों की सुविधा के लिए की गयी है जिनके मन में यह विचार और अभिलाषा है कि मनुष्य को पूर्णतः अद्वितीय होने की विशेषता प्राप्त हो जाय।

लेखक के व्यक्तिगत मतानुसार तो जीवनानुकूल अवसरों की संख्या को दस लाख से गुणा कर देना चाहिए और हमें यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि उन्नत जीवन से युक्त ग्रहों की संख्या १०^{१४} से कम नहीं है। इस प्रकार दस लाख से गुणा करने के दो मुख्य कारण हैं। पहला तो यह है कि संभवतः हमने ब्रह्मांड के समस्त तारों की संख्या का जो अनुमान लगाया है वह अत्यन्त ही कम है। दूसरा यह है कि कार्बन के यौगिकों पर आश्रित जीवन के अतिरिक्त अन्य प्रकार के जीवन भी शायद हो सकते हैं।

ऐंडिन्गटन[१] के सैद्धान्तिक विवेचन से प्रकट होता है कि इस ब्रह्मांड में समस्त मूल कणिकाओं[२] अर्थात् इलेक्ट्रानों, प्रोटानों, तथा न्यूट्रानों की संख्या $१०^{७९}$से कम नहीं है। बाद में दूसरे वैज्ञानिकों ने भी इसका समर्थन किया है। अतः पूरे ब्रह्मांड का द्रव्यमान $१०^{५५}$ग्राम से भी अधिक है ($१०^{७९}÷१०^{२४}=१०^{५५}$)।[३]यदि एक मानक तारे का द्रव्यमान सूर्य के द्रव्यमान से आधा मान लिया जाय (क्योंकि आधुनिक अन्वेषणों से पता लगा है कि सूर्य के निकटवर्ती आकाश में और संभवतः अन्यत्र भी वामन[४]तारे बहुत बड़ी संख्या में विद्यमान हैं) तो एसे तारों की संख्या $१०^{२२}$निकलती है($१०^{५५}÷१०^{३३}=१०^{२२}$)। केवल इस एक ही बात से जीवन के लिए अनुकूल अवसरों की संख्या बढ़कर पूर्ववर्णित अनुदार अनुमान की अपेक्षा सौ गुनी हो जाती है।

प्रेक्षणों के द्वारा भी यह परिणाम निकाला जा सकता है कि तारों की संख्या का जो अनुमान ($१०^{२०}$) ऊपर दिया गया है वह बहुत ही कम है। आकाश के विभिन्न प्रतिदर्शों के प्रेक्षण से प्रकट होता है कि चार अरब प्रकाश-वर्षों[५] तक की दूरी के अन्दर कम से कम एक अरब ($१०^{९}$) नीहारिकाएँ विद्यमान हैं। यदि इनमें तारों की प्रचुरता हमारी आकाशगंगा की तुलना में $\frac{१}{२}$ मात्र भी हो तो हमारे वर्तमान प्रतिदर्शी-सर्वेक्षण[६] की सीमा के अन्तर्गत $१०^{९}÷१०^{१०}=१०^{२९}$ तारे होने चाहिएँ। यदि हमारे प्रेक्षणों की पहुँच अब से केवल दस गुनी हो जाय तो तारों की संख्या भी $१०^{२२}$तक पहुँच जायगी। और हमारी पहुँच की यह वृद्धि भविष्य की संभावित प्रगति की दृष्टि से कुछ बहुत अधिक नहीं समझी जा सकती। सन् १९१५ से १९३० के १५ वर्षों में ही हमने अपने खगोलीय सर्वेक्षण[७]की परास[८] को लगभग दस लाख गुना बढ़ा लिया है। अतः

1. Eddington
2. Fundamental particle
३. यदि न्यूट्रान में दो कणिकाएँ—एक प्रोटान और एक इलेक्ट्रान—मानी जायँ तो एक ग्राम द्रव्य (matter) में मौलिक कणिकाओं (प्रोटानों और इलेक्ट्रानों) की संख्या सन्निकटतः $१·२×१०^{२४}$है। सूर्य का द्रव्यमान $२×१०^{३३}$ ग्राम है। अतः प्रत्येक 'मानक' (Standard) तारे में लगभग $१०^{५७}$ कणिकाएँ होती हैं।
4. Dwarf
5. Light-years
6. Sampling
7. Survey
8. Range

आकाश का प्रेक्ष्य आयतन इस संख्या के घन[1] द्वारा (अर्थात् १०¹⁸ द्वारा) गुणित हो गया है।

क्या,अन्य प्रकार क जीवन संभव हैं ?

उच्च श्रेणी के प्राणियों के निवासयोग्य ग्रहों की संख्या का जो अनुमान हमने किया है उसमें बहुत अधिक वृद्धि की आवश्यकता के पक्ष में दूसरा तर्क सर्वथा भिन्न प्रकार का है। उसका सम्बन्ध जीव-रसायन[2]से है, सांख्यिकीय ज्योतिष[3] से नहीं। संक्षप में उसे निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है—

यदि हम किसी अन्य ग्रह के पृष्ठ पर जा पहुँचे तो अपनी अपरिपक्व बुद्धि तथा अगाध अज्ञान के कारण हम वहाँ केवल उसी जीवन को पहचान सकेंगे और उसी को जीवन को संज्ञा दे सकेंगे जिससे हम यहाँ परिचित हैं और जिसकी कुछ अस्पष्ट-सा परिभाषा हमने पिछले पृष्ठों में दी है। "पृष्ठ" में वायुमंडल, समुद्र तथा अन्य जलाशय और स्थलप्रदेश सभी सम्मिलित समझने चाहिए। उसमें समुद्रों की गहराई और चट्टानों के ऊपर जमी हुई मिट्टी की गहराई को भी सम्मिलित कर लेना चाहिए। पृथ्वी के पृष्ठ के इन सभी स्थानों में रासायनिक दृष्टि से जीवन बहुत कुछ एक-सा ही है। कार्बन के यौगिकों की ही बहुतायत है। इसी से सामान्यतः यह कहा जाता है कि हमारा जीवन आवर्त-सारिणी[4] के छठे तत्त्व कार्बन (C) पर आश्रित है।

कार्बन परमाणु के सामान्यत. रूप में धनात्मक विद्युतीय आवेश के छः मात्रकों[5] सहित छः प्रोटान होते हैं, छः न्यूट्रान भी होते हैं जो उसके नाभिक का भार तो बढ़ाते हैं किन्तु आवेश में कुछ भी वृद्धि नहीं करते तथा इस नाभिक की परिक्रमा करने वाले छः ही इलेक्ट्रान होते हैं जिनका छः मात्रक ऋणात्मक आवेश नाभिक के सम्पूर्ण धनात्मक आवेश से सन्तुलित हो जाता है। परमाणु के एक सुविधापूर्ण प्रतिरूप[6] के अनुसार कार्बन परमाणु के छः इलेक्ट्रान दो परिच्छदों[7] में अवस्थित हैं—दो अभ्यन्तर इलेक्ट्रान तो उस परिच्छद में हैं

1. Cube
2. Biochemistry
3. Statistical astronomy
4. Periodic table
5. Units
6. Model
7. Shells

जिसका नाम K-परिच्छद रखा गया है और चार उसके बाहर वाली L-परिच्छद में हैं। इस इलेक्ट्रान संरचना को संक्षेप में व्यक्त करने का संकेत २-४ है। कार्बन के बाद वाले सातवें तत्त्व नाइट्रोजन में इलेक्ट्रानों की व्यवस्था २-५ है और आठवें तत्त्व आक्सिजन में २-६ है। इन तत्त्वों का—विशेषतः कार्बन और आक्सिजन का—अपनी इलेक्ट्रान-परिच्छद संरचना के कारण, एक दूसरे के साथ, हाइड्रोजन से तथा जीव-शरीर में पाये जाने वाले अन्य तत्त्वों के साथ आसानी से रासायनिक संयोजन हो जाता है।

पृष्ठ ..... की आवर्त-सारिणी के उसी ऊर्ध्वाधर स्तम्भ में एक और बहुतायत से पाया जाने वाला तत्त्व है जिसकी प्रचुरता पृथ्वी पर कार्बन की अपेक्षा दो सौ गुनी अधिक है। वह सिलिकन[१] है। पृथ्वी की पृष्ठीय पपड़ी का लगभग चतुर्थांश इसी तत्त्व का बना है और समस्त शैल-द्रव्य[२] का लगभग तीन-चौथाई भाग जिस बालू का बना है वह आक्सिजन के साथ इसी सिलिकन के आणविक संयोजन से उत्पन्न हुई है। इसकी इलेक्ट्रान संरचना २-८-४ है। इसके M-परिच्छद में जो चार बाह्य इलेक्ट्रान हैं उनके कारण यह परमाणु हाइड्रोजन, नाइट्रोजन तथा आक्सिजन के साथ बड़ी आसानी से संयोजित हो सकता है। कार्बन की ही तरह इसके यौगिक भी गैसीय, द्रव तथा ठोस तीनों ही प्रकार के हो सकते हैं। कार्बन डाइआक्साइड[३] तो घरों के साधारण टेम्परेचर पर भी गैस रूप में रहती है, किन्तु सिलिकन डाइआक्साइड[४] को गैस रूप में परिणत करने के लिए २५०० सेण्टाग्रेड से अधिक टेम्परेचर की आवश्यकता होती है।

अन्य तत्त्वों के साथ मिलकर इन दोनों तत्त्वों से बननेवाले संयोजनों में कुछ और भी असमानताएँ हैं और अनेक समानताएँ भी हैं। यहाँ हम इतना ही कहेंगे कि कार्बन के यौगिकों के स्थान में सिलिकन के यौगिकों पर आश्रित जीवन के अस्तित्व की सम्भावना बहुत कम है, किन्तु फिर भी हमें इस संभावना को भूल नहीं जाना चाहिए। इस प्रकार के जीवन को हम पहचान नहीं सकेंगे क्योंकि इस बात की संभावना बहुत ही कम है कि सिलिकन से भी ठीक वैसे ही जटिल जैविक अणु-संगठनों की स्वाभाविक उत्पत्ति हो सके या उनमें भी हमारे परिचित प्रकाश-संश्लेषण[५] के सदृश ही कोई क्रिया होती हो या हो सके अथवा

1. Silicon, Si 2. Rock material 3. CO_2
4. SiO_2 5. Photo-synthesis

सिलिकन पर आश्रित प्राणियों की विपचन-क्रिया[1] ठीक वैसी ही हो जैसी कि हमारे कार्बन-आक्सिजन-हाइड्रोजन-आधारित प्रणियों की होती है।

जैविक विकास में आक्सिजन का स्थान लेने योग्य गंधक (इलेक्ट्रान संरचना २–८–६) के जैसे अन्य संभव तत्त्वों के भी नाम प्रस्तुत किये गय हैं। निश्चय ही हमें ऐसा नहीं समझना चाहिए कि जीवों के अस्तित्व की संभावना केवल उन्हीं ग्रहों तक सीमित है जिनमें हमारी पृथ्वी के समान ही वायुमंडल, जलाशय तथा मिट्टी विद्यमान हों। यदि यह मान लिया जाय कि जीवनोपयोगी रासायनिक क्रियाएँ अन्य प्रकार की भी हो सकती हैं तो जीवन के लिए प्रतिकूल ग्रहों की संख्या बहुत घट सकती है।

पृथ्वी से भिन्न परिस्थितियों में जीवों का अनुकूलन[2]

जैसी रासायनिक तथा मौसमी परिस्थिति में जीव पृथ्वी पर रहते हैं उससे अत्यन्त भिन्न प्रकार की परिस्थितियों के भी अनुकूल वे अपने आपको बना सकते हैं, इस संभावना को भी हमें स्वीकार कर लेना चाहिए। जो परिस्थिति आज हमारे लिए सांघातिक हो वही अनुकूलन के प्रयत्न से धीरे-धीरे सह्य बन सकती है। यदि विष अल्प, किन्तु उत्तरोत्तर बढ़ती हुई मात्रा में खाये जायें तो कभी-कभी उनका जहरीलापन जाता रहता है। यदि हम पर पार बैंगनी[3] विकिरण दीर्घ काल तक पड़ता रहे तो उसकी जितनी मात्रा हम अभी सह सकते हैं उससे कहीं अधिक मात्रा शायद हमें सह्य होने लगे। वस्तुतः इस बात की संभावना बहुत अधिक है कि पृथ्वी पर भी आद्य जीवों को अत्यन्त प्रबल परा-बैंगनी विकिरण का सामना करना पड़ा था क्योंकि जहाँ तक अनुमान किया जा सकता है इस समय पृथ्वी के पृष्ठ पर जो २० मील मोटा ओज़ोन[4] का आवरण है उसका अधिकांश हमारे वायुमंडल के उस धीरे-धीरे होने वाले विकास के कारण उत्पन्न हुआ था जिसमें पेड़-पौधों ने प्रचुर मात्रा में आक्सिजन को मुक्त करना प्रारम्भ कर दिया था।

भौतिक, रासायनिक तथा मौसम की विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों से जैविक अनुकूलन हो जाने पर किसी भी तारे के चारों ओर जीवनोपयुक्त क्षेत्र

1. Metabolsm
2. Adaptation
3. Ultra-violet
4. Ozone-O_3

बहुत बढ़ सकता है। उदाहरण के लिए मनुष्य जाति के प्राणियों को ही लीजिए। उनमें अनुकूलन की क्षमता बहुत ही अधिक है। चमड़े के रंग के द्वारा, वस्त्रों और छातों के द्वारा तथा घरों को गरम करने के साधनों के द्वारा अपनी रक्षा करके वे सफलतापूर्वक सम्पूर्ण पृथ्वी पर फैलकर प्रचुर संख्या में निवास करने लगे हैं। ऑक्सिजन से भरे पात्र लेकर वे अत्यन्त निम्न दबाव वाले ऊंचे पहाड़ों पर जा सकते हैं और अपने स्वाभाविक जीवन के सदृश परिस्थिति उत्पन्न करने के साधनों से सुसज्जित होकर वे खानों[1] की अत्यधिक दबाव वाली वायु में तथा अत्यधिक जलीय दबाव युक्त समुद्र की गहराइयों में भी जा सकते हैं। आनुक्रमिक अनुकूलन की सहायता से अनेक जन्तु तथा पौधे तो मनुष्य से भी अधिक सफलता प्राप्त कर लेते हैं। गरम जल-स्रोतों में कीटों की, ध्रुवीय प्रदेशों में लाइकेन फफूंद की, अत्यन्त गहरे समुद्र के प्रचंड दबाव में अनेक प्रकार के समुद्री जन्तुओं की उपस्थिति अनुकूलन की विविधता के साक्षी हैं। इनके कारण इस विश्वास को प्रोत्साहन मिलता है कि यदि जैविक विकास कार्बन, जल तथा नाइट्रोजन की रासायनिक क्रियाओं ही तक सीमित हो तो भी यह आशा की जा सकती है कि हमारे वर्तमान शीतोष्ण[2] तथा उष्ण[3] कटिबंधों[4] की परिस्थितियों से सर्वथा भिन्न परिस्थिति वाले ग्रहों में भी जीवों का निवास संभव हो सकता है।

शायद प्रति दस लाख तारों में से केवल एक

मौसमी तथा भौतिक परिस्थितियों की जिन पराकाष्ठाओं में प्राणी जीवित रह सकते हैं उन के तथा अन्य प्रकार की रासायनिक क्रियाओं पर आधारित जीवन की उत्पत्ति और विकास की संभावना के विवेचन से ही हमें पूरे ब्रह्मांड में जीवों के अस्तित्व की प्रायिकता के सांख्यिक अनुमान में द्वितीय संशोधन करना पड़ा है और इसी से इस विचार की पुष्टि हुई है कि हमें जीवनोपयुक्त तारों की पहले की अनुमानित संख्या को दस लाख से गुणा कर देना तर्कसंगत समझना चाहिए। अर्थात् हमें यह मान लेना चाहिए कि हमारे ही समान विकसित चेतना वाले प्राणियों के निवास-योग्य ग्रहों की संख्या कम से कम $१०^{१४}$

1. Mines
2. Temperate
3. Torrid
4. Zones

तो है ही। दूसरे शब्दों में, हमारा अनुमान है कि प्रति दस लाख तारों में से कम से कम एक तारा तो ऐसा अवश्य है जिसके एक या अधिक ग्रहों में उच्च कोटि की प्रोटोप्लाज्मीय क्रिया का अस्तित्व है। और यदि सबमें नहीं तो इन $१०^{१४}$ ग्रहों में से अनेक ग्रहों के पौधों और जन्तुओं में संभवतः ठीक वैसी ही अन्योन्याश्रयता भी वर्तमान है जैसी कि इस पृथ्वी पर है।

कार्बन और ऑक्सिजन का विनिमय ही एक प्रकार से जीवन का श्वास है—पौधों द्वारा कार्बन डाइऑक्साइड का तथा जन्तुओं द्वारा ऑक्सिजन का अनिवार्य अन्तःश्वसन[१] और पौधों द्वारा ऑक्सिजन का तथा जन्तुओं द्वारा कार्बन डाइऑक्साइड का बहिःश्वसन[२] यही विश्वव्यापी सहजीवन[३] है। यदि किसी ग्रह पर जन्तुओं का पूर्ण अभाव हो तो प्रकाश-संश्लेषण[४] पर आश्रित वनस्पति के लिए कार्बन-डाइऑक्साइड की कमी हो जायगी और तब पौधों को अपने लिए आवश्यक कार्बन ज्वालामुखियों के अनिश्चित उद्गिरण से, प्राकृतिक अग्नियों से और स्वयं अपने ही सड़ने की क्रियाओं से प्राप्त करना पड़ता। पौधों के पूर्ण अभाव में जन्तु तो सचमुच शीघ्र ही भूख के कारण शक्तिहीन होकर मर जाते। वस्तुतः उनका विकास ही न होता। किन्तु यहाँ स्थिति यह है कि पोषाहार[५] की दृष्टि से दोनों ही सुखी सहजीवन का उपभोग कर रहे हैं। हम जन्तु तो पौधों का उपयोग कार्बन के स्थिरीकरण[६] के लिए तथा ऑक्सिजन को विमुक्त करने के लिए करते हैं पौधे हमारा उपयोग अपने लिए कार्बन डाइऑक्साइड के उत्पादक तथा उर्वरक[७] के रूप में करते हैं। प्रकृति की अर्थ-व्यवस्था[८] वस्तु-विनिमय[९] पर आश्रित है।

किसी अज्ञात ग्रह पर जीवन

हम अभी नहीं कह सकते कि जीवन को आश्रय देने वाले ये अन्य ग्रह कहाँ हैं। शायद यह हम कभी नहीं बता सकेंगे क्योंकि वे अपने-अपने तारों की प्रखर ज्योति के कारण अदृश्य हो गये हैं तथा आकाश में हमारी स्थिति उन सब

1. Inhaling 2. Exhaling 3. Symbiosis
4. Photo synthesis 5. Nutrition 6. Fixation
7. Fertilizer 8. Economy 9. Barter system

से बहुत दूर एकान्त में है और हमारा विश्वास है कि उनका अन्वेषण करने के जो साधन हमारे पास है वे अभी तक अविकसित आदिम अवस्था में ही हैं। यद्यपि अभी तो हम ऐसे ग्रहों को देख सकते हैं और न उनके फोटो ही खींच सकते हैं तथापि सांख्यिकीय प्रायिकता[1] के आधार पर उनके अस्तित्व का अनुमान अवश्य कर सकते हैं; यदि उनकी प्रायिकता के सम्बन्ध में लेखक की अभिरुचि को स्वीकार कर लिया जाय तो हमारी आकाशगंगा में ही उनकी संख्या कम से कम १००,००० होगी। किन्तु यदि प्रायिकता के अनुमान में निर्मम कतरब्योंत कर दी जाय तो शायद दस-बारह नीहारिकाओं में केवल एक ही ग्रह ऐसा निकले।

हम यह भी नहीं कह सकते कि इन ग्रहों में किस प्रकार के जीव रहते हैं। क्या वे केवल पौधे, जन्तु और जटिलताहीन अकोषीय अथवा एक-कोषीय जीव[2] हैं? अथवा क्या अन्य किसी प्रकार के अत्यन्त विकसित जीव भी होते हैं जो न पौधे हैं, न जन्तु और न इन दोनों के बीच की अवस्था वाले? हमें बड़ा आश्चर्य होगा यदि हम देखें कि कोई प्रौढ़ वृक्ष स्वतः ही अपनी जड़ों को समेट कर तथा अपनी जगह को छोड़कर अधिक पोषक द्रव्य की तलाश में अन्यत्र चला जाय अथवा यदि कोई जन्तु कभी-कभी अपनी गतिशीलता को त्याग कर किसी स्थान विशेष में अपनी जड़ें जमा ले और उनके द्वारा जमीन में से प्रकाश-संश्लेषण प्रस्तुत द्रव्य का आहार करने लगे। किन्तु पृथ्वी ही के जीव-जन्तुओं की निम्न श्रेणी में पायी जाने वाली इनसे भी अधिक आश्चर्यजनक क्रियाओं से हम इस समय भी परिचित हैं। सूर्य की विकिरण-ऊर्जा का संचय करने के साधन केवल हरा क्लोरोफिल[3], रक्ताभ कैरोटिन[4] तथा पीला जैन्थोफिल[5] ही नहीं हैं। हमारा विकास ऐसा हुआ है कि जिन तरंग-दैर्ध्यों को हमारा पीत तारा (सूर्य) विकीर्ण करता है उन्हीं की हमें आवश्यकता होती है। इसी तरह अधिक लाल या नीले वर्ण के सूर्य भी ऐसे जीवों की उत्पत्ति और पोषण कर सकते हैं जिनके लिए स्पैक्ट्रम के लाल अथवा नीले खंड का प्रकाश अधिक कल्याणकारी हो। यह हो सकता है कि विकिरण ऊर्जा को रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित करने वाले उनके साधनों में और हमारे क्लोरोफिल में बिलकुल भी सादृश्य न हो।

1. Statistical probability 2. Protista
3. Green Chlorophyll 4. Carotin 5. Xanthophyll

यद्यपि उस अज्ञात उन्नत जीवन युक्त ग्रह में (जिसका नाम हम अनाम-ग्रह रख सकते हैं) जीवन का स्वरूप बहुत कुछ निराधार अनुमान का विषय है तथापि हमारे लिए ऐसी आशा करना स्वाभाविक है कि पृथ्वी पर जितने अगणित प्रकार के जीव हैं उन्हीं में से कुछ के साथ उस ग्रह के जीवों की समानता अनेक बातों में होगी। यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि आकार आदि अनेक बातों में बहुत अधिक विभिन्नता होने पर भी हजारों प्रकार के पौधों और जन्तुओं के जैविकीय गुणधर्म तथा वृद्धि के मौलिक प्रक्रम बिलकुल एक-से हैं। क्लोवर[1] नामक पौधों तथा सीकोइया[2] नामक उत्तुंग पेड़ों के रस-प्रवाह, स्तम्भ[3] की संरचना तथा जड़ों और पत्तो की क्रिया में पूर्ण समानता है। इसी प्रकार चूहों, ह्वल मछलियों तथा मनुष्यों के दिल, फेफड़े तथा मस्तिष्क की कोषीय संरचना[4] और मूलतः उनकी क्रियाविधि एक-समान ही हैं। पृथ्वी के जन्तुओं में विकास का अनुक्रम तथा उसके परिणाम बहुधा एक-से होते हैं और इस बात से यह स्पष्ट होता है कि जैविक विकास के लिए ऐसा अनुक्रम अनिवार्य है। संभवतः अणुओं तथा परमाणुओं के गुणधर्म ही ऐसे होते हैं कि वर्धमान अणु-संगठनों तथा विकासमान जीवों का विकास किसी विशेषतः निर्दिष्ट दिशा में और विशेषतः निर्दिष्ट प्रकार का ही हो सकता है। इसे हम कार्बनिक अणुओं के गुणों पर आश्रित स्वाभाविक ऋजुजनन[5] की संज्ञा दे सकते हैं। अतः हमारे लिए यह आशा करना स्वाभाविक है कि उक्त अनाम ग्रह पर भी जविक क्रिया ठीक ऐसी ही होती होगी और उसके परिणाम भी ऐसे ही होते होंगे।

पृथ्वी के सामाजिक कीटों[6] ही को लीजिए। वे समांतर विकास का उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। बहुत-से महत्त्वपूर्ण लक्षणों की दृष्टि से कृषि-परायण चींटियां[7] तथा दीमकों की कुछ जातियां एक-समान हैं। शरीर के विस्तार में, जाति-व्यवस्था में, अंडे देने वाली रानी तथा बंध्या श्रमिकों के अस्तित्व में, फफूंद की खेती करने की कला में, रानी के पंख झड़ जाने की क्रिया में, बच्चों के पालन-पोषण की विधि में तथा परजीवियों[8] के प्रति सहनशीलता में इन दोनों

1. Clover 2. Sequoia ३. Stem
4. Cellular Structure 5. (Ortho-genesis
6. Social insects 7. Agricultural ants 8. Parasites

प्रकार के कीटों की पूरी समानता है। ऐसी आश्चर्यजनक समानता होने पर भी चींटियों और दीमकों का कोई घनिष्ठ पारिवारिक सम्बन्ध नहीं है। जाति-इतिहास[1] की दृष्टि से इन दोनों कीटों में उतना ही अधिक अन्तर है जितना कि ह्वेल मछली या चमगादड़ में और मनुष्य में है। किन्तु ऐसा जान पड़ता है कि भौतिकी के मूल नियम तथा भौतिक रासायनिक क्रियाएँ दीमकों और सामाजिक मधुमक्खियों, बर्रों तथा चींटियों की हजारों जातियों के समस्त जटिल संगठनों को बाध्य कर देती है कि वे अपने सुसंगठित समाजों के विकास के लिए लगभग एक ही मार्ग का अनुसरण करें।

यदि भौतिक परिस्थिति ऐसी रहे तो शुद्ध रासायनिक तत्त्वों के संयोजन से बिलकुल एक ही परिणाम निकलेगा—चाहे वह गंध हो, विस्फोटन हो या कोई रंग हो। शायद ऐसी आशा करना उचित ही है कि यदि भौतिक परि-स्थिति लगभग यहाँ-जैसी ही हो तो जल, कार्बन, नाइट्रोजन तथा अन्य पर-माणुओं के मिश्रण पर तारे का प्रकाश पड़ने से सर्वत्र ठीक एक ही प्रकार की संरचना तथा जीवन-क्रिया वाले जन्तु तथा ठीक एक ही प्रकार के प्रसामान्य आचरण वाले पौधे उत्पन्न होंगे, चाहे उनके आकारों में कितनी ही अधिक विभि-न्नता क्यों न हो। यदि हम किसी ऐसे ग्रह में पहुँच जायें जो द्रव्यमान, टेम्परेचर, आयु तथा संरचना की दृष्टि से तत्त्वतः पृथ्वी के ही जैसा हो तो शायद वहाँ के जीव-जन्तु हमें सर्वथा दुर्ज्ञेय तथा विलक्षण न मालूम हों। संभवतः उनकी विल-क्षणता उससे अधिक नहीं मालूम पड़ेगी जितनी कि हमें इसी पृथ्वी पर दिखाई देगी यदि हम कोयला-उत्पादन कार्बोनिफेरस[2] युग में या अब से १५ करोड़ वर्ष पहले के उस युग में पहुँचा दिये जायें जिसमें जल और स्थल पर बृहत् सरीसृपों[3] का आधिपत्य था तथा पक्षियों, स्तनपोषियों[4] और पुष्पी पौधों[5] का विकास नहीं हुआ था।

अतः हमारा यह अनुमान है कि किसी भी अन्य अज्ञात ग्रह के प्राणियों में और पृथ्वी के जीव-जन्तुओं में बहुत अधिक समानता है क्योंकि कार्बन के यौगिकों के कारण ऐसा होना अनिवार्य है। हमारा यह भी अनुमान है कि समस्त अन्वे-षित ब्रह्माण्ड में भौतिक नियम तथा रासायनिक क्रियाएँ बिलकुल एक-समान हैं।

1. Phyllogeny 2. Carboniferous 3. Reptiles
4. Mammals 5. Flowering plants

अध्याय ६

इन्द्रधनुष तथा ब्रह्माण्डीय रसायन

यद्यपि जीवरसायन[1] सम्बन्धी अनेक महत्त्वपूर्ण अनुसंधान हुए हैं जिनमें से कुछ का वर्णन अध्याय ९ में किया जायगा तथापि जीवन के रहस्य[2] का उद्‌घाटन अभी तक पूरी तरह नहीं हो सका है। अभी बहुत-सी बातें ऐसी रह गयी हैं जिनका पता लगाना बाकी है और इनमें से बहुत-सी अत्यन्त कठिन और जटिल हैं। लेकिन पिछले कुछ वर्षों में प्रगति इतनी आश्चर्यजनक हुई है कि अब "रहस्य" के स्थान में "समस्या"[3] शब्द का प्रयोग अधिक उचित जान पड़ता है और अब हम वादविवाद के परम्परागत साधन को छोड़कर जीव-रसायन तथा सूक्ष्म-जीवविज्ञान[4] के प्रखरतर यंत्रों की सहायता ले सकते हैं।

प्रामाणिकता के वर्तमान आदर्श की दृष्टि से प्राचीन दार्शनिक तथा धार्मिक विवेचक जीवन की उत्पत्ति के सम्बन्ध में न तो स्वयं ही संशयहीनता का अनुभव कर सके थे और न दूसरों के ही मन में पूर्ण विश्वास उत्पन्न करने में सफलता प्राप्त कर सके थे। एक शताब्दी पूर्व, धर्मग्रन्थों में प्रतिपादित तर्कों के द्वारा तथा तत्त्व-ज्ञान[5] के शब्द-जाल के द्वारा वे जीव-वैज्ञानिकों के विरुद्ध वाक्-युद्ध करते रहते थे। किन्तु जीव-वैज्ञानिकों के अस्त्र थे प्रेक्षण रूपी भाले जो धार्मिक तथा आध्यात्मिक ढालों को बड़ी आसानी से छेद सकते थे। वस्तुतः जीव-वैज्ञानिकों ने समस्या को अहंकारी मनुष्य की उत्पत्ति के रहस्य से हटाकर समस्त जीवन की उत्पत्ति और उसके स्वरूप के सुस्पष्ट तथा व्यापक प्रश्न के रूप में प्रस्तुत कर दिया। अब इस प्रश्न में बन्दर तथा चूहे, काई अथवा शैवाल तथा बृहत् वट वृक्ष तथा वे सब जीव जो रेंगते, उड़ते, तैरते, और श्वास लेते हैं तथा जिनमें पाचनक्रिया होती है समान रूप से समाविष्ट हो गये हैं। किन्तु

1. Biochemistry 2. Mystery 3. Puzzle
4. Mycro-biology 5. Metaphysics

जब प्राकृतिक नियमों से असंगत विश्वास में कुछ कमी हुई तब दुर्भाग्यवश अनेक वैज्ञानिकों ने अपने मतों के संशोधन में सीमा का उल्लंघन कर दिया और अनुर्वर, यांत्रिकीय तथा ईश्वर-निषेधी दर्शन का आश्रय ले लिया। फलतः यद्यपि इस युद्ध का मुख्य संग्राम समाप्त हो चुका है, युद्ध-विराम संधि भी हो चुकी है तथापि लुके-छिपे अब भी गोली चलती रहती है।

तारे तथा स्वतः पुनर्जनन की क्षमतायुक्त स्थूलाणु[1]

विगत काल का ज्योतिषी जीवन की उत्पत्ति की समस्या के झंझट में अधिक नहीं फँसता था। उसके हाथ, उसकी आँखें और उसका मन निर्जीव पिंडों की ही उत्पत्ति के रहस्य का उद्‌घाटन करने में पूर्णतः व्यस्त रहते थे। धूमकेतु कहाँ से आये ? इस तारा-संकुल आकाशगंगा का घूर्णन कैसे प्रारम्भ हुआ ? सौर परिवार के ग्रहों ने अपने वर्तमान स्थान क्यों ग्रहण किये ? इस ब्रह्माण्ड का जन्म कैसे हुआ ? कब हुआ ? कहाँ हुआ ? और क्यों हुआ ? इस प्रकार के रहस्यपूर्ण प्रश्नों की इतनी अधिक प्रचुरता थी कि मंगल ग्रह के निवासियों के विषय में कुछ तथ्यहीन कल्पनाओं को छोड़कर ज्योतिषी ने कभी जीवोत्पत्ति सम्बन्धी, स्पष्टतः दूरवर्ती, समस्याओं की ओर ध्यान ही नहीं दिया।

किन्तु अब इस स्थिति में परिवर्तन हो गया है। विविध तथा विभिन्न विज्ञान अब इन समस्याओं की ओर प्रवृत्त हो गये हैं। जीव-शरीर की उत्पत्ति की समस्या के अध्ययन में अब इस ग्रह (पृथ्वी) की उत्पत्ति, उसकी आयु तथा विशेषकर उसकी आद्य अवस्था के इतिहास विषयक जिज्ञासाएँ निर्णायक प्रश्न बन गयी हैं। अब तो ऐसा प्रतीत होने लगा है कि ज्योतिषी भी इसमें बहुत कुछ सहायता कर सकता है। पुराजीव-विज्ञान[2] के द्वारा भू-विज्ञानी[3] का तो ऐसे लोगों के साथ सदा से ही सजातीय सम्बंध रहा है जो पार्थिव जीवन के उद्‌भव तथा प्राचीन इतिहास के विषय में अनुसंधान करते रहते हैं। मौसम-विज्ञान के ज्ञाता और विशेषकर पुराकालीन मौसम के विद्यार्थी का भी इसमें हाथ है और उसकी कल्पनाओं की भी आवश्यकता होती है। भौतिकज्ञ, रसायनवेत्ता तथा

1. Self-replicating micromolecules
2. Paleontology
3. Geologist

गणित के ज्ञाता तो द्रव्य, ऊर्जा, तथा विद्युत् से सम्बंधित समस्त प्रश्नों के मूल हैं ही।

स्वतः पुनर्जननशील अणु के अद्भुत रहस्य का उद्घाटन करने या उस दिशा में कुछ वास्तविक प्रगति करने के लिए इन समस्त विशेषज्ञ अनुसंधायकों तथा संभवतः अंधविश्वासी धर्मशास्त्री को छोड़कर लगभग अन्य सभी के कौशल की आवश्यकता होती है।

किन्तु धर्मशास्त्रियों के विरुद्ध यह शंका सर्वथा न्यायसंगत नहीं है। बहुत से धर्मशास्त्री ऐसे भी हैं जिनकी शास्त्र-वचन में श्रद्धा तो है, किन्तु फिर भी वे विज्ञान के ब्रह्माण्ड-सम्बन्धी संदेश का लाभ उठाने में नहीं हिचकते। वे प्रमाणों की बढ़ती हुई प्रबलता के सामने से अशोभन पलायन नहीं करते, किन्तु रचनात्मक सहयोग देना अधिक पसंद करते हैं। इनके सहयोग से वैज्ञानिकों को भी लाभ होता है। विश्वीय नियम में जो कठोरता मालूम होती है वह उनके द्वारा कुछ ढीली हो जाती है।

कुछ धर्मशास्त्री ऐसे हैं जो किसी युग-विशेष के साथ एकीभूत होकर जड़ नहीं बन गये हैं—अश्मीभूत नहीं हो गये। उनके प्रतिनिधि प्राचीन मतों की विश्वसनीयता पर ज्ञान की वृद्धि के प्रभाव को स्वीकार करते हैं। संख्या में अधिक तो नहीं, किन्तु कुछ दार्शनिक ऐसे हैं जो पुनः परीक्षा करते हैं, नया मूल्यांकन करते हैं और प्रगति के मार्ग पर अग्रसर होते हैं। वे प्राचीन ब्रह्माण्ड-विज्ञान का ऐसा संशोधन कर देते हैं कि उसका समन्वय जीव-विज्ञान तथा भौतिकी के सत्यापित तथ्यों के साथ हो जाता है। इसके अतिरिक्त यह आवश्यक नहीं है कि सिद्धान्त का विकास अनिच्छापूर्वक, क्रमशः तथा धीरे-धीरे ही हो। मानव-नियंत्रित परिस्थितियों में, मनुष्य की अपनी तर्कपद्धतिवत्, उपयोगी आकस्मिक उत्परिवर्तनों[1] का स्वागत करना चाहिए और यदि संभव हो तो उन्हें प्रेरणा भी देनी चाहिए, क्योंकि इस जीवित तथा प्रगतिशील संसार में परिवर्तन, वृद्धि तथा विकास की नैसर्गिक क्रियाओं का सर्वत्र ही साम्राज्य है। जैसा किसी ने कहा है "यदि इस संसार में सब कुछ स्थायी होता तो तुझे अपने लिए उपयुक्त अवसर कभी मिल ही न सकता था।"

1. Mutations

विकास का प्रभाव न केवल तारों, नीहारिकाओं तथा ग्रहों की पपड़ी पर और जन्तुओं, पौधों तथा समाजों पर ही पड़ता है, किन्तु मनुष्य के सामाजिक विधानों को, नैतिक नियमों को तथा धार्मिक विश्वासों को भी स्पर्श करता है। क्या यह सम्भव नहीं कि विज्ञान का व्यापक रूप ही मूलतः वह सांस्कृतिक भूमि है जिसमें हम अपने धर्मवृक्षों की स्थापना करते हैं और जिससे उनको शक्ति प्राप्त होती है ? क्या अब भी इस बात की आवश्यकता है कि उनमें से अनेक मरणोन्मुख तथा तर्कहीन बने रहें ?

पृथ्वी-वाह्य जगत के रसायन का उपयोगी विस्तृत विवेचन करने से पहले मुझे यह उचित जान पड़ता है कि यहाँ संसारव्यापी विकास तथा उत्परिवर्तनीयता[1] की सत्यता के पक्ष में एक प्रमुख धर्माध्यक्ष के मत का उद्धरण दे दिया जाय। यह उद्धरण पोप बारहवें पायस[2] के उस भाषण से लिया गया है जो उन्होंने १९५१ में वेतिकन की वैज्ञानिक अकादमी में दिया था।

> "पहले-पहल तो यह देखकर सचमुच ही बड़ा आश्चर्य होता है कि किस प्रकार आकस्मिक उत्-परिवर्तनीयता की सत्यता के ज्ञान का विस्तार विज्ञान की अभिनव उन्नति के साथ-साथ सूक्ष्म-जगत[3] तथा स्थूल-जगत्[4] दोनों ही में उत्तरोत्तर बढ़ता गया है। इससे मानो हिरेक्लिटस[5] के इस सिद्धान्त की नये प्रमाणों से पुष्टि हो गयी है कि "प्रत्येक वस्तु में परिवर्तन हो रहा है"।[6] यह सर्वविदित है कि हमारे नित्यप्रति के अनुभव के अनुसार इस संसार में हमारे निकट भी और हमसे बहुत दूर पर भी असंख्य रूपान्तरण होते रहते हैं—विशेषतः यह कि वस्तुओं में स्थानीय गति होती रहती है।......इससे आगे बढ़कर प्राकृतिक विज्ञान ने यह भी बता दिया है कि यह भौतिक रासायनिक उत्परिवर्तनशीलता केवल पार्थिव वस्तुओं ही तक सीमित नहीं है जैसा कि हमारे पूर्वजों का विश्वास था। यह गुण तो हमारे सौर के तथा बृहत् ब्रह्माण्ड के उन समस्त पिंडों में भी विद्यमान है जिन्हें दूरबीन ने तथा उससे भी अधिक स्पैक्ट्रमदर्शी[7] ने एक ही प्रकार के परमाणुओं के बने हुए प्रमाणित कर दिया है।.....

1. Mutability 2. Pope Pius XII 3. Microcosm
4. Macrocosm 5. Heraclitus 6. Panta rhei
7. Spectroscope

"निर्जीव प्रकृति में भी उत्परिवर्तनशीलता के असंदिग्ध अस्तित्व के प्रमाणित हो जाने पर भी अप्रेक्षित सूक्ष्मजगत् की समस्या तो बनी ही रहती है। वस्तुतः पहले ऐसा मालूम होता था कि जड़ द्रव्य में जीव-जगत् से विपरीत गुण यह है कि वह एक प्रकार से अपरिवर्तनीय होता है। यह सच है कि उसके सूक्ष्मतम कणों में अर्थात् रासायनिक परमाणुओं में अत्यन्त ही विभिन्न प्रकार से परस्पर संयोजिता होने की क्षमता है, किन्तु उनमें अक्षय स्थायित्व तथा अविनाशिता का विशेष गुण भी विद्यमान है क्योंकि प्रत्येक रासायनिक संश्लेषण तथा विश्लेषण की क्रिया के बाद भी वे सर्वथा अपरिवर्तित बने रहते हैं। सौ वर्ष पहले तक, ये परमाणु निरवयव, अविभाज्य तथा अविनाशी समझे जाते थे। भौतिक ऊर्जा तथा संसार की विभिन्न शक्तियों के विषय में भी बिलकुल ऐसी ही धारणा थी और वह, द्रव्य तथा ऊर्जा की अविनाशिता के मौलिक नियमों पर आश्रित थी।...... किन्तु रासायनिक परमाणुओं की आवर्त-सारणी सम्बन्धी ज्ञान की वृद्धि ने, रेडियोऐक्टिव परमाणुओं के कणिकामय विकिरण[1] के आविष्कार ने, तथा इसी प्रकार के अन्य तथ्यों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि सूक्ष्मजगत् के जिस रासायनिक परमाणु का विस्तार एक मिलीमीटर के एक करोड़वें भाग से अधिक बड़ा नहीं है वह भी अनवरत परिवर्तनों का क्रीड़ा-क्षेत्र है।.....

"परमाणु के नाभिक को (नाइट्रोजन परमाणु को) तोड़ने के प्रयत्न में सबसे पहली बार थोड़ी-सी सफलता प्राप्त हुए मुश्किल से तीस वर्ष हुए हैं और पिछले कुछ ही वर्षों में ऐसी अनेक प्रक्रियाओं का आविष्कार संभव हो सका है जिनमें प्रचंड बल के प्रयोग से नाभिकों का विघटन तथा नवीन प्रकार के नाभिकों का उत्पादन हो जाता है। संसार में शांति स्थापित करने में इन प्रयोगों से जो सहायता मिली है उसके कारण अवश्य ही इनकी गणना इस शताब्दी की अत्यन्त गौरवपूर्ण सफलताओं में की जायगी। किन्तु नाभिकीय भौतिकी[2] के व्यावहारिक क्षेत्र में यह केवल पहले कदम मात्र से अधिक नहीं समझी जा सकती। फिर भी हमारे विचार के लिए इसके द्वारा यह महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रस्तुत हुआ है कि यद्यपि साधारण रासाय-

1. Corpuscular radiation 2. Nuclear Physics

निक यौगिकों की तुलना में परमाणु नाभिक वास्तव में बहुत ही अधिक—अनेक गुना अधिक—मजबूत तथा स्थायी होता है, किन्तु—इतना अधिक स्थायित्व होने पर भी—सिद्धान्ततः उस पर भी रूपान्तरण के उन्हीं नियमों का आधिपत्य है और इसलिए वह भी परिवर्तशील होता है।

"इसके साथ ही यह प्रमाणित करना भी संभव हो गया है कि अचल तारों की ऊर्जा सम्बन्धी व्यवस्था में भी इन नाभिकीय प्रक्रियाओं का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। उदाहरण के लिए, बेथे[1] के मतानुसार, हमारे सूर्य के केन्द्रीय प्रदेश में, जहाँ टेम्परेचर दो करोड़ डिग्री तक पहुँच जाता है, एक प्रत्यावर्ती शृंखलित प्रक्रिया[2] ऐसी होती है जिसमें चार हाइड्रोजन नाभिकों का संलयन[3] होकर एक हीलियम के नाभिक का निर्माण हो जाता है। सूर्य की ऊर्जा में विकिरण के द्वारा जितनी कमी होती है उसकी पूर्ति इस प्रक्रिया में उत्पन्न ऊर्जा से होती रहती है।

"यदि कोई वैज्ञानिक अपना ध्यान ब्रह्माण्ड की वर्तमान अवस्था से हटा कर भविष्य की—सुदूर भविष्य की—अवस्था की ओर दे तो उसे अवश्य ही स्वीकार करना पड़ता है कि चाहे सूक्ष्म-जगत् को देखें या स्थूल-जगत को, यह ब्रह्माण्ड धीरे-धीरे बूढ़ा होता जा रहा है। अरबों वर्षों के दीर्घ-काल में परमाणु-नाभिकों की अक्षय दिखाई देने वाली संख्या की उपयोगी ऊर्जा का भी ह्रास हो रहा है। अर्थात् द्रव्य भी, निर्वापित अथवा बुझे हुए ज्वालामुखी पर्वत तथा उसके ठंडे पड़े हुए लावा के समान होता जा रहा है। इससे स्वतः ही हमारे मन में यह विचार उत्पन्न होता है कि यदि जीवन तथा व्यवस्था से पूर्ण वर्तमान ब्रह्माण्ड भी अपनी व्याख्या प्रस्तुत करने के लिए हमारे प्रेक्षणों के अनुसार अपर्याप्त प्रमाणित हुआ है तो जब इस पर मृत्यु की छाया अपने विशिष्ट रूप में फैल जायगी तब तो इस समस्या की व्याख्या प्राप्त कर सकने की कोई तर्कसंगत संभावना रह ही न जायगी।

"यदि हम इस ब्रह्मांड के प्रसरण के वेग को ध्यान में रखकर भूतकाल पर दृष्टि डालें तो यह परिणाम निकलेगा कि अब से एक और दस अरब वर्षों के बीच के किसी समय में जब विश्वीय क्रियाओं का प्रारम्भ हुआ

1. Bethe 2. Chain reaction 3. Fusion

था तब समस्त सर्पिल नीहारिकाओं[१] का द्रव्य अपेक्षाकृत बहुत छोटे-से आयतन में सीमित था।

"आदिकाल के रेडियोएक्टिव पदार्थों की आयु के द्वारा पृथ्वी की ठोस पपड़ी की आयु का अनुमान लगाने के लिए आवश्यक सामग्री यूरेनियम के २३८ के परमाणुभारवाले समस्थानिक[२] का सीसे के समस्थानिक (Ra-G) में, तथा २३५परमाणुभार वाले समस्थानिक का ऐक्टिनियम-डी (Ac-D) में और थोरियम के २३२ परमाणु-भार वाले समस्थानिक का थोरियम-डी (Th-D) में होनेवाले तत्त्वान्तरण सम्बन्धी सन्निकट तथ्यों से ली जाती है। इन क्रियाओं में जितना हीलियम उत्पन्न होता है उसके द्रव्यमान से इस अनुमान की पुष्टि का काम लिया जा सकता है। इस विधि से यह परिणाम निकला है कि प्राचीनतम खनिजों की औसत आयु अधिक से अधिक पाँच अरब वर्ष है।...... विविध प्राकृतिक विज्ञानों के जिन प्रासंगिक तथ्यों का हमने उल्लेख किया है उनके पुष्टीकरण की तथा उनके सम्बन्ध में अनुसंधान की अभी और आवश्यकता है और उन पर आधारित सिद्धान्तों के और भी अधिक विकास की तथा उनके पक्ष में और भी अच्छे प्रमाणों की भी जरूरत है। तब ही ये तथ्य उन विचार-धाराओं के लिए पक्की नींव का काम दे सकेंगे जो स्वयं इनकी सहायता के बिना प्राकृतिक विज्ञान की वास्तविक परिधि में समाविष्ट नहीं हो सकतीं। यह सब होते हुए भी यह बात ध्यान देने योग्य है कि इन विषयों के आधुनिक विद्वान् इस ब्रह्माण्ड की सृष्टि[3] की धारणा को वैज्ञानिक विचार-धारा से सर्वथा संगत समझते हैं। वस्तुतः आधुनिक वैज्ञानिक अनुसंधान स्वतः ही उन्हें इसी परिणाम पर पहुँचा देता है। कुछ ही दशाब्दियों पहले इस प्रकार की किसी भी परिकल्पना को विज्ञान की वर्तमान स्थिति के सर्वथा प्रतिकूल बताकर अमान्य ठहरा दिया जाता था।"

ब्राह्मण्डीय रसायन[४] तथा जासूस के रूप में ज्योतिषी

नाभिकीय भौतिकी[५] पृथ्वी की आयु तथा इनसे सम्बन्धित अन्य विषयों

1. Spiral nebulae 2. Isotope 3. Creation
4. Cosmo Chemistry 5. Nuclear physics

पर उपर्युक्त विचार व्यक्त करने के पश्चात् हम पुनः अपने उस वक्तव्य पर लौटना चाहते हैं जिसमें हमने कहा था कि जीवन की तथाकथित रहस्य सम्बन्धी प्राविधिक कार्यवाही में अनेक विभिन्न प्रकार के वैज्ञानिक अध्ययनों का समावेश है। ज्योतिषी इस कार्य में दो प्रकार से सहायता करता है। एक तो वह पार्थिव शिलाओं की आयु के तथा पुराकालीन सहस्राब्दियों में पृथ्वी-पृष्ठ के टेम्परेचर की सम्भाव्य अवस्था के सम्बन्ध में सूचनाएँ दे सकता है और तर्कसंगत अनुमान प्रस्तुत कर सकता है। दूसरे वह पार्थिव जीव-जन्तुओं से आगे बढ़कर अन्य आकाशीय पिंडों में जीव-रासायनिक विकास के विस्तार-विषयक अध्ययन का प्रयास कर सकता है। बृहत् ब्रह्माण्डीय आकाश में लाखों-करोड़ों जीवनोपयुक्त ग्रहों के अस्तित्व का समर्थन करने वाले तर्क हम पहले ही प्रस्तुत कर चुके हैं। अब प्रश्न यह है कि इन निवास-योग्य ग्रहों में सचमुच ही जीवों के विद्यमान होने की संभावना कितनी है। हम यह नहीं कहते कि वहाँ जीवन का स्वरूप किसी विशेष प्रकार का ही होना चाहिए। वह चाहे उसी प्रकार का हो, जैसा कि पृथ्वी पर है, चाहे मूलतः सर्वथा भिन्न प्रकार का हो। यह विभिन्नता ऑक्सिजन की कमी, या हाइड्रोजन की बहुलता तथा वायुमंडलीय दाब की अत्यधिक उच्चता या निम्नता के कारण हो सकती है अथवा अन्य प्रकार की ऐसी परिस्थिति के कारण भी हो सकती है जिसके प्रभाव से जैव-रासायनिक विकास ने पृथ्वी की अपेक्षा सर्वथा भिन्न दिशा का अनुसरण किया हो।

यह बहुत ही आश्चर्य की बात है कि यद्यपि मनुष्य के प्रेक्षण के लिए इस ब्रह्माण्ड का बहुत ही छोटा-सा नमूना उपलब्ध है तथापि वह यहीं बैठे-बैठे अपने तर्क की सहायता से बहुत बड़ी कल्पनाएँ कर सकता है और समस्त ब्रह्माण्ड के रसायन का विवेचन कर सकता है। रासायनिक विश्लेषण हम केवल उन्हीं चीजों का कर सकते हैं जिन्हें हम अपने हाथों में ले सकते हैं। इस पृथ्वी में जल, वायु तथा शैल (मुख्यतः शैल) का भार साठ अरब खरब (६×१०^{२१}) टन है। सूर्य में जितना द्रव्य है उसकी तुलना में यह राशि अत्यन्त क्षुद्र है। पृथ्वी की अपेक्षा सूर्य में तीन लाख तीस हजार गुना अधिक द्रव्य है। और ब्रह्माण्ड में सूर्य के जैसे तारों की संख्या एक अरब खरब ($१०^{२०}$) से भी अधिक है। इसके अतिरिक्त पृथ्वी की प्रस्तरमय पपड़ी के केवल अत्यन्त छोटे-से अंश की ही रासायनिक परीक्षा हम वास्तव में कर सकते हैं। समुद्रों का तथा वायुमंडल के निचले भाग का अवश्य ही हमें अच्छा ज्ञान है। किन्तु इतने विशाल बहिर्वे-

शन[१] के लिए इस नमूने का परिमाण कितना छोटा है !

इसमें सन्देह नहीं कि हमारे पास थोड़ा-सा अपार्थिव द्रव्य भी है जो पृथ्वी पर पड़ने वाली उल्काओं[२] से प्राप्त हुआ है। पृथ्वी के द्रव्यमान में इसके कारण कोई विशेष वृद्धि नहीं हुई है तथा इस द्रव्य के द्वारा हमें कोई भी ऐसी बात नहीं मालूम हुई जो पहले से हमें ज्ञात न थी। उन उल्का-खंडों के रासायनिक विश्लेषण से प्रगट होता है कि संभवतः सूर्य के अंतरंग में अथवा उसके निकटवर्ती आकाश में कोई भी नये प्रकार का द्रव्य नहीं है—एक भी रासायनिक तत्त्व ऐसा नहीं है जो पृथ्वीतल पर या सूर्य के वातावरण में न पाया गया हो। इन उल्कापिंडों में कुछ खनिजों के रासायनिक संघटन उन संघटनों से भिन्न हैं जो पृथ्वी पर पाये जाते हैं। किन्तु वास्तव में हम पृथ्वी में उतनी गहराई तक पहुँच भी तो नहीं सके जहाँ दवाव वहुत अधिक और विभिन्न तत्त्वों का पारस्परिक अनुपात पृष्ठीय प्रदेशों से भिन्न है। यह संभव है कि ये वड़े-वड़े उल्कापिंड किसी ऐसे ग्रह के अन्तरंग भाग से आये हों जो किसी प्राचीन काल में टूट कर खंड-खंड हो गया था।

अन्तरिक्ष-किरणों के न्यूक्लियान[३] या नाभिकीय कणिकाएँ—मुख्यतः प्रोटान—बाह्य आकाश से आकर हमारे वायुमंडल के ऊपर के भाग से टकराते हैं और उनमें से कुछ विलकुल नीचे तक भी पहुँच जाते हैं। तारों का द्रव्यमान-वाही प्रकाश तथा कुछ रेडियो-तरंगें तो वाह्य आकाश से पृथ्वी के पृष्ठ तक पहुँचती ही हैं। किन्तु प्रयोगशाला में विश्लेषण करने योग्य वाह्य सूचनाएँ केवल उल्कापिंडों के ही द्वारा प्राप्त होती हैं। मंगल अथवा वृहस्पति ग्रहों से हमें अभी तक कोई नमूने नहीं मिल सके हैं और न निकटवर्ती चन्द्रमा से ही हमें कोई पत्थर प्राप्त हुआ है। अभी तो स्थिति ऐसी मालूम होती है कि जिस ब्रह्माण्ड के विषय में ज्ञान प्राप्त करने के लिए मनुष्य उत्सुक है उससे सम्पर्क जिज्ञासुओं के लिए कठोरता पूर्वक वर्जित है और उसे उससे लगभग विलकुल पृथक् कर दिया गया है। चन्द्रमासक्त पतिंगों[४] तथा सूर्य-पोषित पौवों की और उन सब जन्तुओं की जिन्हें हम जिज्ञासा में न सही, किन्तु बुद्धि में ही मनुष्य से नीची

1. Extra polaion　　2. Meteors　　3. Nucleon
4. Moths

श्रेणी का समझते हैं, यह सम्पर्कहीनता अवश्य ही बिलकुल पूरी है। वे सब पृथ्वी-निबद्ध हैं। किन्तु मुष्य इस सम्पर्क हीनता के विरुद्ध निरंतर युद्ध करता रहता है। तारों तथा अन्य ग्रहों से मानव जाति का बहुत कुछ नैराश्यपूर्ण यह पार्थक्य प्रायः एक शताब्दी पूर्व तक तो अक्षुण्ण ही रहा। किन्तु तव रसायनविज्ञान आकाश में जा पहुँचा और सहसा मनुष्य का भौतिक सम्पर्क सूर्य से तथा तारों और ज्वलंत नाहारकाओं से हो गया। अब उसे अपनी विलगता के विषय में चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं रही। अन्तरतारकीय दूर के कारण अनंत विस्तीर्ण आकाश के रसायन का ज्ञान प्राप्त करने में अब कोई दुर्लंघ्य बाधा नहीं रह गयी है।

इन्द्र-धनुष तथा तारों के स्पैक्ट्रम

इन्द्र-धनुष अपने विचित्र वर्ण-विन्यास के कारण और मेघ, वर्षा तथा जल-प्रपातों और फव्वारों के कुहासे से सम्बद्ध होने के कारण युग-युगान्तर से अत्यन्त सुन्दर, रहस्यमय और चमत्कारी समझा जाता रहा है। निआस[1] के आदिवासी "इन्द्र-धनुष को देखकर डर के मारे काँपने लगते हैं क्योंकि उनका विश्वास है कि यह उनकी छाया को पकड़ने के लिए किसी शक्तिशाली दानव का बिछाया हुआ जाल है।"[2] बाइबिल के अनुसार पूर्वकालीन यहूदियों की दृष्टि में यह संसारव्यापी प्रलयंकर जलप्लाव के पुनरागमन के विरुद्ध ईश्वरीय प्रतिज्ञा का द्योतक था। किन्तु ब्रह्माण्ड की रचना के सम्बन्ध में इसका अभिप्राय अधिक गहरा है और इसके द्वारा अधिक संशयहीन तथ्य का पता लगता है। यह ऐसा सूत्र है जिससे प्रकाश के संमिश्र स्वरूप[3] का परिचय मिलता है, किन्तु जिसका अनुसरण हाल की शताब्दियों से पूर्व नहीं किया गया था।

तारों के प्रकाश के विश्लेषण में ज्योतिषियों द्वारा प्रयुक्त होने से बहुत पहले ही यह बात भली-भाँति ज्ञात हो गयी थी कि इन्द्र-धनुष के रंगों का कारण

1. Nias
२. सर जेम्स जार्ज फ्रेजर की पुस्तक "Taboo and the Perils of the Soul" (लन्दन—१९३६)—पृष्ठ ७९
3. Composite nature

यह है कि जल की बूंदों के द्वारा प्रकाश का वर्तन[१] होता है और उसकी किरणों का विचलन[२] तरंग-दैर्ध्य के अनुरूप विभिन्न परिमाणों का होता है। किन्तु इसका सही तथा सर्वांगपूर्ण सिद्धान्त जिससे यह ज्ञात हो जाता है कि इन्द्र-धनुष में सूर्य का ही स्पैक्ट्रम दिखाई देता है बहुत जल्दी और आसानी से ज्ञात नहीं हो सका था। अरस्तू तथा सेनेका की समझ में यह बात नहीं आयी थी। तेरहवीं शताब्दी में आक्सफोर्ड के ग्रोसटेस्ट[३] और सिलीशिया के विटेलो[४] ही सही बात को--वर्षा की बूंद के वर्तन की बात को--पकड़ पाये थे। इसके बाद फाइबर्ग[५] के निवासी थियोडोरिक[६] को वर्तन तथा परावर्तन[७] के विभिन्न प्रकार के सम्मेलनों द्वारा प्राथमिक[८] तथा द्वैतीयिक[९] इन्द्र-धनुषों की व्याख्या प्रस्तुत करने में सफलता मिली। इसके पश्चात् इस जटिल सिद्धान्त का संशोधन और सुधार अनेक व्यक्तियों ने किया जिनमें निम्नलिखित विख्यात वैज्ञानिकों के नाम प्रमुख हैं—देकार्ते[१०] एडमंड हेली[११] न्यूटन[१२] टॉमस यंग[१३] तथा इंग्लैण्ड के राज-ज्योतिषी सर जॉर्ज बी० एअरी[१४] जिन्होंने १८३८ में कोई भी ऐसी बात नहीं छोड़ी जिसकी समुचित व्याख्या न की गयी हो। किन्तु यह स्मरण रहे कि यद्यपि इन्द्र-धनुष का जनक सूर्य है तथापि यह मौसमी घटना पृथ्वी-निबद्ध ही है। इस समय तारों की प्रकाश में हमारी अभिरुचि ब्रह्माण्डीय रसायन सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करने में सहायता लेने के लिए ही है।

सन् १६६६ में सर आइज़ेक न्यूटन ने एक प्रयोग किया था जिसमें सूर्य की किरणों को एक छोटे-से सूराख में से अंधेरे कमरे में प्रविष्ट कराके काँच के एक प्रिज्म[१५] पर डाला गया था। इससे यह प्रमाणित हुआ कि सूर्य की प्रकाश-किरण में समस्त रंगों का मिश्रण है और विभिन्न रंगों के प्रकाश की वर्तनीयता[१६] भिन्न-भिन्न हैं अर्थात् विभिन्न रंगों की किरणें प्रिज्म के द्वारा भिन्न-भिन्न परिमाण में मुड़ती हैं। किन्तु सूर्य के इस स्पैक्ट्रम अर्थात् वर्णक्रम की शक्ति का पूरा-

1. Refraction 2. Deviation 3. Grosseteste
4. Witelo 5. Freiberg 6. Theodoric
7. Reflection 8. Primary 9. Secondary
10. Descartes 11. Edmund Halley 12. Newton
13. Thomas Young 14. Sir George B. Airy
15. Prism 16. Refrangibility

पूरा ज्ञान तब तक नहीं हो सका जब तक कि लन्दन के वोलैस्टन[१] ने और जर्मन वैज्ञानिक फ्रानहोफर[२] ने इस संतत[३] स्पैक्ट्रम के रंगों के बीच-बीच में अनेक विच्छेदों को देख नहीं लिया और उनके कारण का ठीक-ठीक पता नहीं लगा लिया। शीघ्र ही इन विच्छेदों का परिचय काली रेखाओं और अवशोषण रेखाओं के रूप में हुआ और यह ज्ञात हो गया कि इनके द्वारा पता चल सकता है कि सूर्य के वातावरण में कौन-कौन-से परमाणु विद्यमान हैं। इन्हीं वैज्ञानिकों और उनके अनुयायियों ने एक शताब्दी पूर्व आज के उर्वर स्पैक्ट्रमदर्शी युग की स्थापना की थी। प्रयोगशाला में प्रकाश के विश्लेषण से पता चला है कि जब सोडियम, गंधक, कैलशियम अथवा लोहा-जैसा कोई भी पदार्थ गरम करके उत्तेजित कर दिया जाता है तो उसमें से खास-खास तरंग-दैर्ध्यों के चमकदार लाक्षणिक विकिरण उत्पन्न होते हैं और ये स्पैक्ट्रम में विशिष्ट स्थानों पर प्रगट होते हैं।

सूर्य के स्पैक्ट्रम में ये विशेषतः व्यवस्थित विकिरण लाक्षणिक अवशोषण रेखाओं का रूप ले लेते हैं। इसका अर्थ यह है कि सूर्य के बाह्य वातावरण में उपस्थित विभिन्न प्रकार के परमाणु सूर्य के स्पैक्ट्रम के समस्त तरंग-दैर्ध्यों में से अपनी-अपनी लाक्षणिक तरंगों को रोक लेते हैं अर्थात् उनका अवशोषण कर लेते हैं। किसी भी तत्त्व के परमाणु प्रकाश के जिन तरंग-दैर्ध्यों का स्वयं विकिरण कर सकते हैं उन्हीं तरंग-दैर्ध्यों का अवशोषण भी करते हैं। जिस विकिरण की संतत पृष्ठभूमि में से यह अवशोषण होता है वह सूर्य के उत्तप्त अन्तरंग में से आता है।

यद्यपि प्रारम्भ से ही स्पैक्ट्रमदर्शियों[४] के द्वारा इस बात के प्रमाण उत्तरोत्तर अधिकाधिक मिलते जा रहे थे कि सूर्य के स्पैक्ट्रम की रेखाएँ सूर्य के वातावरण के रासायनिक संघटन की द्योतक हैं तथापि यूरोप के एक प्रख्यात विद्वान् ऑगस्ट कॉम्ट[५] ने प्रायः सवा सौ वर्ष पहले कहा कि हम तारों के रसायन का ज्ञान कभी भी प्राप्त नहीं कर सकेंगे। किन्तु इसके थोड़े ही दशकों के बाद सर विलियम हगिन्स[६] ने इंग्लैंड में और फादर सेकी[७] ने रोम में तथा अन्य कई विद्वानों ने अधिक कांतिमान् तारों के रासायनिक संघटन का विवरण देना प्रारंभ कर दिया

1. Wollaston
2. Fraunhofer
3. Continuous
4. Spectroscopes
5. August Comte
6. Sir William Huggins
7. Father Secchi

और जब ज्योतिषी के औजारों में फोटोग्राफी के प्लेट का प्रादुर्भाव तारों के प्रकाश के यथातथ अभिलेखक के रूप में हुआ तब तो रासायनिक संघटन के आधार पर तारों के—तीव्र ज्योति वाले और मंदज्योति वाले तारों के भी—वर्गीकरण का कार्य बढ़कर बहुत विस्तृत तथा महत्त्वपूर्ण हो गया। इस शताब्दी के प्रारम्भ में यह कार्य मुख्यतः हार्वर्ड की वेधशाला[१] में एन्टोनिया मॉरी[२] तथा ऐनी ज० कैनन[३] के हाथों में ही केन्द्रित था। कैलिफोर्निया की लिक वेधशाला[४] से, जर्मनी के पॉट्सडैम[५] से, रूस की पूलकोवा[६] वेधशाला और रोम की वैटिकन वेधशाला[७] से भी महत्त्वपूर्ण तथा विशिष्ट योगदान प्राप्त हो रहा था। दार्शनिक कॉम्ट की आशंका के विपरीत पृथ्वी-बाह्य रसायन की प्रतिबंधक दीवारें टूटकर गिर गयीं। यह आश्चर्यजनक परिणाम इस उपदेश का बहुत अच्छा उदाहरण है कि अमुक बात कभी हो ही नहीं सकती। ऐसा विश्वास करना और कहना किसी भी मनुष्य की बुद्धि तथा कल्पना शक्ति की प्रतिष्ठा के लिए हितकर नहीं है।

सर्वत्र वही रसायन तथा वही भौतिकी

स्पैक्ट्रम विश्लेषण द्वारा उपलब्ध तारों के रसायन के सम्बन्ध में कुछ बातें बता देना परमाणुओं की स्थिति-निर्धारण में हमारे लिए बहुत सहायक होगा। संभव है कि कुछ पाठकों के लिए इस विवेचन की भाषा बहुत प्राविधिक होने के कारण सुगम न हो। वे चाहें तो इस अनुच्छेद को छोड़ दे सकते हैं। इस अध्याय के अंतिम वाक्य में समस्त प्रमुख परिणाम संक्षेप में लिख दिये गये हैं।

(१) प्रकाश के विश्लेषण से तारे के केवल पृष्ठ-मात्र का ही प्रत्यक्षतः अध्ययन किया जा सकता है। किन्तु तारा-भौतिकी के सिद्धान्त तथा गणित का "बरमा" इस पृष्ठ को छेदकर साहसपूर्वक तारे के उस पार नीचे तक पहुँच सकते हैं और वहां बहुत गहराई में जो रासायनिक संघटन विद्यमान है उससे भी हमें अवगत करा सकते हैं। तब हम समझ सकेंगे कि तारे के पृष्ठीय स्पैक्ट्रम के प्रेक्षित स्वरूप का तथा उसकी सम्पूर्ण प्रेक्षित ज्योति का कारण क्या है।

1. Harvard Odservrtory
2. Anronia Maury
3. Annie J. Cannon
4. Lick Observatory
5. Potsdam
6. Poulkova
7. Vatican observatory

(२) कुमारी कैनन के वर्गीकरण में समस्त तारे पृष्ठीय टेम्परेचर के क्रमानुसार साठ विभिन्न वर्गों तथा उपवर्गों में विभाजित कर दिये गये हैं। टेम्परेचर द्वारा विभिन्न स्पैक्ट्रमीय रेखाओं की उपस्थिति तथा अनुपस्थिति निर्धारित होती है और टेम्परेचर पर ही तारे का रंग भी निर्भर होता है। आर्द्रा के शीतल, लाल, दानव तारे के स्पैक्ट्रम में अवशोषण रेखाओं की संख्या प्रचुर है। पीताभ ध्रुवतारे के स्पैक्ट्रम में इनकी संख्या बहुत कम है। किन्तु कालपुरुष या मृगशीर्ष के द्वितीय तारे नीलाभ राइगल[1] का पृष्ठदेश इतना अधिक उत्तप्त है कि उसके स्पैक्ट्रम में मुख्यतः केवल हाइड्रोजन और हीलियम की अवशोषण-रेखाएँ ही दिखाई देता हैं। अमेरिका तथा स्वीडन के अधिक आधुनिक अध्ययन ने तारों के उपवर्गों की संख्या को और भी बढ़ा दिया है और कुमारी कैनन के, टेम्परेचर पर आधारित, वर्गीकरण में एक उपवर्गीकरण और जोड़ दिया है जो तारे की नैज ज्योति[2] अथवा कैन्डल-शक्ति[3] पर आधारित है। इससे तारकीय स्पैक्ट्रमों के विवरण के लिए एक प्रकार को द्वितीय विमिति[4] प्राप्त हो गयी है। अनेक प्रकार के तारों की कैन्डल-शक्ति का और उसके पश्चात् उनकी दूरी का अनुमान करने में यह उप-वर्गीकरण बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है।

(३) कुमारी कैनन की तारा-सारणी[5] में से एक बड़े प्रतिदर्श का अध्ययन करने से पता चलता है कि लगभग बीस प्रतिशत तारे स्पैक्ट्रमीय दृष्टि से हमारे सूर्य के ही वर्ग के हैं। अतः हमारे पड़ोसी तारों में से चालीस सहस्र से भी अधिक तारे रंग में तथा पृष्ठीय रसायन में सूर्य से मिलते-जुलते हुए ही हैं। संभवतः पूरी आकाशगंगा में तथा अन्य समस्त नीहारिकाओं में भी ऐसे तारों का औसत अनुपात इतना ही है। किन्तु इन नीहारिकाओं की सर्पिल भुजाओं की अपेक्षा इनके केन्द्रीय भागों में सूर्य-सम तारों की प्रतिशतता अधिक ऊंची है।

(४) पूरी नीहारिकाओं के स्पैक्ट्रमों के स्पष्ट फोटो प्राप्त करने का काम कठिन है। किन्तु अब तक इनका जितना अध्ययन किया जा चुका है उससे प्रगट होता है कि ये ठीक स्पैक्ट्रम वैसे ही हैं जैसों की हम आशा कर सकते थे

1. Rigel or β Orionis
2. Intrinsic luminosity
3. Candle power
4. Second dimension
5. Catalouge of Stars

अर्थात् वे समस्त स्पैक्ट्रमीय वर्गों के सम्मिश्रण हैं। वस्तुतः वे बहुत कुछ सूर्य के ही स्पैक्ट्रम के सदृश हैं जो उष्णतम B-वर्ग तथा शीतलतम M-वर्ग के मध्यवर्ती Go-वर्ग का तारा है।

(५) अब तो अति दूरवर्ती नीहारिकाओं में विद्यमान कई अकेले तारों के स्पैक्ट्रम भी प्राप्त कर लिये गये हैं। ये बिलकुल वैसे ही हैं जैसे कि हमारी आकाश गंगा के तारों के होते हैं। इससे इस बात की पुनः पुष्टि हो जाती है कि हमारे अनुसंधानित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में रसायन सर्वत्र एक ही प्रकार का है। आकाश-गंगा से बाहर की निकटतम नीहारिका में अर्थात् मैगेलनीय तारामेघ[1] में सैकड़ों तारों के स्पैक्ट्रमों के फोटो ले लिये गये हैं। ये सब हमारे पूर्व-परिचित के ही स्पैक्ट्रम हैं। मैगेलनीय तारामेघ में जितने भी वर्गों के तारे तथा नीहारिकसम ज्योतियां पायी गयी हैं उन सबके प्रतिरूप हमारी आकाश-गंगा में भी विद्यमान हैं।

(६) इन दोनों निकटतम नीहारिकाओं में जिनकी आकृतियां नियमानुकूल नहीं हैं अर्थात् जो न तो सममिति पूर्वक सर्पिल[2] ही हैं, न सुचिक्कण गोलाभ[3] ही, लगभग सभी प्रकार के परिचित चरकांति[4] तारे पाये गये हैं जो विकास की प्रक्रियाओं के प्राकृतिक निदर्शक हैं। उनके स्पैक्ट्रमीय वर्गों का परास रक्ताभ M तथा N (दीर्घकालिक चरकांति) से प्रारम्भ करके, पीताभ K, G तथा F (प्रतिष्ठित सीफ़ाइड)[5] में होकर उत्तप्त A तथा B तक विस्तृत है।

(७) इन्हीं परिवर्ती तारों में ग्रहणकारी युग्मतारे[6] भी हैं जो अधिकतर स्पैक्ट्रमीय वर्ग B के होते हैं। ऐसे युग्मों का विश्लेषण उनकी ज्योति के परिवर्तन का अध्ययन करके बहुत कुछ उसी प्रकार किया जा सकता है जिस प्रकार हम अपनी आकाश-गंगा के विख्यात ग्रहणकारी तारे अलगूल[7] के विशिष्ट लक्षणों का पता लगाते हैं। उनके द्रव्यमानों, उनकी आपेक्षिक गतियों, उनके टेम्परेचरों, घनत्वों तथा विस्तारों के परिमाण मालूम किये जा सकते हैं। इससे हमें ज्ञात हो जाता है कि हमारे यहाँ की तरह ही अन्य नीहारिकाओं में भी खगोलयांत्रिकी[8] के, गुरुत्वाकर्षण के तथा विकिरण के ठीक वही नियम काम करते हैं। संक्षेप में यों कह सकते हैं कि उन सब नीहारिकाओं में भी भौतिकी के नियम

1. Magellanic Cloud 2. Spiral 3. Spheroidal
4. Variable in light 5. Classical Cephieds
6. Eclipsing binaries 7. Algol 8. Celestial mechanics

वही हैं जो यहाँ हैं। अतः हम इस व्यापक निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि जितने ब्रह्माण्ड का अन्वेषण हम कर सकते हैं उसमें सर्वत्र भौतिकी और रसायन के नियम का सामान्य हैं।

(८) अन्त में, इस बहुरंगी इन्द्र-धनुष द्वारा प्राप्त ज्ञान के विवेचन में एक अन्य प्राचीन प्रक्षण की ओर भी ध्यान आकर्षित करना उचित है जो अब हमें इतना चकित नहीं करता जितना वह हमारे पूर्वजों को करता था। एतद्विषयक ज्ञान में जो स्पष्टता अब आयी है वह भी स्पेक्ट्रमीय विश्लेषण का परिणाम है। मेरा संकेत कालपुरुष तारामंडल अथवा मृग के खंग[1] और उसके अस्फुट केन्द्रीय तारे की ओर है। स्पेक्ट्रमदर्शी ने "ओरायन के बंधनों को खोल देने में" सफलता प्राप्त कर ली है। जिस रहस्य का भेद जॉब को मालूम न हो सका था उसका इसने उद्घाटन कर दिया है और यह प्रमाणित कर दिया है कि यह ओरायन नीहारिका ऑक्सिजन, हाइड्रोजन, कार्बन और नाइट्रोजन की संहति है जो पड़ोस के अति उत्तप्त तारों के द्वारा उत्तेजित होकर विकिरण का उत्सर्जन करने लगी है।

(९) सच तो यह है कि स्पेक्ट्रमदर्शी ने हमें यह बता दिया है कि तारे जिस गैसीय द्रव्य से बने हैं वह अन्तर-तारकीय आकाश में बहुत दूर-दूर तक फैला हुआ है। इस विवेचन में जो बात इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है वह यह है कि ऐसा प्रदीप्त नीहारिका-द्रव्य मैगलनीय तारामेघ में तथा देवयानी नीहारिका[2] में और वस्तुतः समस्त ब्रह्माण्ड में विद्यमान है। यह आविष्करण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इससे प्रगट होता है कि इस ब्रह्माण्ड के निर्माण का काम अभी पूरा नहीं हुआ है और शायद कभी भी पूरा नहीं हो सकेगा। इससे ऐसा अनुमान होता है कि गैसों, खगोलीय गतियों तथा प्रकाश-संचरण के जिन नियमों का हमें काफी अच्छा ज्ञान है, उन्हीं के अनुसार इस समय भी नीहारिकाओं, तारों और संभवतः ग्रहों का भी निर्माण होता जा रहा है।

बाह्य आकाश से रेडियो-संकेतों का आगमन

स्पैक्ट्रम के द्वारा मनुष्य के स्थिति-निर्धारण सम्बन्धी इस अध्याय के अन्त में यह बता देना उचित है कि इस क्षेत्र में अब रेडियो दूरबीनों ने भी अलौकिक

1. Sword of Orion 2. Andromeda.

ढंग से प्रवेश किया है। यहां मैंने "अलौकिक" शब्द का प्रयोग शिथिलतापूर्वक किया है, क्योंकि प्रचलित अलौकिकता में प्रकृति-विरुद्धता का भाव निहित है और यह हमें मान्य नहीं हो सकता। इन दूरबीनों का विकास अभी हाल में ही हुआ है और इनमें एक सेन्टीमीटर से लेकर तीस मीटर तक की और इससे भी अधिक तरंग-दैर्घ्य वाली तरंगों का उपयोग किया जाता है। रेडियो-तरंगों के इन बहुत बड़े-बड़े संग्राहियों के द्वारा ब्रह्माण्ड के समस्त प्रदेशों में—हमारी अपनी आकाश-गंगा की निकटवर्ती सर्पिल भुजाओं से लेकर दस करोड़ प्रकाश-वर्ष की दूरी पर स्थित नीहारिका-समूहों तक सर्वत्र ही—ऐसी क्षीण रेडियो-तरंगों का पता लगा है जो शीतल अन्तरतारकीय तथा अन्तरनीहारिकीय हाइड्रोजन परमाणुओं में से आती हैं। इन तरंगों की, जिनकी लम्बाई एक शृंग[1] से दूसरे शृंग तक आठ इंच होती है, प्रागुक्ति सबसे पहले परमाणु-संरचना के सिद्धान्त से हुई थी और इसके पश्चात् हमारी आकाश-गंगा में उनके अस्तित्व का पता प्रेक्षण द्वारा भी लग गया। इसके बाद तो ऑस्ट्रेलिया, हॉलैंड तथा अमेरिका के रेडियो- ज्योतिषी तथा इलेक्ट्रानिक इंजीनियर इनके पीछे दौड़ पड़े। इस रेडियो-ज्योतिष विधि द्वारा सम्पन्न कुछ ऐसे आधुनिक आविष्कारों का वर्णन नीचे दिया जाता है जिनका सम्बन्ध ब्रह्माण्ड की रचना से है।

(१) मैगेलनीय तारा-मेघ के सम्बन्ध में यह पता चला है कि वह अनाविष्ट हाइड्रोजन के अल्प घनत्व वाले माध्यम में निविष्ट है अर्थात् वहाँ की हाइड्रोजन के परमाणुओं पर कोई वैद्युत चार्ज (charge) नहीं है। इसके विपरीत ओरायन नीहारिका जिस हाइड्रोजन के द्वारा प्रदीप्त है उसके परमाणु आयनित अर्थात्[2] धनविद्युत् से आविष्ट हैं।

(२) हमारी आकाश-गंगा की सर्पिल भुजाओं का पता इस बात से लगा है कि उनमें अनाविष्ट हाइड्रोजन की अधिकता है।

(३) ब्रह्माण्ड की प्रसरणशीलता की पुष्टि दृश्यप्रकाश की तरंगों से पाँच लाख गुनी लंबी रेडियो-तरंगों के द्वारा भी हो गयी है। सबसे पहले इसका पता दृश्य प्रकाश की स्पैक्ट्रमीय रेखाओं के रक्तोन्मुखी विस्थापन[3] के आविष्कार से चला था तथा उसके परिणाम इस विस्थापन को नापकर मालूम किया गया

1. Crest 2. Ionised 3. Red Shift

था। अब उपर्युक्त रेडियो-तरंगों में भी वैसा ही विस्थापन देख लिया गया है और उसे नाप भी लिया गया है।

(४) विकासोन्मुख तारों की रचना में एक अवयव अन्तरतारकीय आकाश में पूंजीभूत धूल भी है। इस धूल के अस्तित्व की पुष्टि इस बात से हुई है कि रेडार[1] द्वारा पृथ्वी के वायुमंडल में अगणित उल्काओं का अस्तित्व प्रमाणित हो गया है।

(५) अब कई ग्रहों से भी अकृत्रिम रेडियो-"संकेत" प्राप्त होते रहते हैं। इनमें वृहस्पति के मेघाच्छादित पृष्ठ से आने वाले संकेत विशेषतः उल्लेखनीय हैं। ऐसा अनुमान किया जाता है कि इन संकेतों का स्रोत वे वैद्युत तूफान हैं जो वृहस्पति के तथाकथित लाल विन्दुओं में और उनके चारों और उठते रहते हैं। क्या रोमन देवता जोव[2] के वज्रों का आगार यहीं है ?

(६) सूर्य, आकाशगंगा, अधिनवतारों[3] के भग्नावशेष तथा सुदूरवर्ती सैकड़ों अपरिचित "रेडियो-तारे"[4] इत्यादि सभी से माप्य रेडियो-आवृत्तियों[5] के संकेत प्राप्त होते रहते हैं। इससे ज्योतिष विज्ञान का यह नया रूप यदि अलौकिक नहीं तो चमत्कारी अवश्य बन गया है।

क्या यह कहने की आवश्यकता है कि "संकेत" शब्द के प्रयोग में यह विश्वास गर्भित नहीं है कि ये रेडियो-तरंगी आवेग[6] किसी जीवित प्राणी द्वारा भेजे जाते हैं ? रेडियो के संकेतों के लिए सदैव जैविक प्रेषकों की आवश्यकता नहीं होती। तडित्[7] से भी संकेत उत्पन्न होता है तथा सूर्य-कलंकों[8] के चक्रवातों से भी ऐसे संकेत आते हैं और इनके कारण सर्वथा प्राकृतिक तथा भौतिक ही हैं।

पिछले दोनों अनुच्छेदों की बात संक्षेप में एक ही वाक्य द्वारा यों कही जा सकती है--

स्पैक्ट्रमदर्शियों, रेडियो दूरवीनों, वैज्ञानिक अनुसंधान-विधि तथा भौतिक विज्ञान के गणित सब ने मिलकर ब्रह्माण्ड भर में व्याप्त संरचना संघटन तथा आचारण की एकरूपता से हमें परिचित करा दिया है और पार्थिव अनुसंधानक को इस बात का विश्वास दिला दिया है कि उसके लिए यह मान लेना सर्वथा तर्कसंगत होगा कि जो बात यहाँ (इस पृथ्वी पर) सच है वही बात समस्त ब्रह्माण्ड में भी दूर-दूर तक सच है।

1. Radar 2. Jove 3. Super-novae 4- Radio-stars
5. Radio-frequencies 6. Impulse 7, Lighting 8. Sun spots

अध्याय ७

चतुर्थ समन्वय[1]*

मनुष्य के विकासशील मन के प्राचीन इतिहास में एक समय अवश्य ही ऐसा आया होगा जब अपने चारों ओर के संसार सम्बन्धी ज्ञान की वृद्धि के कारण आदिम जातियों के दार्शनिकों को यह प्रत्यक्ष अनुभव हो गया होगा कि यह संसार केवल मानव-केन्द्रित[2] अर्थात् केवल मनुष्य पर ही आधारित नहीं है। ज्यों-ज्यों समाज का विकास होता गया त्यों-त्यों ग्राम को संसार का केन्द्रीय स्थान अधिक मिलता गया। क्षितिज के वृत्ताकार होने के कारण तथा अपने घर से दूरी बढ़ने के साथ-साथ संसार सम्बन्धी ज्ञान की अस्पष्टता में वृद्धि होने के कारण इस स्वाभाविक धारणा को बहुत समर्थन प्राप्त हुआ। किन्तु कुछ ही हजार वर्ष पहले निकट और मध्यपूर्व की तथा संभवतः अन्य देशों की उच्चतर सभ्यताओं का ध्यान सूर्य तथा तारों के दैनिक परिक्रमण और ग्रहों के विचरण की ओर अधिकाधिक आकृष्ट होने लगा। नाविकों को भी समुद्र के तथा पृथ्वी के पृष्ठ की वक्रता के प्रमाण मिले जिनके द्वारा यह प्रगट हुआ कि पृथ्वी गोलाकार है। इससे यह धारणा उत्पन्न हुई कि हमारे दृश्य जगत् का केन्द्र पृथ्वी के गोले का केन्द्र है—कोई पृष्ठीय स्थान नहीं। चन्द्रमा तथा ग्रहों की और सूर्य तथा तारों की प्रेक्षित गतियों से यह मत संगत समझा जाने लगा। इस प्रकार अनेक सभ्यतम देशों में इस भू-केन्द्रीय[3] धारणा ने सर्वमान्य सिद्धान्त का रूप ले लिया।

स्वयं अपने से भिन्न सम्पूर्ण भौतिक जगत् के प्रति मनुष्य के इस प्रथम

1. The Fourth Adjustment * अमेरिकन स्कालर (American Scholar) पत्रिका के १९५६ के शारदीय अंक में प्रकाशित लेख पर आधारित।
2. Anthropocentric 3. Geo-centric

समन्वय ने उसके अहंकार को अधिक विक्षुब्ध नहीं किया क्योंकि अब भी अन्य समस्त प्राणियों की तुलना में मनुष्य को सर्वश्रेष्ठ समझने के पक्ष में जो प्रमाण उपलब्ध थे वे काफी अच्छे मालूम पड़ते थे। अतः उसे नम्र होने का कोई कारण दिखाई नहीं दिया। भले ही वह स्वयं संसार का केन्द्र न हो तथापि उसकी पृथ्वी को ही तो इस बात को खोज निकालने का श्रेय प्राप्त था।

भू केन्द्रीयता से सूर्य-केन्द्रीयता

दूसरा समन्वय तब हुआ जब भू-केन्द्रीयता के सिद्धान्त का परित्याग कर दिया गया। इसका स्थान जिस नवीन परिकल्पना ने लिया वह पश्चिमी संसार को उस समय तक मान्य नहीं हुई जब तक कि सोलहवीं शताब्दी में कोपर्निकस[1] प्रणीत क्रान्ति ने सूर्य-केन्द्रीय धारणा को भली-भाँति प्रतिष्ठित नहीं कर दिया। तब वैज्ञानिकों के सूर्य-केन्द्रित विश्व के सिद्धान्त के समक्ष उदार दार्शनिकों ने और अन्त में धर्मगुरुओं ने भी पराजय स्वीकार कर ली। यह मत-परिवर्तन बहुत धीरे-धीरे हुआ क्योंकि मनुष्य परम्परागत विधान का अत्यन्त दुराग्रहपूर्ण अनुयायी होता है। फिर भी शनैः-शनैः उसने सूर्य को न केवल ग्रहों के स्थानीय परिवार के, किन्तु समस्त तारकीय जगत् के भी केन्द्र के रूप में स्वीकार कर लिया। और दीर्घकाल तक वह इसी मत पर डटा रहा। किन्तु यह मत भी भ्रान्तिपूर्ण निकला। जब यह ज्ञात हुआ कि सूर्य भी एक साधारण तारा ही है तब पुनः मत-परिवर्तन की आवश्यकता मालूम पड़ने लगी, किन्तु यह दूसरा समन्वय अनिवार्य तब हो गया जब आधुनिक दूरबीनों के द्वारा गोलीय तारा-पुंजों[2], नीहारिकाओं[3] तथा सीफ़ाइड चरकान्ति तारों[4] का आविष्कार हो गया।

सूर्य-केन्द्रीय व्यवस्था के पक्ष में भू-केन्द्रीय विश्व-रचना का परित्याग बहुत ही अनिच्छापूर्वक किया गया था। बाद में भी ठीक उसी तरह, एक बार फिर मत-परिवर्तन की आवश्यकता का समर्थन करने वाले तथ्यों में पर्याप्त वृद्धि हो जानेपर भी, वैज्ञानिक, दार्शनिक तथा जन-साधारण सभी सूर्य-केन्द्रीय सिद्धान्त में हठधर्मी से विश्वास करते रहे। क्या इस हठधर्मी का कारण मिथ्याभिमान

1. Copernicus
2. Globular star clusters
3. Galaxies
4. Cepheid variables

था ? क्या इसकी जड़ में अवैज्ञानिक धर्मशास्त्रियों द्वारा पोषित यह मनोवृत्ति थी कि तारों के इस जगत् में, दिक्-कालमय इस ब्रह्माण्ड में मनुष्य का स्थान सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है ?

सूर्य-केन्द्रीयता से धन् राशि[1] तथा उससे भी अधिक दूर

इस दूसरी भ्रान्तिपूर्ण धारणा पर—अर्थात् सूर्यकेन्द्रीय सिद्धान्त पर—विश्वास करने के लिए बहुत से उत्तम कारण थे। ये सब अर्ध-वैज्ञानिक व्याख्याएँ थीं। उदाहरण के लिए, आकाशगंगा एक बृहत्-वृत्त[2] का अनुसरण करती है। इसके अतिरिक्त उसके समस्त भागों की द्युति लगभग एक-सी है। अतः ऐसा अनुमान होता है कि सूर्य तथा पृथ्वी का स्थान केन्द्रीय है। दूसरा प्रमाण यह है कि तारों की गणना करने वाले प्राचीन काल के ज्योतिषियों को ऐसा जान पड़ता था कि ज्यों-ज्यों सूर्य से दूरी बढ़ती जाती है त्यों-त्यों तारों की संख्या घटती जाती है। इससे भी यही व्यक्त होता था मानो सूर्य समस्त तारकीय जगत् के केन्द्र में अवस्थित है। और करोड़ों तारों के बीच में स्वयं अपने तारे (सूर्य) के ऐसे विशिष्ट स्थान के द्वारा मनुष्य को ऐसी प्रतिष्ठा प्राप्त होती थी जो उसे अप्रिय नहीं हो सकती थी। फिर भी यह भ्रम ही था।

सन् १९१७ तक भी, ज्योतिष सिद्धान्त के अग्रगण्य विद्वानों का यही विश्वास था कि सूर्य का स्थान केन्द्रीय है अथवा कम से कम वह तारों से पूर्ण इस विश्व के केन्द्र के अत्यन्त निकट तो है ही। (उस समय नीहारिकाओं के सम्बन्ध में यह मत अधिकारी रूप से सर्वमान्य नहीं हुआ था कि आकाशगंगा ही की तरह वे भी तारों का एक अन्य विशाल समुदाय हैं।) जब सीफ़ाइड चरकान्ति तारों के आवर्त-काल तथा उनकी ज्योति में जो सम्बन्ध[3] है, उसका उपयोग माप के साधन के रूप में किया जाने लगा और गोलीय तारा-पुंजों[4] की दूरियाँ नापकर उनके आकाशीय वितरण का अध्ययन कर लिया गया तब ही तारा-संकुल आकाशगंगा जिस चपटे तारा-समुदाय का परिचय देती है उसमें पहले-पहल पृथ्वी, सूर्य तथा इनके पड़ोसी तारों की उत्केन्द्र[5] स्थिति का पता चला।

1. Sagittarius 2. Great Circle 3. Period-luminosity relation 4. Globular Clusters 5. Eccentric

इसके बाद धीरे-धीरे कई अन्य प्रमाण मिले जिनसे प्रगट हो गया कि हमारी इस सर्पिल नीहारिका का अरबों तारों से परिपूर्ण केन्द्र धनु,[1] सर्पधर[2] तथा वृश्चिक[3] तारामंडलों की दिशा में बहुत दूर पर अवस्थित है। ज्यों-ज्यों हम तारकीय गहराई में पैठते गये त्यों-त्यों तारामंडित विश्व का सूर्य-केन्द्रीय सिद्धान्त कमजोर होता गया और थोड़ी देर तक छटपटा कर मृत्यु को प्राप्त हो गया।

हमारी आकाशगंगा का केन्द्र उपर्युक्त दक्षिणी तारा-मंडलों के तीव्र-ज्योति तारों के बीच में कहीं नजदीक ही नहीं है। इनकी दूरी तो केवल कई सौ प्रकाश-वर्ष मात्र है। किन्तु अब हमें ज्ञात हो गया है कि हमारी आकाशगंगा के केन्द्र की दूरी पचीस हजार प्रकाश-वर्षों से भी अधिक है। इस केन्द्रीय नाभि के अरबों तारे ही मिलकर आकाशगंगा के दक्षिणी भाग में हमें एक बड़ी श्वेत ज्योति के रूप में दिखाई देते हैं और इसी ज्योति को हम धनु का तारामेघ कहते हैं।

भू-केन्द्रीय धारणा के सूर्य-केन्द्रीय धारणा में परिवर्तित हो जाने से सोलहवीं शताब्दी में निस्सन्देह कुछ दार्शनिक उथल-पुथल भी हुई। किन्तु वह अधिक नहीं थी। क्योंकि विभिन्न प्रकार के जीवों की जिस सुकुमार पंक्ति में मनुष्य अपने आपको शीर्षस्थान में अथवा तन्निकट पाता है उसके लिए उत्तप्त, तथा विक्षुब्ध गैसमय सूर्य कोई उपयुक्त स्थान हो ही नहीं सकता। केन्द्र चाहे पृथ्वी में हो या सूर्य में, उससे विश्व-सम्बन्धी विचारधारा में कोई विशेष अन्तर पड़ता नहीं दिखाई देता। कोपर्निकस की मृत्युशैया से लेकर वर्तमान शताब्दी के जन्म-पर्यन्त तथा उससे भी आगे तक तारकीय विश्व के सम्बन्ध में प्रचलित सूर्य-केन्द्रीय धारणा से शायद ही किसी प्रकार की दार्शनिक अशान्ति उत्पन्न हुई हो।

किन्तु इसके पश्चात् ज्योतिषी तथ्यों के संचय की वृद्धि तीव्र गति से होने के कारण इस तृतीय समन्वय की अनिवार्य आवश्यकता प्रतीत होने लगी जिसका गहरा प्रभाव मनुष्य के अपने स्थान, अपनी चर्या तथा विश्वीय महत्त्व-सम्बन्धी अपनी विचारधारा पर पड़ना ही था और इस बात ने सचमुच ही मनुष्य को कुछ हद तक चिन्ताकुल कर दिया।

हमारी आकाशगंगा के छोर की ओर सूर्य तथा पृथ्वी के हट जाने से मानव अहंकार तथा आत्मविश्वास को बहुत अधिक क्षति पहुँची। इसके साथ ही

1. Sagittarius 2. Ophiucus 3. Scorpis

हमारी आकाशगंगा के ही समकक्ष अन्य नीहारिकाओं की भयंकर संख्या के आविष्कार ने भी हमें चकित कर दिया है। अन्य जन्तुओं से हमारी उत्पत्ति के सम्बन्ध में डार्विन[1] ने जो प्रमाण तथा तर्क उपस्थित किये थे उन्हें तो हम प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर सकते थे (यद्यपि एक शताब्दी पूर्व के धर्मशास्त्रियों के लिए यह कड़वी घूंट थी)। इसका कारण यह था कि हमारा विश्वास था कि इन प्रमाणों ने पार्थिव जीवों में हमारे शीर्ष-स्थान को ज्यों का त्यों सुरक्षित रहने दिया था। किन्तु मानव बुद्धि के लिए ज्ञान की ऐसी उन्नति चाहे कितनी ही गर्व की वस्तु क्यों न हो, ज्योतिष के विश्वसनीय प्रमाणों के कारण सूर्य-केन्द्रीय विश्व के परित्याग ने भौतिक जगत् में मनुष्य के स्थान के दृष्टिकोण से अवश्य ही हमारे अहंकार को चूर कर दिया।

नीहारिका-केन्द्रीय[2] परिकल्पना ने पृथ्वी तथा पार्थिव जीवन को ब्रह्माण्ड की करोड़ों नीहारिकाओं में से एक नीहारिका की वाह्य सीमा के निकट जा पटका। मनुष्य अपनी ही आकाशगंगा के अरबों तारों से भरे आकाश में भी सीमान्तवासी हो गया। इसके अतिरिक्त पुराजीव-विज्ञान[3] तथा भू-रसायन[4] के आविष्कारों के अनुसार यह भी स्पष्ट हो गया कि ब्रह्माण्ड के इतिहास में मनुष्य का प्रादुर्भाव अत्यन्त आधुनिक है और संभवतः अल्पस्थायी भी है।

इस स्थान पर थोड़ा ठहर कर हम एक ऐसी बात पर विचार कर लेना चाहते हैं जो हमारी मनोवृत्ति के अनुसार निराशापूर्ण भी हो सकती है और उल्लासपूर्ण भी समझी जा सकती है। विज्ञान की उन्नति के कारण तथा मूढ़-विश्वास और प्रकृतिविरुद्ध बातों में श्रद्धा घट जाने से पिछली कुछ शताब्दियों में हमारा ज्ञान ब्रह्माण्ड में मनुष्य की स्थिति के सम्बन्ध में इतना आगे बढ़ गया है और हमारे विचार इतने दृढ़ हो गये हैं कि अब वापस लौटना संभव नहीं रहा। जिज्ञासु मानव प्रत्यागमनातीत बिन्दु को पार कर चुका है। अब हम भू-केन्द्रीयता को ही नहीं, सूर्य-केन्द्रीयता को भी पुनः लौटा नहीं सकते।

वानर, गरुड़ और मधुमक्खियां अपने विशिष्ट कौशल और बुद्धि को लेकर अल्प-स्थायी सीमान्त वासी बने रहने में संभवतः पूर्ण सन्तोष का अनुभव करते

1. Darwin
2. Galacto-centric
3. Paleontology
4. Geo-chemistry

हैं। अतः वे इस महान् स्वप्न के दर्शन से वंचित हैं जो हमारे सामने उद्घाटित हो रहा है। उनके लिए आत्म-केन्द्रीयता[1] तथा स्व-स्थान केन्द्रीयता[2] की धारणा संतोषप्रद हो सकती है, किन्तु हमारे लिए वह कदापि सन्तोषप्रद नहीं है। अपनी संस्कृतियों तथा सभ्यताओं का पूर्णतः परित्याग किये बिना हम अपने संकीर्ण, किन्तु सुखद अतीत में न तो पुनः लौट सकते हैं और न लौटना चाहते हैं। अतः हम आगे की ओर बढ़ते ही जाते हैं। हम देखते हैं कि हमारे स्थिति-निर्धारण के इतिहास का एक अध्याय अभी और शेष है।

जैविक स्थिति-निर्धारण

अभी एक समन्वय और आवश्यक है, क्योंकि इस विवेचन में हमारे चिन्तन का विषय केवल यही नहीं है कि इस भौतिक जगत् के दिक्-काल में पृथ्वी का स्थान कहाँ है। हम यह भी जानना चाहते हैं कि जैविक जगत् में हमारी स्थिति क्या है? दार्शनिक क्षेत्र में से वैज्ञानिक तीर्थयात्री की कष्टसाध्य प्रगति की अन्तिम मंजिल यह नहीं है कि पृथ्वी तथा सूर्य को अपने उच्च आसन से नीचे ढकेल कर उनकी जगह नीहारिकाओं को बैठा दिया जाय। जैसा कि पिछले पृष्ठों में बताया जा चुका है, हमारे मानसिक क्षितिज पर एक नवीन विक्षोभ-कारी समन्वय की आवश्यकता का उदय न तो वैज्ञानिक क्षेत्रों में कार्य करने वालों के लिए सर्वथा अनपेक्षित है और न वह पूर्णतः केवल एक या दो वैज्ञानिक आविष्कारों का ही परिणाम है। यह तो इस युग की ही देन है। अब हम अपना ध्यान ज्योतिष से हटाकर दस-बारह दूसरे विज्ञानों के मिले-जुले क्षेत्र पर केन्द्रित करना चाहते हैं और यह पता लगाना चाहते हैं कि ब्रह्माण्ड भर में जीवन कहाँ कहाँ विद्यमान है।

पृथ्वी के जल, स्थल तथा वायु-निवासी समस्त जीवों के अनिर्वाचित प्रतिनिधि बनकर हम यह रोचक तथा उत्तेजक प्रश्न पूछना चाहते हैं कि "क्या आकाश, काल तथा तारों के इस ब्रह्माण्ड में हम बिलकुल अकेले ही हैं?"

समस्त नीहारिकाओं की महानीहारिका में मनुष्य के इस चतुर्थ समन्वय को प्रेरणा देने वाले अनेक विचारों और अन्वेषणों में से तीन ऐसे हैं जिनपर ध्यान देने की सबसे अधिक आवश्यकता है। प्रथम का सम्बन्ध तो है तारों की

1. Ego-centrism
2. Loco-centrism

संख्या से तथा द्वितीय का है भूतकालीन दुर्घटनाओं से और तृतीय स्वतः प्रजनन-शील अणुओं की उत्पत्ति से सम्बन्धित है। यद्यपि प्रथम तथा द्वितीय का थोड़ा-बहुत विवेचन पिछले अध्यायों में किया जा चुका है और तृतीय अध्याय ९ का मुख्य विषय रहेगा तथापि यहाँ भी तीनों का ही संक्षिप्त विवरण दे देना आवश्यक है।

प्राचीन काल के मनुष्यों को कुछ हजार तारे ही ज्ञात थे। दूरबीनों के प्रारंभिक काल में दस लाख तारों का पता चला। इसके बाद दूरबीनों के प्रत्येक सुधार से इस आश्चर्यजनक संख्या में चमत्कारी वृद्धि होती गयी। और अन्त में जब यह निश्चित हो गया कि तथाकथित अगांग[1] नीहारिकाएँ भी वास्तव में हमारी आकाश-गंगा की ही तरह करोड़ों ही नहीं अरबों तारों के समुदाय हैं और जब बड़ी से बड़ी दूरबीनों से भी हम ब्रह्माण्ड के "पेंदे को स्पर्श नहीं कर सके" तब जैसा कि अध्याय ५ में बताया जा चुका है हमें स्वीकार करना पड़ा कि ब्रह्माण्ड के प्रेक्षित भाग में ही तारों की संख्या $१०^{२०}$ से अधिक—संभवतः बहुत ही अधिक है।

इस आविष्कार का, या यों कहिए कि इस तथ्य के प्रगट हो जाने का, अर्थ यह है कि हमारे पास—अर्थात् इस ब्रह्माण्ड में—एक अरब खरब से भी अधिक ऐसे स्रोत हैं जिनसे इन ज्योतिर्मय तारों के साथ जितने भी ग्रह विद्यमान हों उन्हें प्रकाश और उष्णता प्राप्त हो सकती हैं।

(तारों की संख्या तथा उनकी आयु प्रचलित शब्दों के द्वारा मनुष्य के लिए बोधगम्य नहीं हैं। जिस मानव बुद्धि को क्रमबद्ध संख्याओं के माध्यम से गिनती गिनने का अभ्यास है उसके लिए ये तारे बहुत ही ज्यादा हैं, आकाश का विस्तार बहुत ही बड़ा है और वर्षों की संख्या भी अत्यधिक है। यह विशाल ब्रह्माण्ड सचमुच गणनातीत है। और जब हम पारमाणविक सूक्ष्मजगत् की ओर दृष्टि डालकर यह कहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य अपने एक श्वास में ऑक्सिजन, नाइट्रोजन तथा आरगन के दस अरब खरब ($१०^{२१}$) परमाणुओं को अपने शरीर में खींच लेता है तब इस वक्तव्य को भी अच्छी तरह समझ लेना सरल नहीं है।)

दूसरा तथ्य है, ब्रह्माण्ड की प्रसरणशीलता और उसका निम्नलिखित प्रश्न से सम्बन्ध। जिस जटिल जैविक क्रिया को हम जीवन की संज्ञा देते हैं उसके लिए

1. Extra-galactic

उपर्युक्त ऊर्जा का विकिरण करने वाले जितने तारे हैं, क्या उनमें से कुछ थोड़े भी ऐसे हैं जिन के साथ ग्रह लगे हों? यही प्रश्न अध्याय ४ में प्रस्तुत किया गया था और वहाँ इसका एक विचारणीय उत्तर भी दिया गया था।

अत्यन्त दूरवर्ती अगांग नीहारिकाओं[1] से आने वाले प्रकाश में सार्वत्रिक रक्ताभिमुखी विस्थापन[2] के जो प्रबल प्रमाण प्रेक्षण द्वारा मिले हैं उन्हें अब हम स्वीकार करते हैं। और यह भी स्वीकार करते हैं कि इस विस्थापन का कारण यह है कि इन समस्त नीहारिकाओं का व्यवस्थित रूप से विसरण[3] तथा प्रकीर्णन[4] हो रहा है और उनकी पारस्परिक दूरियाँ बढ़ती जा रही हैं अर्थात् इस ब्रह्माण्ड के विस्तार में वृद्धि होती जा रही है। जिन नीहारिकाओं के बीच में दस लाख प्रकाश-वर्षों की दूरी है उनके पारस्परिक अपसरण[5] का वेग लगभग पैंतीस मील प्रति सैकंड है। इससे दुगुनी दूरी वाली नीहारिकाओं के लिए यह वेग भी दुगुना है और दूरी तीन गुनी होने से यह वेग भी तीन गुना हो जाता है। यही नियम आगे भी चालू रहता है। इस वेग के यथातथ संख्यात्मक मान को नापने के लिए अभी अनुसंधान चल रहे हैं और यह भी जानने का प्रयत्न किया जा रहा है कि क्या यह संभव नहीं कि दूरी की अनुगामिनी अपसरण-वेग की एक-समान वृद्धि का नियम अत्यधिक दूरियों के लिए सत्य न हो।

पुरातन काल की विक्षुब्धता[6]

इस ब्रह्माण्ड को सब दिशाओं में वेगपूर्वक फैलता हुआ देखकर स्वभावतः हमारा ध्यान एक वर्ष पूर्व की स्थिति पर जाता है जब ये नीहारिकाएँ अधिक पास-पास थीं और इसके बाद एक शताब्दी, एक सहस्र वर्ष तथा एक अरब वर्ष पूर्व की स्थिति पर। निश्चय ही ज्यों-ज्यों हम अतीत काल की अधिकाधिक गहराई में पैठते जायेंगे त्यों-त्यों हमें इस समय की दूर-दूर फैली हुई विश्वीय इकाइयाँ अर्थात् ये नीहारिकाएँ उत्तरोत्तर अधिकाधिक पास-पास अवस्थित दिखाई देंगी। इस समय समस्त आकाश में द्रव्य का औसत घनत्व बहुत ही कम है— $१०^{-३१}$ ग्राम प्रति घन सेंटीमीटर के अनुमान का। पार्थिव मानकों के अनुसार

1. External galaxies 2. Red-shift 3. Diffusion
4. Scattering 5. Recession 6. Turbulence

यह सचमुच ही आत्यन्तिक अतिशून्यक[1] है। कुछ ही अरब वर्ष उस समय के अप्रसरित ब्रह्मांड का औसत घनत्व इतना अधिक रहा होगा कि तारों की टक्करें तथा ग्रहों और तारों के गुरुत्वीय विभंजन[2] अनिवार्यतः प्रचुरतापूर्वक होते रहते होंगे। और यह एक महत्त्वपूर्ण संयोग है कि रेडियो-ऐक्टिवता की विधि से नापने पर अब यह ज्ञात हुआ है कि पृथ्वी की ठोस पपड़ी भी कुछ ही अरब वर्ष पुरानी है। इससे यह प्रकट होता है कि यह पृथ्वी तथा सौर परिवार के अन्य ग्रह भी विक्षुब्धता तथा प्रलयंकरी टक्करों से पूर्ण भीड़भाड़ के उन्हीं दिनों में उत्पन्न हुए होंगे।

उसी समय गणनातीत करोड़ों अन्य ग्रह-निकायों[3] का भी विकास अवश्य ही हुआ होगा क्योंकि हमारा सूर्य तो एक अत्यन्त साधारण जाति का ही तारा है। उस ब्रह्माण्डव्यापी उथल-पुथल में सूर्य से भिन्न जाति के तारों ने भी अवश्य ही भाग लिया होगा। (हाल के ही नये उत्पन्न हुए अनेक नीले तथा लाल दानव-तारों की अपेक्षा हमारा सूर्य बहुत पुराना है और इतना साधारण है कि कुमारी कैनन की विख्यात तारा-सारणी में सूर्य सदृश तारों की संख्या लगभग चालीस हजार है और ये सब हमारे निकट पड़ोसी भी हैं।)

पुरातन काल की इस धूमधड़ाके की विधि से भिन्न, ग्रहों के निर्माण की दूसरी विधियों पर भी ज्योतिषियों ने तथा अन्य वैज्ञानिकों ने विचार किया है (अध्याय ४)। उदाहरण के लिए, परिकल्पित आद्य गैस के आकुंचन[4] से आद्य तारों के निर्माण और आद्यग्रहों के आनुषंगिक जन्म की विकासमयी प्रक्रिया को आजकल विस्तृत मान्यता प्राप्त है। इस विधि में असंख्य ग्रहों के अस्तित्व की संभावना भी गर्भित है।

ग्रहों की उत्पत्ति का सीधी टक्कर वाला सिद्धान्त भी विभिन्न रूपों में आदरणीय समझा गया है। किन्तु इस समय तारे इतने दूर-दूर फैले हुए हैं कि उनकी टक्कर होने की सम्भावना बहुत ही कम है—इतनी कम कि यदि ग्रहों का जन्म केवल ऐसी टक्करों पर ही निर्भर हो तो हम सम्पूर्ण सृष्टि में अपनी अद्वितीयता का दावा कर सकते हैं। किन्तु इस अभिमानपूर्ण दावे का समर्थन करना आसान नहीं है क्योंकि ब्रह्माण्ड की प्रसरणशीलता के आविष्कार ने यह प्रमाणित कर

1. Super-Super vacuum
2. Gravitational disruption
3. Planetary Systems
4. Contraction

दिया है कि जिस समय ब्रह्माण्ड की विक्षुब्ध अवस्था में हमारी पृथ्वी ने जन्म लिया था उस समय तारों की भीड़ घनी थी और परिस्थिति टक्करों से पूर्ण थी।

अनावश्यक बातों को छोड़कर हम इस विवेचन के परिणाम को पुनः यों प्रकट कर सकते हैं—**लाखों ग्रह-निकायों का अवश्य ही अस्तित्व होना चाहिए।** अरबों कहना अधिक उत्तम होगा। इसमें सन्देह नहीं कि तारों के जन्म में अनेक प्रकार की प्रक्रियाओं ने भाग लिया है। फिर भी, उत्पत्ति की विधि जो भी रही हो, शायद सभी तारों को थोड़े-बहुत ग्रह पैत्रिक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त हुए हैं—सिवाय उन तारों के जिनकी स्थिति ऐसी थी कि ग्रहीय द्रव्य या तो अधिक बड़ी-बड़ी संहतियों में विलीन हो गया अथवा गुरुत्वीय प्रभाव के कारण दूर फेंक दिया गया। संक्षेप में हम यह भी स्मरण करा देना चाहते हैं कि तारा-भौतिकी ने यह प्रमाणित कर दिया है कि समस्त प्रेक्षित ब्रह्माण्ड में भी रसायन तथा भौतिकी वैसी ही हैं जैसी कि हमारे यहाँ हैं। न तो इस पृथ्वी पर न इस वर्तमान काल में कोई भी बात असामान्य अथवा अनोखी है।

हमारे $१०^{२०}$ तारों, अनुकूल रसायन, उपयुक्त विस्तार तथा अपने पोषण-कर्ता तारों से समुचित दूरी वाले करोड़ों ग्रहों के अस्तित्व की अत्यधिक संभावना को ध्यान में रखकर हम इस प्रश्न के लिए तैयार हैं; क्या इनमें से कुछ ग्रहों पर जीव वास्तव में विद्यमान हैं ? अथवा क्या यह जीव-रासायनिक व्यापार आश्चर्यजनक ढंग से केवल हमारे ग्रह तक ही—सौर परिवार के इस तृतीय ग्रह तक ही—सीमित है जब कि स्वयं सूर्य भी हजारों-करोड़ों तारों से भरी हुई आकाश-गंगा के बाह्य भाग में अवस्थित केवल औसत प्रकार का ही तारा है, साथ ही यह स्थानीय नीहारिका भी अब तक प्रेक्षित करोड़ों नीहारिकाओं में से एक साधारण नीहारिका ही है।

क्या जीवन का क्षेत्र इतना सीमित है ? कदापि नहीं। हम अकेले नहीं हैं। और पूर्वोक्त तृतीय तथ्य का ज्ञान हो जाने पर हम जीवन की इस बहु-विस्तीर्ण व्यापकता को और भी अधिक आत्मविश्वास के साथ स्वीकार कर सकेंगे।

जो कुछ हम अध्याय ९ में विस्तारपूर्वक कहेंगे उसी का चार वाक्यों में संक्षेपण यों किया जा सकता है। भू-भौतिकी,[१] ज्योतिष तथा अन्य विज्ञानों की

1. Geophysics

सहायता से जीव-रसायन[1] तथा सूक्ष्म-जैविकी[2] ने अजीव और सजीव—जड़ और चेतन—के बीच की खाई पाटने में इतनी सफलता प्राप्त कर ली है कि अब इसमें सन्देह करने की कोई गुंजाइश नहीं रही कि जब कभी भी किसी ग्रह के पृष्ठ पर भौतिक तथा रासायनिक परिस्थितियाँ अनुकूल हों और मौसम भी उपयुक्त हो तब ही जीवन को उत्पत्ति हो जायगी और वह अपने आपको सुरक्षित भी रख सकेगा और अपना विकास भी करेगा। अब जीवन के रहस्य का अन्त हो रहा है। आत्मनिष्ठ अलौकिकता का स्थान वस्तुनिष्ठ विज्ञान ले रहा है। जड़ द्रव्य के बहुत बड़े अणुओं[3] तथा सूक्ष्म जीवाणुओं[4] के क्षेत्र में जो अनेक अनुसंधान पिछले कुछ वर्षों में किये गये हैं उन्होंने जीवन की उत्पत्ति के लिए दैविक तथा प्रकृति-विरुद्ध कारणों की परिकल्पना को सर्वथा अनावश्यक बना दिया है।

मानव-स्थिति के निर्धारण में अगला कदम बढ़ाने के लिए अर्थात् चतुर्थ समन्वय के लिए पूरी तयारी हो चुकी है और यदि हम चाहें तो इस अवसर से फायदा उठा सकते हैं। ब्रह्माण्ड में जीवन के स्थान तथा उसकी चेष्टाओं को समझने में इस नवीन तथा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समन्वय को नीहारिकाओं के अपसरण से, तारों की बहुलता से, और उष्ण, आर्द्र तथा तारा-प्रदीप्त ग्रहों के पृष्ठों पर स्थित बड़े-बड़े अणुओं की संरचना तथा उनके आचरण से ही प्रेरणा मिली है। जब हमने इस बात के प्रमाणों को स्वीकार कर लिया और हमें विश्वास हो गया कि अकेली पृथ्वी ही पर जैविक विकास नहीं हुआ है, किन्तु विविध प्रकार का अत्यन्त उत्कृष्ट तथा चेतनायुक्त जीवन प्रचुरमात्रा में दूर-दूर तक फैला हुआ है तब ही इस भौतिक जगत् में मनुष्य के स्थान की खोज में हम ने इस सब से अधिक महत्त्वपूर्ण कदम का सहारा लिया है।

क्या अब हम अपनी यात्रा को पूर्ण कर चुके हैं या अभी और भी कोई मंजिलें बाकी हैं ? वैज्ञानिक प्रविधियों की उन्नति के तीव्र वेग को तथा तर्कपूर्ण कल्पना शक्ति की अनवरत साधना को देखकर यह बात बुद्धिमानी की नहीं मालूम होती कि हम यह सोचने लगें कि अब हमें मनुष्य की ब्रह्माण्डीय स्थिति सम्बन्धी विचारधारा में और किसी नये समन्वय की जरूरत कभी नहीं पड़

1. Bio-Chemistry
2. Micro-biology
3. Micro-molecules
4. Micro-organisms

सकती, न अब हमें ऐसी कोई कारण ही मिल सकता है जो हमें भौतिक तथा जैविक दृष्टिकोणों पर आश्रित उपर्युक्त तृतीय तथा चतुर्थ समन्वयों से भिन्न किसी अन्य प्रकार का समन्वय करने के लिए बाध्य कर सके।

यह पाँचवाँ समन्वय मानसिक[1] क्षेत्र में हो सकता है अथवा "ऋणात्मक द्रव्य"[2] के जगत् में अथवा किसी ऐसे काल्पनिक जगत् में भी हो सकता है जिसमें हमारा ब्रह्माण्ड किसी और भी बड़े बृहत् ब्रह्माण्ड का केवल एक परमाणु समझा जा सकता हो। वह किसी इतने ही संभव और इतने अद्भुत् सूक्ष्मातिसूक्ष्म जगत् में भी हो सकता है जिससे हमारे इलेक्ट्रान सूक्ष्मातिसूक्ष्म तारों से संकुल नीहारिकाएँ समझे जा सकते हों तथा जिसे जानना या नापना हमारी तथा हमारे साधनों की स्थूलता के कारण संभव न दिखाई दे।

1. Psychological 2. Negative matter

अध्याय ८

महान् मुहूर्तों के बारे में विषयान्तर*

सूर्य के प्रकाश के रूप में अन्तरिक्ष से आयी हुई ऊर्जा तथा पृथ्वी के पिंड में से धीरे-धीरे निकलने वाली ऊष्मा ने पृथ्वी के पिछले आदिकालीन समुद्रों के "आद्य जूष" में उपस्थित कार्बनिक यौगिकों[1] से मिलकर पेड़ों के पत्तों तथा स्तम्भों की रचना की और बाद में उच्च जाति के पौधों तथा जन्तुओं का विकास किया। इस सहकारी व्यापार में प्रकाश-संश्लेषण[2] की प्रारंभिक तथा अनवरत जीव-रासायनिक क्रिया[3] ही प्रमुख थी। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि इस पृथ्वी पर जीवन के प्रादुर्भवन के इतिहास में विकिरण ऊर्जा तथा कार्बनिक अणुओं के सहयोग का प्रारम्भ अवश्य ही भविष्य के लिए एक निर्णायक मोड़ था। यहीं से "क्लोरोफिल-अभियान"[4] का प्रारम्भ हुआ जिसके बिना हमारा अस्तित्व संभव हो ही नहीं सकता था। जहाँ तक जीवन का सम्बन्ध है, यह निश्चय ही इस ब्रह्माण्ड का एक महान् मुहूर्त था। और यदि ऐसा होना यहाँ (पृथ्वी पर) संभव हुआ था तो अन्यत्र भी संभव हो गया होगा और शायद वहाँ भी इसका उतना ही महत्त्वपूर्ण परिणाम हुआ होगा।

भौतिक जगत् के बहुमुखी विकास में एक क्रान्तिकारी मोड़ के महान् मुहूर्त की कल्पना सचमुच ही अन्यन्त रोचक तथा रहस्यपूर्ण कल्पना है। "महान् विचारों" के सम्बन्ध में महाविद्यालयों में पाठचक्रम बन गये हैं, पढ़ने योग्य "महान् ग्रन्थों" की सूचियां तैयार हो गयीं हैं तथा "महापुरुषों" के सम्बन्ध में अनेक पुस्तकें भी लिखी जा चुकी हैं। "महान् आशाएँ", "वर्ष की महान् घटनाएँ"

* अमेरिकन स्कालर ((American Scholar) पत्रिका के 1957 के ग्रीष्मीय अंक के लेख पर आधारित।

1. Organic Compounds
2. Photo-synthesis
3. Bio-chemical reaction
4. Operation Chlorophyll

इत्यादि भी विद्यमान हैं। तब जगत्-रचना के "महान् युगों" की तलाश क्यों नहीं ?

आदिकालीन पौधों के स्थायी रूप से जम जाने से पहले पृथ्वी की शिलामय पपड़ी जैविक दृष्टि से निश्चय ही बंजर थी जैसी इस समय चन्द्रमा की है। इसके बाद प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया का आरम्भ हुआ जिसके लिए हम सदैव कृतज्ञ रहेंगे। इतनी अधिक क्रान्तिकारी घटनाएं दूसरी कौन-सी हैं? हो सकता है कि अधिकांशतः वे इतनी गुप्त हों कि हमें उनका पता ही न चल सके क्योंकि प्रकृति की जटिलताओं के मुकाबिले में हम वास्तव में अत्यन्त ज्ञानहीन तथा अशक्त हैं। फिर भी उनमें से कुछ घटनाओं का आभास हमें मिल गया है।

ऐसी महत्त्वपूर्ण युग-प्रवर्ती घटनाओं की सूची के लिए विभिन्न चयनकर्ता संभवतः अपनी-अपनी पसंद के अनुसार अलग-अलग प्रकार की घटनाओं को चुनेंगे। मेरा सुझाव निम्नलिखित है—

(१) समस्त-समावेशी आद्य परमाणु का विस्फोट (यदि ऐसा परमाणु वास्तव में विद्यमान था)। वर्तमान परिकल्पनाओं के अनुसार इसी प्रलयंकारी घटना ने उत्तरोत्तर प्रसरणशील ब्रह्माण्ड को उत्पन्न किया था, रासायनिक परमाणुओं को जन्म दिया था तथा नीहारिकाओं और तारों का निर्माण किया था। इसी से ग्रह भी उत्पन्न हुए थे जिनमें से कुछ के शिलामय तथा आर्द्रपृष्ठ विभिन्न प्रकार के जीव-जन्तुओं के आविर्भाव के लिए उपयुक्त थे और इन्हीं जीव-जन्तुओं में वे भी थे जो अब "महान् मुहूर्तों" के विषय में चिन्तन कर रहे हैं।

(२) प्रकृति के नियमों में आकर्षण तथा प्रतिकर्षण का शुभ सम्मिश्रण (अथवा एक चीनी कहावत के अनुसार अनुराग तथा विराग का सहयोग) जो परमाणु के संसंजनमय[1] नाभिक के अस्तित्व का कारण है। इस सहयोग की धारणा जरा कठिन है और इसको भली प्रकार समझने के लिए बहुत अनुशीलन की आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में मुझे परमाणवीय नाभिक के स्वरूप सम्बन्धी अनुसंधान करनेवाले एक विख्यात भौतिकज्ञ की याद आती है जिसने एक बार इस रहस्य को इन शब्दों में व्यक्त किया कि "जड़ द्रव्य नष्ट होने से केवल बाल-बाल ही बचा हुआ है।"

1. Cohesive

किन्तु इस सर्वव्यापी नाभिकीय संसंजन से शायद समय की एक दैशिक प्रगति का कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः इसकी गिनती "महत्त्वपूर्ण तथ्यों" में होनी चाहिए, न कि "तथ्यपूर्ण मुहूर्तों" में।

(३) आकाश की विजली का उत्पात तथा प्राकृतिक ऊर्जा की अन्य अभिव्यक्तियाँ जिनकी सहायता से पृथ्वी (और उसी के सदृश अन्य ग्रहों) के मीथेन-अमोनिया, जलवाष्प तथा हाइड्रोजन युक्त प्राक्तनकाल से भी पूर्व के वायुमंडल में से अमीनो-अम्लों का संश्लेषण हुआ, जिनसे क्रमशः प्रोटीन बने और जीव-जन्तुओं की उत्पत्ति हुई। संक्षेप में हमारा अभिप्राय प्रकृति के उस संश्लेषण से है जिसके द्वारा प्रथम वार संतत जीवन का प्रादुर्भाव हुआ अथवा कम से कम उस परमावश्यक पहले कदम से है जिसके परिणामस्वरूप पृथ्वी पर तथा अन्यत्र ऐसे भौतिक संगठन प्रगट हुए जिनमें अपनी व्यवस्था को चिरस्थायी वनाये रखने की क्षमता थी।

(४) प्रकाश-संश्लेषण[1] का उपर्युक्त आयोजन अथवा "आकस्मिक उद्भव" तथा उसकी जैविक स्वभाव के रूप में परिणति। इस जटिल युक्ति के द्वारा ही जीवन के लिए आवश्यक ऊर्जा सूर्य से प्राप्त होने लगी।

(५) समुद्र, झील तथा नदी के तटवर्ती छिछले पानी में से आदिम जन्तुओं का वाहर निकलना और शुद्ध ऑक्सिजन का उपयोग करने की क्षमता प्राप्त करना। इस पृथ्वी पर यह घटना चालीस करोड़ वर्ष पूर्व हुई थी। संभवतः अन्य अनेक ग्रहों पर इससे वहुत वाद में हुई होगी। उस समय जो आद्य जन्तु रेंगकर या फुदक कर किनारे पर पहुँचे उन्हीं में से कुछ आज के कीटों के अग्रग्रामी थे, कुछ मेंढकों के पूर्वज थे तथा कुछ आदिकालीन उभयचर[2] थे। जव ये आदिकालीन पौधे और जन्तु पानी में रहते थे तव उन्हें जलाने वाली तथा पोषण करने वाली ऑक्सिजन तनु विलयन[3] के रूप में थोड़ी-थोड़ी मात्रा में प्राप्त होती थी। छोटी-वड़ी लहरें ही इसे ऊपर की हवा से झपट कर जल में पहुँचा देती थीं। अतः ठोस जमीन पर पहुँचकर सान्द्र[4] ऑक्सिजन में साँस लेने की क्रिया को सीख लेना वहुत वड़े महत्त्व की वात थी।

श्वास लेने के विशिष्ट अंगों का विकास विविध प्रकार से हुआ है। उदाहरण के लिए, हम उच्च स्तनपोषियों ने वहुत पहले ही अपनी पैतृक जल-श्वस निकाओं[5]

1. Photo-synthesis 2. Amphibia 3. Dilute Solution
4. Concentrated 5. Gills

का परित्याग कर दिया और उनके स्थान में धौंकनी के सदृश फेफड़ों की व्यवस्था कर ली जिनके साथ कुछ ऐसे तन्तु भी लगे हुए थे (वाक्-तन्तु)[1] जो ऑक्सिजन तथा कार्बन-डाइऑक्साइड के यातायात का नियंत्रण करने के अतिरिक्त हमें बातचीत करने और गाने में भी सहायता करते हैं। दूसरे शब्दों में, आवश्यक ऑक्सिजन का अन्तःश्वसन तथा अवांछित कार्बन-डाइ-ऑक्साइड के बहिःश्वसन के लिए उत्तम साधन के विकास का ही आनुषंगिक शुभ परिणाम यह भी हुआ कि हमें परस्पर विचार-विनिमय कर सकने के लिए बोलने का सुनियोजित यंत्र प्राप्त हो गया। इस कारण सूचनाओं को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाने के लिए हमें चीटियों की तरह शृंगिकाओं[2] को नचाने पर अथवा मधुमक्खियों की तरह अपने पेट को हिलाने-डुलाने पर निर्भर नहीं रहना पड़ा।

(६) कीटों के पंखों की "ईजाद" अर्थात् शीघ्रतापूर्वक उत्परिवर्ती[3] विकास। इन्हीं अंगों ने महान् कीट जाति के प्राणियों को पृथ्वी भर में फैला दिया है (इनकी जातियाँ करोड़ों हैं और व्यक्तियों की संख्या करोड़ों खरब है) और पार्थिव जीवन के लिए अनेक प्रकार से इतना महत्त्वपूर्ण भी बना दिया है। इन अंगों की उत्पत्ति किसी पूर्ववर्ती अंग के अनुकूलन के द्वारा शनैः-शनैः नहीं हुई थी। उड़ने वाले स्तनपोषियों (चमगादड़ों) तथा उड़ने वाले नव-उरगों[4] (पक्षियों) के पंख उनके अग्रपादों[5] के अनुकूलन से विकसित हुए हैं। किन्तु कीटों के पंख किसी पूर्ववर्ती साधारण अंग का बलिदान देकर नहीं प्राप्त किये गये हैं। वे बिलकुल नये तथा अतिरिक्त अंग हैं और पलायन के लिए उपयोगी साधन के रूप में भी वे हितकर हैं। जमीन पर दौड़कर, रेंगकर या छिपकर इन कीटों का अपने भक्षकों से बच सकना आसान नहीं था। कीटों के अनेक वर्गों का पुराजीव कल्प[6] से अब तक बचे रहना निस्सन्देह जीवन की इस आशंकापूर्ण स्थिति पर विजय प्राप्त कर सकने ही पर निर्भय था। गैसीय माध्यम में यात्रा करने की कला का उपयोग करने वाले पक्षियों का पृथ्वी पर आविर्भाव होने से बहुत पहले ही ये आदिम कीट अवसर आने पर हवा में उड़ कर भाग जा सकते थे। अपनी जाति को जीवित रख सकने की महत्त्वपूर्ण परीक्षा में ये परदार आदिम कीट उत्तीर्ण हो गये।

1. Vocal chords 2. Antennae 3. Mutational
4. Neo-reptiles 5. Fore legs 6. Paleozoic Era

वे दुश्मनों से बच कर भाग जाने में सफल हो गये। उनके पलायन का साधन सचमुच नयी प्रकार का था और उसकी बनावट भी बहुत अच्छी थी।

इनके अतिरिक्त हम और भी अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाओं की सूची बना सकते हैं, यथा हमारे मानव वंश के पूर्वजों का पेड़ों से नीचे उतर आना, अग्नि के उपयोग का आविष्कार, गति के तथा गुरुत्वाकर्षण के नियमों का प्रतिपादन। किन्तु कीटपंखों से विपरीत इनमें से कोई शायद इतने अधिक स्थानीय हैं कि ब्रह्माण्ड की व्यापक दृष्टि से इन घटनाओं के प्रारम्भ काल को महान् मुहूर्तों की गणना में सम्मिलित नहीं किया जा सकता। ऊपर भी जिन्हें गिनाया गया है उनमें से भी अधिकतर तो क्रमशः होनेवाले दीर्घकालव्यापी परिवर्तन हैं—एक ही बार में हो जाने वाली आकस्मिक घटनाएँ नहीं। उनके लिए "मुहूर्त" या "क्षण" के स्थान में "कल्प"[१] अथवा "युग"[२] शब्द का प्रयोग शायद अधिक उचित होगा।

यदि ब्रह्माण्ड को अंशतः समझ लेने और उसका विवरण दे सकने की क्रियाएँ स्वयं भी ब्रह्माण्ड-रचना[३] का ही भाग हो और समस्त ब्रह्माण्डीय व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण अंग हो तो नर-वानर वंश के मस्तिष्क में जो महान् उत्परिवर्तन हुए हैं उनके समय भी महान् मुहूर्त ही हैं। यंत्रों में पहिये का, गणित में कलन[४] का तथा अवचेतन[५] मन का आविष्कार—इन सब की गणना भी महान् मुहूर्तों में ही होनी चाहिए। किन्तु अभी इस मानवकेन्द्रीयता[६] को एक ओर रख कर हमें तो तारों और सजीवों की उत्पत्ति पर ही ध्यान देना चाहिए।

1. Era 2. Period 3. Cosmography
4. Calculus 5. Subconscious 6. Anthropo-centricity

अध्याय ९

सजीवों के प्रादुर्भाव की ओर

किसी ग्रह के पृष्ठ पर जीवन के प्रादुर्भाव के सम्बन्ध में इतना कह देना ही काफी नहीं है कि जब-जब परिस्थितियाँ अनुकूल हों—जब प्रोटोप्लाज्म के निर्माण के लिए आवश्यक रासायनिक द्रव्य उपलब्ध हों, ग्रह का द्रव्यमान तथा टेम्परेचर और उसकी गति उपर्युक्त हो, मौसम भी उत्तम हो तभी जीवधारियों या सजीवों की उत्पत्ति वहाँ अनिवार्य मालूम होती है। सिर्फ यह कहने से ही काम नहीं चल सकता कि जैव-रासायनिक विकास, स्वाभाविक भी है और अवश्यम्भावी भी। यह जानना भी आवश्यक है कि प्रकृति स्वतः प्रतिरूपणशील आणविक संगठनों का निर्माण किस प्रकार करती है तथा जिस व्यापार को हम जीवन की संज्ञा देते हैं उसकी इस मूल प्रक्रिया के कुछ आवश्यक अंगों का भी अधिक विस्तृत विवरण प्राप्त कर लेना उचित है।

जीवन की उत्पत्ति का इतिहास बहुत संतापपूर्ण है। दक्षताहीन प्रेक्षणों तथा उनसे मूर्खतापूर्ण नतीजे निकालने की प्रवृत्ति ने सैकड़ों वर्षों तक इस प्रवाद को जीवित रखा कि कूड़े-कर्कट में से निम्नवर्ग के जीव स्वतः ही उत्पन्न हो जाते हैं। पास्ट्यूर[2] ने ही इस पाखंडवाद का उन्मूलन किया। अनेक वैज्ञानिक आलोचक कुछ समय तक तो पास्ट्यूर का तथा उनके सहयोगी वैज्ञानिकों का विरोध करते रहे। किन्तु जीवन के प्रादुर्भाव के रहस्य के सम्बन्ध में वैज्ञानिक प्रगति का दुष्टतम प्रतिरोध हुआ धर्म के गढ़ों में जिनकी रक्षा करने के लिए धर्मगुरु तथा जन-साधारण दोनों ही ताल ठोक कर सन्नद्ध हो गये थे। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि यद्यपि प्रयोगशालाओं में मनुष्य ऐसी मिश्रधातुएँ बना सकता है जिन्हें प्रकृति ने कभी नहीं बनाया था। वह नवीन प्रकार के संकर[3]

.Sel f-replicating   2. Pasteur   3. Hyb rid

पौधों और जन्तुओं का भी विकास कर सकता है और समाजों की रचना भी कर सकता है तथापि वह प्रयोगशाला में सजीव प्राणियों की सृष्टि करने में सदैव अक्षम था, अक्षम है और भविष्य में भी अक्षम ही रहेगा। वह दृश्य और अदृश्य जीवन का नाश भी कर सकता है, किन्तु जीवन की आदि सृष्टि तो केवल सर्वशक्तिमान् ईश्वर के ही ज्ञानातीत हाथों में है। जीवन के उद्‌गम की खोज निषिद्ध स्थानों में ताक-झाँक करने के तुल्य है, और बहुत कुछ अंश में ईश्वर-निन्दा अथवा नास्तिकता ही है।

इस प्रकार धार्मिक विश्वासों से आक्रान्त होकर मानवजीव के उद्‌भव-सम्बन्धी अनुसन्धान विज्ञान को परोक्ष रीति से—सरलतम रचनावाले सजीवों अर्थात् जीवन के आदिमतम स्वरूप के अध्ययन द्वारा—करने पड़े। किन्तु इस अन्धविश्वासी विरोध का अन्त हुए भी दीर्घकाल व्यतीत हो चुका है। पिछली शताब्दी में ब्रह्माण्ड-सम्बन्धी हमारे ज्ञान में इतनी अधिक और बहुमुखी वृद्धि हो गयी है कि अनोखी व्याख्याओं की सहायता से भी प्राचीन प्रागुक्तियों में उसको पूर्णतः समाविष्ट करना संभव नहीं रहा। बीसवीं शताब्दी में जीव-रसायन तथा सूक्ष्म-प्राणि-विज्ञान के विद्वानों ने जीवन के उस आदिरूप का प्रेक्षण करना, उसके सम्बन्ध में सफल प्रयोग करना और उसके आविर्भाव के विषय में चिन्तन करना आरंभ कर दिया था जो अवसादी शैलों[1] के साक्ष्य के अनुसार एक अरब वर्ष से भी पूर्व यहाँ विद्यमान था।

हैल्डेन[2] तथा ओपैरिन[3] द्वारा मार्गदर्शन

सन् १९२८ में हैल्डेन ने जादू को उपेक्षणीय तथा मूढ़ विश्वास को दृढ़तापूर्वक अवांछनीय बताते हुए एक लेख लिखा था जिसमें उन्होंने उन भौतिक तथा रासायनिक परिस्थितियों की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया जिनके अति प्राचीन काल में भूतल पर विद्यमान होने की अच्छी संभावना दिखाई देती थी। उन्होंने इस बात का भी आभास दिया कि ये परिस्थितियाँ निर्जीव में से सजीव के स्वाभाविक संश्लेषण के हेतु उपयुक्त मालूम होती थीं। इस समय यदि सब का नहीं तो अधिकतर विद्वानों का विश्वास यह है कि प्रारम्भ

1. Sedimentary rocks
2. J. B. S. Haldane
3. A. I. Oparin

में पृथ्वी के वायुमंडल में शुद्ध, असंयुक्त तथा गैसीय अवस्था में ऑक्सिजन बिलकुल ही न था और यदि था तो बहुत ही थोड़ा। ऑक्सिजन तत्त्व की बुभुक्षा बड़ी प्रबल होती है और जब भी अवसर मिलता है तब ही उसका संयोजन अन्य अनुकूल तत्त्वों के परमाणुओं से हो जाता है। जल (H_2O) तथा बालू (SiO_2) के रूप में पृथ्वी पर ऑक्सिजन की मात्रा सदैव अत्यन्त प्रचुर रही है। वस्तुतः पृथ्वी की ठोस पपड़ी का आधा भाग, समुद्रों, झीलों तथा नदियों का ९० प्रतिशत भाग और वर्तमान वायुमंडल का लगभग चौथाई भाग ऑक्सिजन ही है। किन्तु अति प्राचीन काल में यहाँ की वायु में मुक्त ऑक्सिजन की मात्रा बहुत ही कम थी। पृथ्वी के वायुमंडल में इस समय जो दस लाख अरब ($१०^{१५}$) टन ऑक्सिजन है उसका बहुत बड़ा भाग पौधों की "श्वास लेने की क्रिया" से विगत एक अरब ($१०^{९}$) वर्षों में आया है। वह प्रकाश-संश्लेषण का एक उपोत्पादन[1] है और उसमें थोड़ा-सा वह ऑक्सिजन भी मिल गया है जो वायुमंडल के ऊपर के भाग में सूर्य के लघुतरंगीय विकिरण द्वारा जलवाष्प के विघटन से उत्पन्न हुआ है।

प्रारंभ के वायुमंडल में जल-वाष्प ही की प्रधानता थी। साथ में कार्बन-डाइऑक्साइड (CO_2) मीथेन (CH_4) तथा नाइट्रोजन (अमोनिया (NH_3) के रूप में) भी थे। यद्यपि मीथेन और अमोनिया अब पृथ्वी की वायु में से लगभग गायब हो गये हैं तथापि शीतल बृहस्पति के वायुमंडल में वे अब भी विद्यमान हैं। ज्यों-ज्यों पृथ्वी ठंडी होती गयी त्यों-त्यों प्रारम्भ का प्रचुर जल-वाष्प द्रवरूप में परिणत होकर समुद्रों, झीलों तथा गीली मिट्टी में चला गया और वर्तमान वायुमंडल का लगभग ९९ प्रतिशत भाग मुक्त ऑक्सिजन तथा मुक्त नाइट्रोजन गैसों का ही मिश्रण रह गया है।

उस प्रारंभिक वायुमंडल में पारमाणविक तथा आणविक ऑक्सिजन की अनुपस्थिति से यह भी प्रकट है कि ओजोन[2] अर्थात् ऑक्सिजन के त्रिपरमाणवीय रूप का भी तब निश्चय ही बिलकुल अभाव रहा होगा। ऐसे अभाव का जीवोत्पत्ति पर अवश्य ही बहुत भयंकर प्रभाव पड़ा होगा क्योंकि इस समय हमारे वायुमंडल में लगभग बीस मील की ऊँचाई पर जो ओजोन की रोक[3] विद्यमान

1. By-product 2. Ozone
3. Ozone Barrier

है और जो उदारतापूर्वक हम-जैसे सुकुमार जीवों की प्राणनाशक परावैंगनी विकिरण[1] से इतनी अच्छी तरह रक्षा कर रही है, वह भी संभवत: दो से चार अरब वर्ष पूर्व के उस पुरातन काल में विद्यमान नहीं थी। इसके पश्चात् के लम्बे-लम्बे युगों में भी यह रोक बहुत पतली तथा पारगम्य ही रही होगी और पूर्णत: कार्यकारी तब हुई होगी जब प्रकाश-संश्लेषी पेड़-पौधों ने जल में से तथा कार्बनडाईऑक्साइड में से ऑक्सिजन की प्रचुर मात्रा को मुक्त कर दिया गया होगा।

ओज़ोन की इस प्रारम्भिक कमी का सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि जब-जब आकाश जल-वाष्प-पूर्ण बादलों से मुक्त रहा तब-तब सूर्य का लघुतरंगीपरावैंगनी विकिरण बिना रोकटोक छिछल जलाशयों में विशेष प्रकार की क्षमता-युक्त ऊर्जा पहुंचा सका। क्लोरोफिल की उत्पत्ति से पूर्व आद्य जीवन की सृष्टि में जिन तीन-चार ऊर्जा-स्रोतों की सहायता मिल सकती थी, वेधनशील[2] परावैंगनी विकिरण भी निस्सन्देह उन्हीं में से एक था। अन्य स्रोत थे वायुमंडलीय वैद्युत स्फुलिंग (तड़ित्), विघटनशील[3] रेडिया-एक्टिव तत्त्वों द्वारा उत्सर्जित गामाविकिरण[4] और सम्भवत: पृथ्वी के गर्भ से निकलने वाली ज्वालामुखियों तथा उष्ण जल स्रोतों की गर्मी।

मुलर[5] तथा अन्य वैज्ञानिकों ने यह भी प्रमाणित कर दिया है कि लघुतरंगी विकिरण भी जैविक उत्परिवर्तनों[6] का वेग बढ़ा देता है। प्राक्-ओज़ोनी[7] दिनों में परावैंगनी विकिरण ने जैविक विकास का वेग भी बहुत बढ़ाया होगा और उसे अनेक विभिन्न दिशाओं में प्रेरित भी किया होगा। अब तो ऐसे विकिरण का आगमन प्राय: बिलकुल ही रुक गया है।

पार्थिव जीवन के प्रादुर्भाव के लिए उपयुक्त प्राक्तन परिस्थितियों के मार्गदर्शी विवेचन[8] में हैल्डेन ने भी लघुतरंगी विकिरण की ऊर्जा का ज़िकर किया है—

1. Ultra-violet 2. Penetrating 3. Dis-integrating
4. Gamma-radiation 5. H. J. Muller
6. Biological mutations 7. Pre-Ozone
8. हैल्डेन की पुस्तक "विज्ञान और जीवन" (Science and Life) लन्दन, १९२८।

"जब जल, कार्बन-डाई-ऑक्साइड तथा अमोनिया के मिश्रण पर परा-बैंगनी प्रकाश की क्रिया होती है तब विविध प्रकार के कार्बनिक पदार्थ बहुत बड़ी संख्या में उत्पन्न होते हैं। इनमें कई प्रकार की शर्कराएँ भी होती हैं और ऐसा मालूम होता है कि कुछ ऐसे पदार्थ भी होते हैं जिनसे प्रोटीनों[1] का निर्माण होता है। यह बात लिवरपूल के बेली[2] तथा उनके साथियों ने प्रयोगशाला में प्रमाणित कर दी है। आजकल यदि ऐसे पदार्थों को यों ही रख छोड़ा जाय तो उनका क्षय हो जाता है अर्थात् सूक्ष्म जीवाणु उन्हें नष्ट कर देते हैं। किन्तु जीवन के आविर्भाव से पहले वे बराबर इकट्ठे होते रहे होंगे और उस समय के समुद्रों का जल गरम-गरम पतले झोल[3] के समान गाढ़ा हो गया होगा। इस समय प्रत्येक जीव को अपना भोजन प्राप्त करने के लिए अपनी शक्ति, अपनी चतुराई तथा अपने भाग्य पर निर्भर रहना पड़ता होगा। जीवन के प्रथम अग्रदूतों के लिए भोजन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध था और अपना अस्तित्व बनाये रखने के संघर्ष में उनके कोई प्रतिद्वन्द्वी भी नहीं थे। उस आद्य वायुमंडल में ऑक्सिजन की कमी अथवा बिलकुल अभाव होने के कारण उन्हें अपनी वृद्धि के लिए आवश्यक ऊर्जा को ऑक्सीकरण[4] से भिन्न किसी अन्य प्रकार की प्रक्रिया द्वारा—वस्तुतः किण्वन[5] के द्वारा—प्राप्त करना पड़ा होगा क्योंकि पैस्ट्यूर के शब्दों में किण्वन ऑक्सिजन विहीन जीवन का ही नाम है।"

हैल्डेन से अतिक्ति, रूसी वैज्ञानिक ओपैरिन भी स्वतन्त्र रूप से जीवन के प्रादुर्भाव के विषय में खोज कर रहा था। वह भी परम्परागत धार्मिक धारणाओं के बोझ से मुक्त था। १९२३ में ही उसकी एक प्रारंभिक पुस्तिका रूसी भाषा में प्रकाशित हो चुकी थी। तेरह वर्ष बाद उसकी पुस्तक "जीवन की उत्पत्ति के विषय में"[6] प्रकाशित हुई। यह पुस्तक अब सर्वमान्य हो गयी है। ओपैरिन की इस पुस्तक के अंग्रेजी अनुवाद के द्वितीय संस्करण में मॉरग्यूलिस[7] ने जो अठारह पृष्ठ की भूमिका लिखी है वह स्वयं भी इस विषय का महत्त्वपूर्ण लेख है।

1. Proteins 2. Baly 3. Soup
4. Oxydation 5. Fermentation
6. 'On the Origin of Life' 7. S. Morgulis

ओपरिन के विश्लेषण की चर्चा के अधिक दूर-दूर तक फैल जाने पर १९५० के बाद जीवनोत्पत्ति[१] सम्बन्धी अनेक महत्त्वपूर्ण अनुसन्धान किये जा चुके हैं। प्रकाश-सश्लेषण विषयक अध्ययन तथा विषाणुओं अर्थात् वायरस[२] के जीव-रासायनिक अन्वेषण भी अब इस क्षेत्र में प्रवेश कर रहे हैं। शक्तिशाली इलेक्ट्रान-सूक्ष्मदर्शियों[३] से बड़े स्थूलाणुओं[४] का विश्लेषण किया जा रहा है। शिकागो विश्वविद्यालय के डा० हैरल्ड यूरे[५] की प्रयोगशाला में स्टैनली मिलर[६] के प्रयोगात्मक अनुसन्धान विशेषतः उल्लेखनीय हैं। इन्होंने मीथेन, अमोनिया, जलवाष्प और हाइड्रोजन का ठीक वैसा ही मिश्रण बनाया जैसे कि पृथ्वी के आद्य वायुमंडल में हमारे अनुमानों के अनुसार विद्यमान था और उसमें से वैद्युत विसर्जन[७] कराया अर्थात् आद्य तडित्[८] की नकल की। परिणाम यह हुआ कि अमीनो-अम्लों की तथा अन्य कार्बनिक यौगिकों की उत्पत्ति हो गयी। हम पहले ही बता चुके हैं कि ये अमीनो-अम्ल ही जीव-शरीरों के सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण संघटन हैं। येल[९] विश्वविद्यालय, वाशिंगटन के कारनेगी इन्स्टीट्यूशन[१०] तथा ओकरिज[११] की प्रयोगशालाओं में भी इस परिणाम की पुनः जाँच की गयी है। इस विषय पर अभी तो और भी बहुत-सा काम किया जायगा क्योंकि इस सीधे-सादे, किन्तु प्राविधिक दृष्टि से कठिन प्रयोग के द्वारा हमने उस क्षेत्र को पार करने के लिए एक लम्बी छलांग भर ली है जो असंदिग्ध रूप से निर्जीव को असंदिग्ध रूप में सजीव से पृथक् करता है। मिलर ने जीवन के आणविक आधारों का जो मार्गदर्शी संश्लेषण किया है उसकी रिपोर्ट पृ० १५२-५३ पर दी गयी है।

जीवन की उत्पत्ति के सम्बन्ध में ओपैरिन तथा उनकी पुस्तक के अनुवादक के विचारों को प्रस्तुत करने का सर्वोत्तम उपाय यही है कि उन्हीं के शब्दों में कुछ मर्मस्पर्शी उद्धरण दे दिये जायें। जो कोई विश्वोत्पत्ति सम्बन्धी इस

1. Biogenesis
2. Virus
3. E ectron microscopes
4. Micro-molecules
5. Dr. Harold Urey
6. Stanley Miller
7. E ectrical discharge
8. Lightning
9. Yale
10. Carnegie Institution
11. Oak ridge

मौलिक प्रश्न का उत्तर धुँधले भूतकाल में खोजना चाहता है उसके लिए ये समस्त उद्धरण अत्यन्त ही अर्थपूर्ण हैं। इनमें अनिवार्यतः पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग करना पड़ा है। अतः सामान्य पाठक शायद इनमें से कुछ को छोड़कर आगे बढ़ जाना पसंद करें।

सबसे पहले तो जीव-रसायनज्ञ ओपैरिन इस बात पर जोर देता है कि दीर्घकाल से चली आनेवाली इस धारणा की अब मृत्यु हो चुकी है कि "सबसे पहले सुव्यवस्थित जीवन किसी अप्राकृतिक सृष्टि द्वारा प्रगट हुआ था" और अब उसे पुनर्जीवित कर सकने की कोई संभावना भी नहीं रही है। इसके अतिरिक्त इस बात का भी समर्थन अब नहीं किया जा सकता कि जड़ द्रव्य और जीवन, दोनों एक ही साथ उत्पन्न हुए थे। जीवरहित आणविक द्रव्य के विकास को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता। तारा-भौतिज्ञ तो यह भी कहना चाहेगा कि जहाँ तक हम पता लगा सके हैं प्राचीन काल से अब तक अणुओं तथा परमाणुओं का भी निरन्तर विकास होता रहा है और अब भी हो रहा है।

"सबसे पहले तो यह आवश्यक है कि जीवन की स्वतः तथा आकस्मिक उत्पत्ति के समर्थक पुराने तर्कों को पुनः प्रस्तुत करने के प्रत्येक प्रयास का हम पूर्णतः परित्याग कर दें। यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि कोई सजीव कितना ही सूक्ष्म क्यों न हो और उसकी रचना देखने में कितनी ही सरल क्यों न मालूम हो, फिर भी कार्बनिक पदार्थों के किसी सादे से घोल की ही तुलना में वह अनन्तगुण अधिक जटिल होता है। उसकी संरचना सम्बन्धी व्यवस्था पूर्णतः निश्चित होती है तथा उसमें गतिकीय स्थायित्व होता है। वह अत्यन्त सुनियोजित रासायनिक प्रति-क्रियाओं के अविरोधी सम्मेलन पर आधारित भी होती है। यह आशा करना मूर्खतापूर्ण होगा कि ऐसी व्यवस्था सादे घोलों अथवा रसों में से अकस्मात् ही थोड़े से समय में उत्पन्न हो सकती है।

"किन्तु इस से इस नतीजे पर पहुँचना आवश्यक नहीं कि जीवित प्राणी और जीवरहित द्रव्य में कोई सर्वथा विरोधी अथवा मौलिक भेद है। नित्य प्रति के अनुभव से हमें यह क्षमता प्राप्त हो गयी है कि हम निर्जीव पदार्थों के बीच में से सजीव को पहचान कर अलग कर सकें। किन्तु प्राणिविज्ञान के उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी के इतिहास से प्रकट हो जाता है कि केवल सजीवों में निहित किसी विशिष्ट "जैव

ऊर्जा"[1] को खोज निकालने के जितने भी विविध प्रयास किये गये वे सब के सब पूर्णतः असफल ही हुए।

ऐसी अवस्था में यह नहीं माना जा सकता कि "जीवन सदा से ही विद्यमान रहा होगा। अभिव्यक्तियों तथा गुणों का जो जटिल सम्मेलन केवल सजीवों का ही विशिष्ट लक्षण है, अवश्य ही जड़ द्रव्य के विकास की प्रक्रिया में ही से प्रगट हुआ होगा। वैज्ञानिक विधि से सुप्रमाणित तथ्यों की सुदृढ़ भूमि से सम्पर्क विच्छेद किये बिना ही इस विकास का चित्र खींचने का... यहाँ कुछ थोड़ा-सा प्रयास किया गया है।" (ओपैरिन की पुस्तक Orgin of Life का मार्ग्यूलिस (S. Morgulis) कृत अंग्रेजी अनुवाद और भूमिका [डोवर बब्लिकेशन, न्यूयार्क द्वारा प्रकाशित द्वितीय संस्करण १९५३] पृष्ठ २४६-२४७)

ज्यों-ज्यों पृथ्वी ठण्डी होती गयी

ग्रहों की उत्पत्ति की उपर्युक्त तीन या अधिक तर्कसंगत प्रक्रियाओं में से चाहे किसी के भी द्वारा हमारे सौर परिवार की उत्पत्ति हुई हो, तो भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि एक समय पृथ्वी की अवस्था ऐसी थी कि उसके पृष्ठभाग की चट्टानें पिघली हुई थीं—कम से कम उत्तप्त तो थीं ही—तथा उसका वायुमंडल भी बहुत गरम था। फलतः तब कुछ समय तक हाइड्रोजन, हीलियम तथा हलके परमाणुभार की अन्य गैसें इस समय से अधिक मात्रा में निकल-निकल कर आकाश में उड़ती जा रही थीं। इसके अतिरिक्त पृथ्वी के रासायनिक संघटन में जो परमाणु आज विद्यमान हैं वही तब भी थे। किन्तु ज्यों-ज्यों शैल, समुद्र तथा वायु अपनी ऊष्मा को अन्तरतारकीय शीत आकाश में विकिरित करते जा रहे थे त्यों-त्यों आणविक यौगिकों का भी विकास हो रहा था।

"इस बात में किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता कि पृथ्वी के प्राचीनतम इतिहास में (विशेषकर हाइड्रो-कार्बनों के अस्तित्व के प्रारंभिक काल में) पृथ्वी के पृष्ठ की भौतिक अवस्था वर्तमान अवस्था से भिन्न थी। टेम्परेचर अधिक ऊँचा था, वायुमंडल का संघटन भिन्न प्रकार

1. Vital energy

का था, प्रकाश की स्थिति भी और तरह की थी, इत्यादि इत्यादि। किन्तु इसमें ऐसी कोई बात नहीं है जो असाधारण अथवा रहस्यमयी समझी जा सके। वस्तुतः बात बिलकुल उलटी है। इन परिस्थितियों से तो हम भली-भाँति परिचित हैं और न केवल हम अपनी कल्पना में आसानी से उनका चित्रण कर सकते हैं, किन्तु अपनी प्रयोगशालाओं में हम उनका बहुत कुछ पुनर्निर्माण भी कर सकते हैं। फिर भी, उनसे यह पूरी तरह स्पष्ट नहीं होता कि पृथ्वी पर जीवन का प्रादुर्भाव कैसे हुआ। इस असफलता को समझना कठिन नहीं है क्योंकि जीवन के आदि कारण की समस्या हल करने के लिए केवल बाह्य भौतिक परिस्थितियों का ही ज्ञान काफी नहीं है।

"यह भी आवश्यक है कि अन्तिम विश्लेषण के अनुसार जिन पदार्थों से सजीव प्राणियों की सृष्टि हुई है उनके नैसर्गिक गुण-धर्मों का भी विचार कर लिया जाय। ज्ञात बाह्य परिस्थितियों के प्रभाव से उन पदार्थों के आचरण का अध्ययन करने से हमें यह पता लग सकेगा कि कार्बनिक पदार्थों के विकास ने किस मार्ग का अनुसरण किया था। इस समस्या पर इस ढंग से विचार करने का औचित्य इस तथ्य से प्रगट होता है कि उपर्युक्त विकासीय प्रक्रिया के केवल प्रारम्भिक काल में ही परिस्थिति की दशा हमारी वर्तमान प्रकृत परिस्थिति से भिन्न थी। आद्य समुद्रों के समय से ही जिस परिस्थिति में कार्बनिक पदार्थ रहे हैं वह इस समय की परिस्थिति से इतनी अधिक मिलती-जुलती थी कि आज जो कुछ हो रहा है उसके ज्ञान के आधार पर हम रासायनिक रूपान्तरों की प्रगति के सम्बन्ध में असंदिग्ध अनुमान लगा सकते हैं। [ओपैरिन, पृष्ठ १०५-१०६]

"हुआ यह कि जब हमारी पृथ्वी इतनी ठंडी हो गयी कि जलवाष्प द्रवरूप में परिणत हो गयी और पृथ्वी प्रथम बार उष्ण जल से आच्छादित हो गयी तब इस जल में ऐसे कार्बनिक पदार्थ घुले हुए थे जिनके अणु कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सिजन तथा नाइट्रोजन के संयोजन से बने थे। ऐसे कार्बनिक पदार्थों की रासायनिक क्रियाशीलता भयंकर होती है। अतः उनकी-विविध प्रकार की रासायनिक प्रतिक्रियाएँ न केवल परस्पर, किन्तु जल के तत्वों के साथ भी होने लगीं। इन प्रतिक्रियाओं का परिणाम यह हुआ कि जन्तुओं तथा पौधों के शरीर में जो जटिल तथा उच्च परमाणुभार वाले

कार्बनिक यौगिक इस समय विद्यमान हैं उन्हीं के सदृश अनेक यौगिकों की उत्पत्ति हो गयी। अवश्य ही इसी प्रक्रम से प्रोटीन भी बने होंगे जो जैविक दृष्टिकोण से सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण यौगिक हैं। [ओपैरिन, पृष्ठ २४८]"

गरम पतले जूष में अद्‌भुत घटनाएँ

पिछले पृष्ठों में बताया जा चुका है कि जीव की पूर्णतः संतोषप्रद परिभाषा आसानी से नहीं दी जा सकती। "अपनी व्यवस्था को चिरस्थायी रख सकने वाला आणविक संघटन"––यह परिभाषा तो "चिरस्थायी रख सकने वाला" शब्दोंको रेखांकित कर देने पर भी अत्यन्त प्राणहीन है। मॉर्ग्यूलिस को "जीव की उत्पत्ति" पद पर आपत्ति है क्योंकि इन शब्दों से किसी आकस्मिक तथा एकाकी घटना का––निर्जीव स्थिति से एक ही छलांग में स्पन्दनयुक्त सजीव स्थिति में पहुँच जाने का––संकेत मिलता है। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि यह अनुमान सही नहीं हो सकता। उनका सुझाव है कि ओपैरिन की पुस्तक के शीर्षक के लिए अधिक उपयुक्त शब्द ये हैं––"जीव के अस्तित्व में आने का प्रक्रम"। किन्तु प्रस्तुत लेखक को "अस्तित्व" शब्द भी खटकता है।

"अधिकतर लोगों को"जीव" शब्द से ऐसी चीज का बोध होता है जो रेंगती है या खिसकती है या कम से कम अपने शरीर को अच्छी तरह जुड़े हुए अवयवों के द्वारा न सही, अन्ततः अस्थायी प्रोटोप्लाज्मीय प्रवर्धों[1] अथवा रोमिकाओं[2] अथवा पतली कशाओं[3] के द्वारा हिलती-डुलती रहती है। शायद यह तो आवश्यक नहीं कि जीव की कल्पना झूमते हुए हाथी के रूप में की जाय, किन्तु साधारण मनुष्य संभवतः उसकी कल्पना अति सूक्ष्म आकार के एक कोषीय[4] प्राणी के अतिरिक्त अन्य किसी भी रूप में नहीं कर सकता। परन्तु सबसे कम विकसित एक-कोषीय जीव की भी संरचना तथा उसके कार्य इतने जटिल होते हैं कि उनको देखकर दिमाग चकरा जाता है और वंशानुक्रम[5] के अनुसार उसमें तथा जीवन के प्रारम्भिक रूप में लाखों-करोड़ों वर्षों का व्यवधान है। ओपैरिन के अत्यन्त

1. Protrusions 2. Gilia 3. Flagella
4. Unicellular 5. Geneology

विश्वासोत्पादक विवेचन के अनुसार संभवतः यह प्रक्रम प्रायः दो अरब वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ था। उस समय आद्य समुद्र में—यदि हैल्डेन के सुन्दर शब्दों में कहें तो उस समय के "गरम पतले जूष" में से—शायद पहले-पहल अणुओं के अति सूक्ष्म आकार वाले कलिलीय अर्थात् कोलॉइडीय संचय[1] बन कर पृथक् होने लगे थे।

"सामान्य मनुष्यों से विपरीत, जीव-वैज्ञानिक, वनस्पति-जीवन तथा जन्तु-जीवन को पृथक् करने वाली ही नहीं, किन्तु सजीव तथा निर्जीव को पृथक् करनेवाली भी, किसी सीमान्त रेखा से परिचित नहीं है क्योंकि ऐसे विभेदन पूर्णतः हमारी धारणाओं और मान्यताओं पर आधारित हैं। वास्तविकता से उनका कोई सम्बन्ध नहीं। (ओपैरिन की पुस्तक की मॉर्ग्यूलिस द्वारा लिखित अनुवादकीय भूमिका, पृष्ठ vii—viii]

"जीव की उत्पत्ति कोई ऐसी घटना नहीं थी जो किसी विशेष स्थान में तथा किसी विशेष समय में हुई हो। वह तो धीरे-धीरे तथा क्रमशः होने वाला प्रक्रम था जो कल्पनातीत दीर्घकाल तक पृथ्वी पर होता रहा था। जीवधारियों की समस्त विभिन्न जातियों के विकास में जितना समय लगा था उसकी अपेक्षा विकास के इस प्रक्रम में करोड़ों वर्ष ज्यादा लगे थे। जीव की उत्पत्ति के सिद्धान्त के लिए ओपैरिन का एक बहुत बड़ा योगदान यह था कि उसने जीवन के प्रादुर्भाव की आवश्यक भूमिका के रूप में बड़े लम्बे रासायनिक विकास की परिकल्पना प्रस्तुत की थी। हमें यह समझ लेना चाहिए कि विकास के इस प्रक्रम के तीन सर्वथा भिन्न रासायनिक चरण थे—पहले अकार्बनिक रसायन उससे कार्बनिक रसायन, तब कार्बनिक रसायन से जीव-रसायन (मॉर्ग्यूलिस, पृष्ठ vi–vii]

"जब तक जीव-कोषिका को ही जीवन की इकाई समझा जायगा तब तक तो जीव की उत्पत्ति अवश्य ही रहस्यमय बनी रहेगी। किन्तु रसायन के पूर्वकालीन परमाणु की ही तरह, प्राणिविज्ञान में कोषिका ने भी अब चरम इकाई के रूप में अपनी पूर्व प्रतिष्ठा को खो दिया है। परमाणु-सिद्धान्त तथा कोषिका-सिद्धान्त दोनों ही अब अप्रचलित हो गये हैं।

1. Colloidal Systems

"अविभाज्य" परमाणु की तरह ही कोषिका भी अब अत्यन्त सूक्ष्म तथा पृथक्-पृथक् कणिकाओं से निर्मित सुसंबद्ध तथा अतीव सुव्यवस्थित संगठन मानी जाती है। इसमें अभी सन्देह है कि जीवन की चरम कणिकाओं का पता चल गया क्योंकि इन इकाइयों में से कुछ स्वयं भी अति सुव्यवस्थित सत्ताएँ प्रमाणित हुई हैं। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि "कोषिका ही जीवन की इकाई है" यह धारणा भी अब परमाणु की धारणा के साथ ही तिरस्कृत तथा परित्यक्त हो गयी है। (मॉर्ग्यूलिस, पृष्ठ xvi)

"इस बात की कल्पना अवश्य की जा सकती है कि ऊष्मा-गतिकीय[1] नियमानुसार रासायनिक विकास की प्रगति निर्जीव अवस्था से सजीव अवस्था में परिवर्तित हुए बिना भी निरन्तर होती रह सकती थी। किन्तु जब कार्बनिक द्रव्य में उच्च कोटि की व्यवस्था सम्पन्न हो गयी और केवल संयोग की मध्यस्थता से ही इसी प्रकार के सुसंरचित पदार्थों की श्रृंखला के निर्माण के द्वारा उसमें विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियाँ प्रगट हो गयीं, केवल तब ही प्रकृति में आद्य जीवन का प्रादुर्भाव एक ऐसी नवीन विमिति[2] में हुआ जिससे द्रव्य को यह क्षमता प्राप्त हो गयी कि वह स्वयं ही अपनी व्यवस्था को (प्रजनन के द्वारा) चिरस्थायी बनाये रख सके। प्राकृतिक चुनाव[3] ने आकस्मिक परिवर्तनों की सहायता से विकास की प्रगति को अनेक विभिन्न मार्गों में प्रवृत्त कर दिया और समस्त जीवों को अनिवार्यतः इन्हीं का अनुसरण करना पड़ा। (मॉर्ग्यूलिस, पृष्ठ xxii)"

निर्जीव से सजीव की ओर

यदि हम थोड़ी देर के लिए भौतिक विज्ञान के कठोर आदर्श की अवज्ञा कर सकें तो हम कह सकते हैं कि यह संसार बहु-विमितीय[4] है—केवल दिक्-कालीय व्यवस्था[5] ही नहीं है। एक संभव विमति है चेतना[6] जिसके लिए शायद

1. Thermodynamical
2. Dimension
3. Natural Selection
4. Multi-dimensional
5. Space-time scheme
6. Consciousness

नवीन प्रकार के प्राकृतिक नियमों की आवश्यकता पर पड़ सकती है। दूसरी है जीवन। जो जीव रासायनिक नियम इस प्रामाणिक दिक्-कालीय संसार के लिए स्पष्टतः व्यक्त हैं उनकी तुलना में इस नवीन विमिति-जीवन के लिए आवश्यक नियमावली निश्चय ही अधिक जटिल है। ओपैरिन ने हमारा ध्यान उन नवीन गुणधर्मों की ओर आकर्षित किया है जो जैव-रासायनिक विकास में प्रगट हुए हैं---अर्थात् कार्बनिक रसायन के सरलतर नियमों में जो नवीन कोलाइड-रासायनिक[1] व्यवस्था निविष्ट हो गयी है उसकी ओर ये नवीन गुण-धर्म हमारे लिए आवश्यक इंगित हैं, मार्गदर्शक सूत्र हैं तथा चुनौती भी हैं। संभव है कि इनके द्वारा हम जीवन का ऐसा विवरण प्राप्त कर सकें और उसकी ऐसी परिभाषा ढूंढ़ सकें जिससे रासायनशास्त्री, जीव-विज्ञानी और शायद दार्शनिक भी सन्तुष्ट हो जायें।

"इस संक्षिप्त सर्वेक्षण का अभिप्राय यह प्रदर्शित करना है कि कार्बनिक पदार्थों का विकास किस प्रकार क्रमशः होता है और किस प्रकार उनमें साधारण द्रव्य के पूर्ववर्ती सरल तथा मूल गुणधर्मों के अतिरिक्त उच्चतर कोटि के नियमों से नियंत्रित नये-नये गुणधर्म निविष्ट होते जाते हैं, पहले तो कार्बनिक पदार्थ सरल विलयनों के रूप में विद्यमान थे जिनका आचरण उनके संघटक परमाणुओं के गुणों द्वारा तथा आणविक संरचना के रूप में उन परमाणुओं के विन्यास के द्वारा नियंत्रित होता था। किन्तु धीरे-धीरे अणुओं के आकार तथा जटिलता में वृद्धि हो जाने के कारण नये गुणधर्मों का आविर्भाव हुआ और कार्बनिक रसायन के सरलतर नियमों में नवीन कोलाइड-रासायनिक व्यवस्था निविष्ट हो गयी। ये नये गुण अणुओं के विन्यास तथा पारस्परिक सम्बन्धों द्वारा निर्धारित हुए। किन्तु कार्बनिक द्रव्य का यह स्वरूप अब भी आद्य जीवों की उत्पत्ति के लिए पर्याप्त न था। इसके लिए इन कोलाइडीय समुदायों में विकास के प्रक्रम के द्वारा ऐसे उच्चतर कोटि के गुणों का प्रकट होना अभी बाकी था जिनके प्रभाव से द्रव्य-संगठन के लिए इससे अगली अधिक समुन्नत अवस्था को प्राप्त करना संभव हो जाता। इस प्रक्रम में जैविक सुव्यवस्था तो अभी से स्पष्टतः व्यक्त होने लगी थी। इसके बाद, संख्या की प्रतियोगितापूर्ण

1. Colloidal-Chemical

वृद्धि ने, अस्तित्व हेतुक संघर्ष या अस्तित्व के लिए संग्राम[१] ने, तथा अन्त में प्राकृतिक चुनाव[२] ने द्रव्य-संगठन को वह रूप दे दिया जो आज के जीवित प्राणियों का विशिष्ट लक्षण है। (ओपैरिन, पृष्ठ २५०-२५१)

"जीवन का प्रादुर्भाव कार्बनिक रसायन से जैविक रसायन में, निर्जीव द्रव्य से सजीव द्रव्य में तथा प्रकृति के जीवन-रहित क्षेत्र से जीवित क्षेत्र में संक्रमण था। किन्तु जीवन है क्या? क्या यह कोई नया गुण है जो विकास के प्रक्रम में द्रव्य ने प्राप्त कर लिया है अथवा यह कार्बनिक द्रव्य के नूतन विन्यास का ही कोई परिणाम है? निर्जीव और सजीव की पहचान के लिए उत्तेजनाशीलता[३], संचरणशीलता,[४] संवर्धन[५] तथा प्रजनन[६] उत्तम सहायक हो सकते हैं, किन्तु यह बात विवादास्पद है कि ये प्राथमिक जीवन के मूल लक्षण हैं। ऐसे अनेक प्रबल कारण हैं जो हमें यह मानने के लिए बाध्य करते हैं कि पृथ्वी के इतिहास में एक युग ऐसा भी था जब यहाँ सजीवों का पूर्णतः अभाव था। अतः सजीवों के मूल गुण और लक्षण कोषिकीय सजीवों के प्रादुर्भाव से पहले ही अत्यन्त जटिल प्रोटीन के स्थूल अणुओं में अवश्य ही प्रगट हो गये होंगे।

"सजीवों के संघटक द्रव्यों में न्यूक्लियिक[७] अम्ल युक्त प्रोटीन ही ऐसे पदार्थ हैं जिनके विषय में हमें मालूम है कि उनमें बढ़ने की तथा स्वतः द्विगुणन[८] अथवा प्रतिरूपण[९] द्वारा प्रत्यक्षतः प्रजनन की क्षमता होती है। किन्तु कार्बनिक यौगिकों के रूप में न तो बढ़ सकते हैं और न प्रजनन ही कर सकते हैं। यद्यपि वाइरस[१०] और जीन[११] दोनों ही न्यूक्लियो-प्रोटीन[१२] जाति के

1. Struggle for existence
2. Natural selection
3. Irritability
4. Mobility
5. Growth
6. Reproduction
7. Nucleic acid
8. Self-duplication
9. Replication
10. Virus
11. Jene
12. Nucleo-protein

यौगिक हैं तथापि जब तक वे किसी उपयुक्त कोषिका अथवा केन्द्रक[1] में निविष्ट नहीं होते तब तक न तो वे अपना द्विगुणन कर सकते हैं और न प्रतिरूपण। यदि केवल प्रजनन-क्षमता की ही दृष्टि से देखा जाय तो क्या ये न्यूक्लियो-प्रोटीन सजीव हैं या अजीव? [मॉर्ग्यूलिस, पृष्ठ XI]

डार्विन[2] के विकासीय नियम की झलक जीवन की इस प्राथमिक प्राक्-कोशिकीय अवस्था में भी विद्यमान है। जो सब से अधिक परिस्थिति के अनुकूल हो उसी के जीवित रह सकने का नियम न केवल पौधों, जन्तुओं तथा मनुष्यों पर लागू है, किन्तु सूक्ष्म-जगत् में भी उसका उतना ही आधिपत्य है।

"प्राकृतिक चुनाव[3] ने आद्य कोलॉइडीय संगठनों के तथा सरलतम सजीवों के समस्त मध्यवर्ती रूपों को नष्ट करके बहुत पहले ही इस भूतल से सर्वथा लुप्त कर दिया था और जहाँ भी बाह्य परिस्थितियाँ जीवन के विकास के लिए अनुकूल थीं वहीं हमें असंख्य पूर्णतः विकसित तथा उत्कृष्टतः संगठित जीव विद्यमान मिलते हैं। इस समय यदि वही पूर्ववर्ती कार्बनिक द्रव्य कहीं उत्पन्न हो जाय तो जल, स्थल और वायु में उपस्थित असंख्य जीवाणु[4] तुरन्त ही उसे खाकर नष्ट कर देंगे। इस कारण कार्बनिक पदार्थों के विकास का और सजीवों की उत्पत्ति का पिछले पृष्ठों में वर्णित प्रक्रम इस समय प्रत्यक्षतः प्रेक्षणीय नहीं है। इस प्रक्रम के पृथक्-पृथक् चरणों के बीच में इतने भयंकर दीर्घकाल का व्यवधान था कि प्रयोगशालाओं में जो परिस्थितियाँ प्रस्तुत की जा सकती हैं उनमें प्रकृति-घटित उस प्रक्रम को पुनः प्रत्यक्ष करना संभव नहीं है। [ओपैरिन, पृष्ठ २५१]

पिछले दो अरब (२×१०^९) वर्षों में पृथ्वी की परिस्थितियों में इतना मौलिक परिवर्तन हो गया है कि अब जीवसर्जन संभव नहीं रहा। यदि इस समय भी जीवसृष्टि का प्रक्रम सक्रिय हो जाय तो ओपैरिन के मतानुसार, पृथ्वी पर विद्यमान अगणित हिंस्र जीव तुरन्त उसके उत्पादनों को नष्ट कर देंगे। [मॉर्ग्यूलिस, पृष्ठ x]"

1. Nucleus
2. Darwin
३. Natural selection
4. Micro-organism

ओपैरिन की पुस्तक के अन्तिम अनुच्छेद में यह विश्वास व्यक्त किया गया है कि यद्यपि अभी हमारी इस खोज की सफलता का उत्सव मनाने का समय नहीं आया है, किन्तु यह अवश्य ही स्पष्ट हो गया है कि लक्ष्य अब हमारी पहुँच से बाहर नहीं है।

"विकास के जिस प्रक्रम का यहाँ वर्णन किया गया है उसके प्रत्येक चरण का अलग-अलग अध्ययन करने की महाकठिन समस्या भी हमारे समक्ष विद्यमान है। हमें प्रोटीनों के गुणों का अन्वेषण करना है, और कोलाइडीय कार्बनिक पदार्थों की, ऐनजाइमों[1] की तथा प्रोटोप्लाज्मीय संगठनों की संरचनाओं का अध्ययन करना है। रास्ता लंबा और कठिन है, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उस पर चलकर अन्त में हमें जीवन के स्वरूप का ज्ञान अवश्य प्राप्त हो सकेगा। सजीव का निर्माण या संश्लेषण अभी दूर की बात अवश्य है, किन्तु यह लक्ष्य ऐसा नहीं है जिस पर इस रास्ते से पहुँचा न जा सके। [ओपैरिन, पृष्ठ २५२]"

प्रेक्षण द्वारा सिद्धान्त की जाँच

स्टैनली मिलर[2] के उपर्युक्त अनुसंधान के ऐतिहासिक महत्त्व के कारण उसकी रिपोर्ट का सारांश पूरा का पूरा यहाँ उद्धृत कर दिया गया है। इसके अत्यन्त प्राविधिक ब्यौरों तथा अत्यन्त विशिष्ट प्रकार की भाषा से ही पाठक की समझ में आ जायगा कि सजीवों के प्रादुर्भाव सम्बन्धी जैव-रासायनिक अनुसन्धान कितना कठिन तथा भ्रामक व्यापार है।

"मीथेन (CH_4), अमोनिया (NH_3), जलवाष्प (H_2O) तथा हाइड्रोजन (H_2) गैसों का ऐसा मिश्रण बनाया गया जैसा कि संभवतः पुरातन काल में पृथ्वी के वायुमंडल में विद्यमान था और उस मिश्रण में से लगभग एक सप्ताह तक बराबर विद्युत् स्फुलिंग चलाकर और विद्युत् का शब्दहीन विसर्ग कराकर यह मालूम किया गया कि इससे किन-किन कार्बनिक यौगिकों का संश्लेषण हो सकता है। कई प्रकार के उपकरणों का विवरण

1. Enzymes 2. Stanley Miller

दिया गया है और उनके निर्माण के कारण भी बताये गये हैं। इस क्रिया के बाद अवशिष्ट गैसों का विश्लेषण किया गया जिससे पता चला कि अब उस मिश्रण में पहलेवाली गैसों के अतिरिक्त कार्बन मोनॉक्साइड (CO) कार्बन डाईऑक्साइड (CO_2) तथा नाइट्रोजन (N_2) भी विद्यमान थे। एक लाल रंग का यौगिक भी उत्पन्न हुआ जिसमें कुछ लेशधातुओं के अंश भी मिले हुए मालूम देते थे। इसके अतिरिक्त कुछ पीले रंग के यौगिक भी बन गये जो सम्भवतः अम्लीय[१], क्षारीय[२] तथा उभयधर्मी[३] बहुलक[४] थे। आयन-विनिमयी गंधरालों[५] के द्वारा इस मिश्रण के अम्लीय, क्षारीय तथा उभयधर्मी अंश अलग-अलग किये गये। जो अमीनो-अम्ल थे उनके क्रोमेटोग्राफ[६] तो डॉविक्स[७]-५० पर तथा साधारण अम्लों के सिलिका[८] पर प्राप्त किये गये। ग्लाइसीन-डी,[९] एल-अलेनिन[१०] बीटा-अलैनिन[११] सारकोसिन-डी,[१२] एल-अल्फा अमीनो-एन ब्यूटिरिक अम्ल[१३] तथा अल्फा-अमीनो-आइसो ब्यूटिरिक अम्ल[१४] पत्र-क्रोमेटोग्राफी[१५] के द्वारा तथा उनके व्युत्पन्नों[१६] के गलनांकों[१७] को नापकर पहचान लिये गये हैं। अनेक अमीनो अम्ल जिनकी पहचान नहीं हो पायी अच्छी मात्राओं में और लगभग २५ अन्य अमीनोअम्ल थोड़ी मात्राओं में उत्पन्न हुए। बाकी जो अम्लीय अंश बचा उसका अधिक भाग ग्लाइकोलिक-डी,[१८] एल-लैक्टिक,[१९] ऐसेटिक[२०] और प्रोपियानिक[२१] अम्लों का

1. Acidic 2. Basic 3. Ampholytic
4. Polymers 5. Ion-exchange resins
6. Chromatograph 7. Dowex-50
8. Silica 9. Glycine-d
10. l-alanine 11. β-alanine
12. Sarcosine-d 13. l-∝-amino-n-butyric acid
14. ∝-amino-isobutyric acid 15. Paper chromctography
16 Derivatives 17. Melting point
18. Glycolic-d 19. l-lactic
20. Acetic 21. Propionic

था। इन सब यौगिकों के परिमाणात्मक अनुमान भी दे दिये गये हैं। अज्ञात संघटन के पोलीहाइड्रॉक्सी[1] यौगिकों के अस्तित्व के प्रमाण भी दिये गये हैं। हाइड्रोसायनिक अम्ल (HCN) तथा कई ऐल्डीहाइड[2] भी इस वैद्युत विसर्ग के प्रत्यक्ष उत्पादन हैं। यद्यपि इस बात के प्रमाण पर्याप्त नहीं हैं, फिर भी ऐसा मालूम होता है कि हाइड्रॉक्सी तथा अमीनों-अम्लों का संश्लेषण उस विलयन में विद्यमान हाइड्रॉक्सी तथा अमीनो नाइट्राइलों[3] के द्वारा हुआ है। इन प्रयोगों से पृथ्वी के निर्माण तथा जीवन के प्रादुर्भाव का जो सम्बन्ध है उसका भी विवेचन किया गया है।"

इन प्रयोगों के परिणामों के विषय में जिनसे इस बात का कुछ संकेत मिलता है कि कई अरब वर्षों पहले क्या हुआ होगा, मिलर ने जो सतर्कतापूर्ण विवेचन किया है उसमें से कुछ उद्धरण नीचे दिये जाते हैं।

"यदि इन प्रयोगों द्वारा पृथ्वी के अवकारक[4] वातावरण का कुछ थोड़ा-सा भी निदर्शन होता है तो हमें न केवल यह मालूम हो जाता है कि कार्बनिक यौगिकों का उत्पादन आसानी से हो गया होगा, किन्तु यह भी कि पृथ्वीतल के कार्बन का अधिकांश भाग कार्बन यौगिकों के रूप में समुद्रों में घुला हुआ रहा होगा। ....

"वस्तुत: ये विचार केवल अनुमान मात्र ही हैं, क्योंकि हमें यह नहीं मालूम कि जब पृथ्वी का निर्माण हुआ था उस समय सचमुच ही उसका वातावरण अवकारक था। उस समय के बाद के चार-पाँच अरब वर्षों में भूविज्ञानी अभिलेख[5] अधिकांशत: नष्ट हो गये हैं। अत: इस बात का कोई प्रत्यक्ष प्रमाण अब तक नहीं मिला है। फिर भी यहाँ जिन प्रयोगों का विवरण दिया गया है उनके परिणामों से इस परिकल्पना का समर्थन होता है कि पृथ्वी पर अवकारक वातावरण अवश्य ही विद्यमान था क्योंकि यह प्रमाणित किया जा सकता है कि जीव-शरीरों के संघटक कार्बनिक यौगिकों का संश्लेषण ऑक्सीकारक[6] वातावरण में नहीं हो

1. Poly-hydroxy
2. Aldehydes
3. Nitriles
4. Reducing
5. Geological records
6. Oxidising

सकता। यदि यह प्रमाणित हो जाता है कि ये कार्बनिक यौगिक अवकारक वातावरण में संश्लेषित हो सकते हैं तो इसका एक परिणाम यह भी निकलता है कि प्रारम्भिक दिनों में पृथ्वी का वातावरण भी अवकारक ही था और यह भी कि जब पृथ्वी का वातावरण ऐसा था तब ही कार्बनिक यौगिकों से युक्त समुद्रों में से जीवन की उत्पत्ति हुई थी। इस तर्क का आधार इस परिकल्पना पर है कि जीवन की उत्पत्ति के लिए पहली आवश्यकता यह है कि प्रथम जीव-शरीर का निर्माण करने योग्य कार्बनिक यौगिकों के सदृश पदार्थ पहले से ही बहुत बड़ी संख्या में विद्यमान रहने चाहिए।

"इस तर्क के साथ यदि दूसरा तर्क यह भी मिला दिया जाय कि इस ब्रह्माण्ड में हाइड्रोजन की बहुत प्रचुरता है तो अवकारक वातावरण की परिकल्पना का आधार इतना मजबूत हो जाता है कि पृथ्वी के निर्माण तथा जीवन के प्रादुर्भाव के समस्त भविष्य विवेचनों में इसे ध्यान में रखना आवश्यक है।"

जो कार्बनिक यौगिक अवश्य ही सजीवों के अग्रदूत रहे होंगे उनके संश्लेषण सम्बन्धी मिलर के अनुसंधानों का एबेलसन[1] द्वारा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विस्तार किये जाने की रिपोर्ट वाशिंगटन के कार्नेगी इन्स्टीट्यूट की भू-भौतिकीय प्रयोगशाला[2] से प्राप्त हुई है। परिकल्पित "आद्य वातावरण" प्रस्तुत करने के लिए इन्होंने मिलर द्वारा प्रयुक्त मीथेन, अमोनिया, जलवाष्प तथा नाइट्रोजन के मिश्रण से भिन्न अन्य मिश्रणों पर प्रयोग किये। परिणाम यह निकला कि सभी मिश्रणों में अमीनो-अम्ल संश्लेषित हो गये। उदाहरण के लिए, अमोनिया के स्थान में नाइट्रोजन और मीथेन के स्थान में कार्बन मोनॉक्साइड तथा कार्बन डाइऑक्साइड का उपयोग किया गया। प्राक्तन ज्वालामुखियों ने इन्हीं गैसों को प्रचुर मात्राओं में उत्पन्न किया होगा। उनकी रिपोर्ट का संक्षिप्त सारांश यह है।[3]

"पृथ्वी के प्रारम्भिक इतिहास में वातावरण की जो स्थिति संभवतः रही होगी उसी जैसी स्थिति को पुनः प्रस्तुत करने के लिए अनेक प्रकार के

1. P. H. Abelson
2. Geophysical laboratory of the Carnegie Institute of Washington
3. Science, Nov. 9, 1956

मिश्रण बनाये गये जिनसे अलैनिन, बीटा-अलेनिन, ग्लाइसिन तथा सार्कोसिन के समान कई अमीनो-अम्लों का संश्लेषण हो गया। गैसों के जिन मिश्रणों में वैद्युत विसर्जन कराया गया था उनमें निम्नलिखित भी थे। $CO_2+N_2+H_2+H_2O$; $CO+N_2+H_2+H_2O$; $CO_2+NH_3+H_2+H_2O$। प्रत्येक मिश्रण में अमीनों-अम्लों की उत्पत्ति हुई। $CH_4+NH_3+H_2O$ के मिश्रण से मिलर ने जो प्रयोग पहले किये थे उसका भी समर्थन हो गया।

रसायन, शरीरक्रियाविज्ञान[1] तथा वाइरस-विज्ञान[2] की प्रयोगशालाओं से प्रकाशित कई हाल के अनुसंधान-पत्रों का तथा पहले के भी जीवोत्पत्ति सम्बन्धी कई विचक्षण चिन्तनों का भी हवाला दिया जा सकता है, किन्तु उपर्युक्त उद्धरणों तथा तर्कों से ही यह काफी अच्छी तरह प्रगट हो जाता है कि जीव-सर्जन अब अनुसन्धान का कोई निराशापूर्ण क्षेत्र नहीं है। स्थूलाणुओं का विकास प्राकृतिक तो है ही। किन्तु ऐसा मालूम होता है कि ये अणु विकास के लिए उत्सुक भी हैं। जैसा कि डा० जार्ज वाल्ड[3] ने कहा है, "उपयुक्त अणुओं को अनुकूल वातावरण में बस अवसर मात्र मिल जाय। हमें उनके लिए कुछ भी नहीं करना पड़ेगा। वे अपने लिए स्वयं ही बहुत कुछ कर लेंगे।"

1. Physiology 2. Virology 3. Dr. George Wald

अध्याय १०

मानव-प्रतिक्रिया क्या होनी चाहिए ?

रासायनिक प्रयोगशालाओं में तथा ताराभौतिकी, भू-भौतिकी और जीव-भौतिकी के क्षेत्रीय तथा प्रयोगशालाओं में किये गये अनुसन्धानों के द्वारा विश्व-नाटक के रहस्य का जैसा उद्‌घाटन हो रहा है उससे इस अनुसंधानकर्ता प्राणी के "तंत्रिकाउपकरण"[१] के विषय में—मनुष्य के मन के विषय में—जिज्ञासा जाग्रत होती है कि किस प्रकार वह कभी ठीक और कभी गलत रास्ता दिखाता है और अन्य जन्तुओं के मन से उसकी समानता अथवा असमानता कितनी है। इस अन्तिम अध्याय में हम जन्तु-जगत् की ज्ञानेन्द्रियों का भी कुछ संक्षिप्त जिकर करेंगे। मानव जाति के कुछ भयानक भविष्य संकटों पर भी विचार करेंगे और इस प्रश्न का विवेचन करेंगे कि इन विषयों का जो ज्ञान इस समय उपलब्ध है उसके सम्बन्ध में मनुष्य की तर्कसंगत प्रतिक्रिया क्या होनी चाहिए। सच तो यह है कि इस का उत्तर व्यावसायिक धर्मशास्त्रियों को, दार्शनिकों को तथा मानव संस्कृति के विद्वानों को देना चाहिए। किन्तु कुछ उत्तर चिन्तनशील सामान्य मनुष्यों से भी तो प्राप्त हो सकता है और इन्हीं की प्रतिक्रिया से हमें सब से अधिक मतलब है।

लेखक पुन: यह कह देना चाहता है कि सच्चे वैज्ञानिक का कर्त्तव्य तो इतना ही है कि ऐसी सामग्री एकत्रित कर दे और यथाशक्ति उसकी व्याख्या भी कर दे जिससे अन्य विश्लेषक तथा चिन्तक व्यक्ति दर्शनों का निर्माण कर सकें और यदि उनकी इच्छा हो तो उद्देश्य तथा भविष्य कार्यक्रम भी निर्धारित कर सकें।

इस पुस्तक के उपशीर्षक को ध्यान में रखकर, हमें यह जानने का प्रयत्न करना चाहिए कि पिछले कुछ वर्षों में जो ब्रह्माण्डीय तथ्य प्रकाश में आये हैं

1. Neurotic equipment

उनके सम्बन्ध में मनुष्य की क्या-क्या प्रतिक्रियाएँ हुई हैं। कम से कम कुछ प्रतिरूपी प्रतिक्रियाओं का निदर्शन तो करना ही चाहिए।

तारों के, आकाश के, काल के तथा मनुष्य के सम्बन्ध में जिस ज्ञान की चर्चा यहाँ की गयी है उसकी प्रथम प्रतिक्रिया तो संभवतः आश्चर्य तथा अविश्वास के ही रूप में होगी और इसके बाद शायद यह भावना भी उत्पन्न होगी कि हम ऐसी बातों के विषय में और अधिक सुनना नहीं चाहते। "ये बातें बहुत घकरा देने वाली हैं और हम जीवन में इतने व्यस्त हैं कि इनके लिए हमें अवकाश ही नहीं है।"

अधिकतर मनुष्यों की प्रतिक्रिया तो ऐसी ही मालूम पड़ती है, किन्तु सौभाग्य से यह बहुधा अस्थायी होती है और इसके पश्चात् सामान्यतः जिज्ञासा तथा विस्मय की उत्पत्ति होती है, संशय मिटने लगते हैं, मन चमत्कृत होने लगता है और तब अत्यन्त आदर की भावना जाग्रत हो जाती है। जो केवल सरलतम मूल तथ्यों से ही सन्तुष्ट न होकर और अधिक जानना तथा सोचना चाहते हैं वे इस दूसरी मनः-स्थिति में अनेक प्रश्नों पर विचार भी करने लगते हैं।

"इस जगत् में मेरे अपने महत्त्व की दृष्टि से इस सबका क्या अर्थ है?"

"प्रचलित धार्मिक विश्वासों की दृष्टि से—चाहे वे प्रामाणिक ईसाई धर्म के हों चाहे साधारण परम्परागत हों—इन बातों का क्या अर्थ है?

"यदि तर्क के विक्षुब्ध क्षेत्र से लौटकर पुनः विश्वास तथा उदासीनता के क्षेत्र में चले जाने पर भी हमारे जीवन उतने ही उत्तेजनापूर्ण बने रह सकते हैं और पौराणिक गाथाओं से हमें उतनी ही शांति प्राप्त हो सकती है और जब स्वयं विज्ञान में भी कुछ निराधार मान्यताएँ विद्यमान हैं तब हम विज्ञान के साथ यह समन्वय क्यों करें?"

मैं आशा करता हूँ और मेरा विश्वास है कि जगत् के आह्वान की प्रतिक्रिया का तीसरा चरण पूर्णतः तर्क पर ही आश्रित है। यह प्रतिक्रिया उतनी ही बुद्धिपूर्ण है जितनी कि हमारी ज्ञानेन्द्रियों के सामान्य साधनों तथा हमारी परिमित मानसिक क्षमता के द्वारा संभव हो सकती है। इसमें हम साहसिक विचारों का चिन्तन करना प्रारम्भ करते हैं, और कठिन समस्याओं को प्रस्तुत करके उनके ऐसे उत्तर—कम से कम आंशिक उत्तर—प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगते हैं जैसे कि इस पुस्तक में दिये गये हैं।

ज्ञान की उपलब्धि द्वारा विकास

पूर्वोल्लिखित परिणामों में से एक की पुनरावृत्ति करके हम कह सकते हैं कि हम अनिवार्यतः सीमान्तवासी हैं। अपनी ज्ञानेन्द्रियों के दृष्टिकोण से अभी हम आदिम तथा अविकसित ही हैं। जिस चमत्कारी आद्यजीवी पंक[1] में अनेक जैविक प्रयोग हुए थे उसी में से हमारे तारे (सूर्य) की सहायता से हमारा भी विकास धीरे-धीरे हुआ था। हम भी उसी प्राथमिक "गरम पतले जूष" में से उत्पन्न हुए हैं जिसमें से नीलकंठ और गुलाब उत्पन्न हुए हैं तथा अन्य करोड़ों विचित्र आकृतिवाले प्राणी भी, जो इतने मनोरम नहीं हैं। यह ज्ञान पुरानी दृढ़ मान्यताओं के लिए कितना ही संकटपूर्ण क्यों न हो, अब तो हम इन ब्रह्माण्डीय तथ्यों को तथा अपने जन्म के इतिहास को अस्वीकार नहीं कर सकते। यद्यपि हमारे पास आज के समान इतने विश्वसनीय प्रमाण मौजूद नहीं थे, फिर भी प्रायः सौ वर्ष से हमें अपने निकट पूर्वजों के वानर सदृश होने का अस्पष्ट-सा ज्ञान है। समय-समय पर अनेक विद्वान् हमें तारों से तथा जीवन से सम्बन्धित तथ्यों को बताते रहे हैं। किन्तु न तो हम उनकी बातों को ध्यान से सुनते हैं, और न उन पर विश्वास करते हैं।

किन्तु यह ब्रह्माण्डीय विशालता चाहे आकाश की हो चाहे काल की, चाहे ज्ञान के क्षेत्र की हो चाहे कल्पना की, हमें—थोड़े से स्थान में सीमित रह कर उसकी थाह लेने और उसका तात्पर्य समझने का प्रयत्न करनेवालों को—उससे संत्रस्त नहीं होना चाहिए। ज्ञान की उपलब्धि के द्वारा विकास के स्वाभाविक कार्यक्रम में प्रत्येक दिन की विगत दिनों से प्रतियोगिता चलती है। यह हमारे लिए सौभाग्य की बात है कि यह प्रतियोगिता—यह प्रयत्न और तलाश बहुत कुछ जन्मजात है, भली-भाँति स्वतः प्रेरित है। और भविष्य में आने वाले दिनों की प्रतियोगिता स्वाभाविक भी है। अग्रगामी स्थिति-पालन की प्रवृत्ति के कारण अनायास ही हमारे विकास में बहुधा जो प्रतिगामिता आ जाती है उस पर यदि हम सावधानी से नियंत्रण रख सकें तो जब तक ग्रहों का घूर्णन तथा सूर्यों का विकिरण जारी रहेगा तब तक हमारा विकास होता ही रहेगा। काल की गति के साथ-साथ हमारी ही तरह जन्तुओं तथा पेड़-पौधों का भी विकास स्वभावतः होता रहता है। वे भी सुधार और समन्वय के द्वारा जीवित रहने और उन्नति

1. Archeozoic Ooze

करने का प्रयास करते रहते हैं। किन्तु बहुधा उनके विकास की गति हमसे भी धीमी होती है जबकि ऐसा मालूम होता है कि नवजीवयुग[1] में से स्वयं हमारे न-वंश का विकास भी अत्यन्त श्रमसाध्य यात्रा की तरह बहुत ही धीरे-धीरे हुआ है।

किन्तु अब हमारा बुद्धिचातुर्य बहुत बढ़ गया है और हमें थोड़ा-बहुत ज्ञान भी प्राप्त हो गया है। अतः यह स्वतः प्रेरित, मन्दगामी, स्वल्प तथा सशंक उन्नति अब हमारे लिए पर्याप्त नहीं है। अब हम अपनी बुद्धि के कौशल से इस विकास के वेग को बढ़ा सकते हैं। जो उन्नति हमें अभीष्ट है वह आकार की, बल की अथवा वायु की वृद्धि नहीं है, किन्तु मूलतः उन गुणों की वृद्धि है जिनका सम्बन्ध हमारे मन से है। और वह विकास ऐसा है जिसमें सूक्ष्म तथा अनिर्वचनीय हृदय तथा आत्मा भी समाविष्ट हैं, और इसी में हमारी ब्रह्माण्डीय नीति केन्द्रित है। जो प्रमाण अब तक मिले हैं उनसे स्पष्ट हो जाता है कि हममें केवल इतनी ही क्षमता नहीं है कि विकास की ब्रह्माण्डीय व्यवस्था की परंपरा का अगत्या पालन करते रहें, किन्तु संभवतः हम कुछ प्राकृतिक नियमों का संवर्धन तथा सुधार भी कर सकते हैं। वस्तुतः प्रत्येक नया दिन हमारी जाति के समस्त बीते हुए दिनों के साथ प्रतियोगिता कर सकता है और ऐसी प्रतियोगिता करना उचित भी है।

जातिगत मन[2]

हम लोग पढ़ सकते हैं, लिख सकते हैं और विचार कर सकते हैं, क्योंकि हमारे मन बड़ी मेहनत से शिक्षित किये गये हैं। यह शिक्षा पुस्तकों तथा शिक्षकों से भी मिली है और स्वयं हमारे प्रयत्न का भी परिणाम है। इस शिक्षा के ही कारण हममें अच्छी कोटि की योग्यता भी आ गयी है। हम पर्याप्ततः सुरक्षित रहकर इधर-उधर घूम-फिर सकते हैं और बुद्धिमत्ता तथा थोड़े-बहुत गर्व के साथ अपनी परिस्थिति का मुकाबिला भी कर सकते हैं। किन्तु यदि हमें जन्म के कुछ ही घंटों बाद से प्रारम्भ होने वाली शिक्षा न मिली तो हमारा काम इतनी अच्छी तरह नहीं चल सकता था। प्रारम्भ से ही हमें सहायता की आवश्यकता रही है। इसमें सन्देह नहीं कि यह आवश्यकता धीरे-धीरे कम होती गयी

1. Ceno-zoic era 2. Generic mind

है, फिर भी हम उमर भर दूसरों के आश्रित रहे हैं। जिस नैसर्गिक प्रवृत्ति[1] की कल्पना हम उन नवजात मक्खियों और मच्छरों में करते हैं जिन की देखभाल करने वाला कोई नहीं होता, वह हमारे जन्म के समय हमें उपलब्ध नहीं थी और शरीर से स्वस्थ तथा सबल होने पर भी हम शायद एक सप्ताह भी जीवित नहीं रह सकते थे। उपेक्षित होने पर हम भूख के मारे स्वभावतः केवल चीख ही सकते थे। यह अत्यन्त ही प्राथमिक क्रिया थी। इसके पश्चात् हमें भोजन पाने के लिए अधिक चतुराई से चिल्लाना सिखाया गया। यह चतुरता हमारे प्रशिक्षण का ही अंग और परिणाम थी। मक्खी तो अपना प्रशिक्षण पूरा करने के बाद ही जन्म लेती है। वह अपने जीवन की क्रियाओं की योजना बनाने और उन्हें पूरा करने के लिए तथा संकट के समय तत्काल अपना कर्तव्य निश्चित करने और तदनुसार कार्य करने के लिए न केवल अपने तंत्रिकातंत्र[2] का, किन्तु मुख्यतः अपने जातिगत मन का भी उपयोग करती है जिसकी हममें बहुत कमी है।

संभवतः स्वयं हमारा आचरण भी, जितना हम समझते हैं उससे कहीं अधिक नैसर्गिक प्रवृत्ति की ही प्रेरणा से होता है, किन्तु हमें अपने शिक्षित मन की क्षमता का इतना गर्व है कि हम यह बात स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं। फिर भी, मक्खी की तुलना में हमारे आचरण में अनैसर्गिक[3] और नैसर्गिक का अनुपात बहुत ऊँचा रहता है। यही बात हम दूसरी तरह यों कह सकते हैं कि हमारे व्यक्तिगत दिखाई देने वाले निर्णयों का अनुपात उन निर्णयों की तुलना में बहुत ऊँचा है जो हमारी जाति के अनुभवों द्वारा हमारे स्वभाव में निविष्ट हुई प्रवृत्ति के परिणाम हैं। इसका कारण यह है कि ऐसा निवेशन बहुत ही कम हुआ है। मक्खी कुछ निर्णय अवश्य ही स्वयं अपनी बुद्धि से भी करती है, किन्तु अधिकतर वह अपनी हजारों पीढ़ियों द्वारा क्रमशः निर्मित तथा शनैः-शनैः-प्रशिक्षित मन का ही उपयोग करती है।

यदि हम इस बात पर गौर करें कि यह ब्रह्माण्ड अत्यन्त विशाल है और प्रकृति ने मनुष्य को अपना अस्तित्व सुरक्षित रखने की क्षमता इतनी कम दी है तो यह उचित नहीं मालूम होता कि हम मनुष्य की श्रेष्ठता के गीत गाते ही

1. Instinct
2. Nervous ganglia
3. Non-instinctive

चले जायें और यह मानते ही चले जायें कि सर्वोच्च आसन पर प्रतिष्ठित करने के लिए ही देवताओं ने मनुष्य का अभिषेक किया था। हम पूछते हैं कि जिन पचास करोड़ मनुष्य विहीन पुराजीवी[1] तथा मध्यजीवी[2] वर्षों में सहस्रों प्रकार के अद्‌भुत जन्तु इस पृथ्वी पर जीवन-संग्राम में व्यस्त थे उस समय देवताओं ने किस को अभिषिक्त किया था।

मनुष्य की विशिष्टता के प्रतिपादक बहुधा यह कहते हैं कि उसकी श्रेष्ठता का आधार उसकी "ऐतिहासिक बुद्धि" है। संभवतः उनके मन में गिबन[3] पार्कमैन[4] तथा टोयनबी[5] द्वारा लिखित इतिहासों की बात है। या यदि अधिक गहराई में जाइए तो उनके मन में अलिखित वे लोक-गाथाएँ हैं जिनकी मौखिक परम्परा हजारों वर्ष पुरानी है इनसे भी अधिक मौलिक वह अलिखित इतिहास है जो माताएँ अपने अबोध शिशु के कान में आदेश और निषेध के रूप में गुनगुनाती आयी हैं। माताओं ने इसी प्रकार मनुष्य में "ऐतिहासिक बुद्धि" की स्थापना की है। किन्तु इसमें और चिड़ियों के सम्मुख चहचहाने में अथवा श्रमिक चींटी के नवजात बच्चों के साथ मिलकर शृंगिकाओं[6] के हिलाने-डुलाने में आखिर क्या फर्क है ? क्या लाखों प्रकार के जन्तुओं की प्रबल काम-वासना भी बीते युगों के गंभीर तथा मर्मस्पर्शी इतिहास की ही कहानी का एक रूप नहीं है ? और क्या उस कहानी को कहने का यह तरीका गुफाओं में उच्चश्रेणी के अहंकारी मानवों द्वारा उकेरे भित्ति-चिह्नों को बड़ी-बड़ी जिल्दों में बाँध देने की अपेक्षा अधिक गंभीर तथा प्रभावोत्पादक नहीं है ?

पार्थिव मनुष्य की बौद्धिक प्रतिक्रिया में और पृथ्वी के अन्य जन्तुओं की प्रतिक्रिया में केवल परिमाण का ही अन्तर है। संभव है कि यदि हम अपनी इस प्रतिक्रिया की तुलना उच्चतम चेतनायुक्त अपार्थिव प्राणियों की प्रतिक्रिया से करें तो हमारे अहंकार को बड़ा धक्का लगे।

किन्तु आप शायद यह तर्क उपस्थित करें कि "केवल मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जो ऐतिहासिक ज्ञान के आधार पर कार्य करता है।" यह बात भी अर्थहीन प्रलाप है। पहली बात तो यह है कि वह यथोचित रूप से ऐसा करता ही नहीं— बिना सोचे-समझे निरर्थक युद्ध करता ही चला जाता है और ऐसे काम

1. Paleozoic 2. Mesozoic 3. Gibbon
4. Parkman 5. Toyanbee 6. Antennae

करता चला जाता है जो देवतुल्य न होकर पशुतुल्य ही ज्यादा हैं। ऐसा मालूम होता है कि इतिहास से वह कुछ भी शिक्षा ग्रहण नहीं करता। दूसरे, अधिकांश जन्तु भी अपने तरीके से अनुभव के ही आधार पर काम करते हैं। तथाकथित "योग्यतम का अति-जीवन[१]" भी जीव के ऐतिहासिक ज्ञान की ही प्रतिक्रिया है।

इस जटिल जगत् में मनुष्य की स्थिति के सम्बन्ध में विचारों का तिरस्कार करने के लिए फूलों से सुशोभित मैदान, कल-कल शब्द करनेवाले नाले अथवा सर्पिल नीहारिका से बढ़कर प्रयोगशाला और कोई नहीं हो सकती। हरे पत्ते तारों के विकिरण का पान करने वाले स्तनपायी शिशु हैं। सर्वव्यापी गुरुत्वाकर्षण से प्रेरित होकर नालों का तीव्र प्रवाह मिट्टी को इस प्रकार काट देता है कि इस अपक्षारण के कारण एल्प्स[२] तथा एपेलेचियन[३] से पूर्ववर्ती उत्तुंग पर्वतों का अब नामनिशान भी नहीं बचा है। शांतिपूर्वक अनेक दशकों का स्वप्न देखने वाला सौ टन वजन का मेपल[४] वृक्ष भी उसी ब्रह्माण्ड में विद्यमान है जिससे अरबों खौलते हुए तारों से भरी देवयानी नीहारिका[५] भी है। जिन नियमों का पालन गोलीय तारा-पुंज[६] के तारे करते हैं ठीक उन्हीं नियमों के अनुसार वृक्ष भी गुरुत्वीय बल का आदर करता है। इसके अतिरिक्त वृक्ष भी उन्हीं जटिल अणवीय समुदायों से बना है जिनसे कि उसकी डालों पर बैठने वाले पक्षी, उसकी जड़ों को खाने वाले परजीवी और इन सब बातों का चिन्तन करने वाले वैज्ञानिक बने हैं।

इस स्पष्ट तथा जटिल परिस्थिति में एक सरल तथ्य तो बिलकुल स्पष्ट है। जीवन की क्रिया में जो कोई भी हमें योगदान देते हैं उन सब से हमें अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेना चाहिए, और जीवन से नीचे उतर कर पृथ्वी की ठोस चट्टानों से तथा आसमान के गैसीय पवनों से भी साग्रह तथा संतत साहचर्य रखना चाहिए।

यह तो निश्चय ही हमारा विशेषाधिकार है कि भूत, भविष्य तथा वर्तमान के समस्त पार्थिव जीवों के लिए, समस्त तारों तथा नीहारिकाओं के लिए और समस्त मूल सत्ताओं के लिए भी हम अपने आपको विशेष रूप से चिन्तक तथा

1. Survival of the fittest
2. Alps
3. Appalachian
4. Maple
5. Andromeda galaxy
6. Globular Cluster

भविष्यवक्ता समझें। हो सकता है कि हमारा यह समझना भ्रम हो कि हमारा स्थान प्रमुख इसलिए है कि हम संसार भर के लिए चिन्तन कर सकते हैं और एक आदर्श निर्धारित कर सकते हैं।[1]

सामाजिक कीटों का सूक्ष्मतापूर्वक अध्ययन करने वाला सामाजिक जाग्रति की दृष्टि से मनुष्य की उत्कृष्टता का गर्व नहीं कर सकता। शायद वह मनुष्य के मस्तिष्क की उत्कृष्टता में भी शंका करने लगे। जन्तु-समाजों के अध्ययन में उसने अनेक बातें ऐसी देखी हैं जो अद्भुत और विस्मयकारी हैं। उसने मधु-मक्खी को अपना जटिल ज्यामितीय नृत्य करते देखा है जिसके द्वारा वह दृष्टि, गंध तथा मुद्राओं के माध्यम से अपने विद्यार्थियों को मधु तथा पराग[2] का संचय करना सिखाती है। उसने अनेक छोटे-छोटे कीटों के द्वारा जटिल तथा साहसिक

१. क्या यह सच नहीं है कि तम्बू में रहनवाली इल्ली (Caterpllar) के लिए ईश्वर भूरे रंग का है—महाघातक तथा अनन्त भक्षक है ? विलियम बटलर यीट्स (William Butler Yeats) न लिखा है कि एसा मालूम होता है कि जंगली मुर्गा, कमल का फूल, वन की हरिणी इत्यादि सभी जीवों का दृढ़ विश्वास है कि ईश्वर की आकृति उन्हीं के सदृश है। उसके शब्दों में—

"थोड़ा आगे बढ़ कर मोर को यह कहते सुना कि इस घास को, इन कीड़ों को और मेरें सुन्दर परों को जिसने बनाया वह अवश्य ही एक विशाल मोर है जो रात भर अगणित दीपकों से जगमगाती पूंछ को हमारें सिर पर धीरे-धीरे हिलाता रहता है।"

वह यह भी कह सकता था—

"अन्त में मैं उस वन जंगल की घाटी के सबसे अधिक अन्धकारपूर्ण स्थान में पहुँच गया और उस अँधरें में से एक आवाज ने मनुष्यों के इस विश्वास तथा घमन्ड की घोषणा की कि जो ईश्वर इस संसार का परिचालन करता है तथा आसमान को प्रकाशित करने के लिए तारों को बनाता है वह भी ठीक मनुष्य ही की आकृति का है और उसकी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण सृष्टि 'मैं' हूँ।"

और मेरी बेकर एडी (Mary Baker Eddy) गम्भीरतापूर्वक पूछती है कि "किसी भी मर्त्य प्राणी का ईश्वर उसी प्राणी के प्रवर्धित रूप के अतिरिक्त और क्या है ?"

2. Pollen

कार्यों के सम्पन्न होने का जादू भी देखा है। स्थूल दृष्टि वाले प्रेक्षक का भी मानव श्रेष्ठता में विश्वास बहुत घट जाता यदि अभ्यासवश वह इस सरल दकियानूसी तर्क का सहारा न ले कि "यह तो उनकी अंधी नैसर्गिक प्रवृत्ति मात्र है। वे विचार नहीं कर सकते। उनमें कार्यकारण का ज्ञान भी नहीं है। यथोचित मस्तिष्क का भी उनमें अभाव है।"

थोड़ा-सा भी विश्लेषण करने से यह तर्क पंगु हो जाता है क्योंकि इस अंधेपन का सम्बन्ध वास्तव में प्रेक्षक से है (और अधिक अच्छा तो यह होता कि वह नैसर्गिक प्रवृत्ति के लिए "अंधी" शब्द के स्थान में "आलोकपूर्ण" शब्द का प्रयोग करता)। "विचारशून्यता" की धारणा भी निराधार तथा गलत है अथवा इसमें "विचार" शब्द के अर्थ की अवज्ञा की गयी है। और "यथोचित मस्तिष्क" से यह व्यक्त होता है कि बिना सोचे-समझे इस परिकल्पना को स्वीकार कर लिया गया है कि केवल वही तंत्रिका-तंत्र "यथोचित" है जो खोपड़ी के अन्दर अवस्थित हो।

"तर्क तो केवल हम ही कर सकते हैं" यह धारणा भी सर्वथा युक्तिहीन है। जब पक्षी अपना घोंसला बनाने के लिए और मकड़ी अपना जाल बुनने के लिए स्थान चुनती है तो इसमें विचारशून्यता तथा युक्तिहीनता का क्या प्रमाण मिलता है ? बहुत कुछ काम तो उनका जातिगत मन कर देता है और शेष कार्य होता है तात्कालिक स्थिति के साथ विवेकपूर्ण समन्वय के द्वारा। इसके विपरीत हम उच्च नर-वानर वंशियों के पास पैतृक ज्ञान तो कम होता है, किन्तु हममें असाधारण परिस्थिति का सामना करने की शक्ति अधिक होती है। जो अन्तर है वह परिमाण या तीव्रता का है, किन्तु यह बात नहीं है कि हमारे विचार तथा तर्क किसी सर्वथा भिन्न प्रकार के हों। कई विशेष प्रकार के गुणों और कौशलों में हम श्रेष्ठ नहीं हैं। इनमें हम अन्य जन्तुओं की योग्यता की बराबरी भी मुश्किल से कर सकते हैं—सो भी पूरी-पूरी नहीं। दूसरे प्रकार के गुणों में और कौशलों में—यथा पुस्तकों को पढ़ सकने में—अन्य जन्तु हमारी बराबरी करने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु पूर्णतः सफल नहीं होते। हमारे निज के समस्त गुण और दोष, हमारी समस्त योग्यताएँ और अयोग्यताएँ उच्चतर स्तनपोषियों में भी विभिन्न मात्राओं में विद्यमान हैं।

इन सब बातों से हमें यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए कि स्थिति-निर्धारण में पृथ्वी के जीव-जन्तुओं तथा पेड़-पौधों की तुलना में भी मनुष्य को बहुत अधिक

महत्त्व देना उचित नहीं है। और इस सुसम्पन्न ब्रह्माण्ड के अन्य क्षेत्रों की सम्भावनाओं की तुलना में तो निश्चय ही मनुष्य को ऐसा महत्त्व नहीं दिया जा सकता।

किन्तु हमें मनुष्य के आत्मकेन्द्रित अहंकार से उद्विग्न होकर क्लान्त होने की आवश्यकता नहीं है। इस अभिमानी मानव की निन्दा करने की अपेक्षा मैं जातिगत मन के अस्तित्व की ओर ध्यान आकर्षित करना ज्यादा अच्छा समझता हूँ क्योंकि अधिकांश प्राणियों का सबसे अधिक बहुमूल्य पैतृक धन यही है। मैं यह भी बता देना चाहता हूँ कि करोड़ों वर्षों से जन्तुओं की सहस्रों जातियाँ ऐसे ही उपायों से स्वयं को सुरक्षित रखती रही हैं जिन्हें हम भूल चुके हैं और वे सब जन्तु भी भूल गये हैं जिन्हें अपनी सुरक्षा के लिए माता की फुसफुसाहट पर, लोक-कथाओं पर तथा छपे हुए इतिहासों पर निर्भर रहना पड़ता है।

लिखना और पढ़ना जानने वालों का जो उपर्युक्त स्थूल मूल्यांकन यहाँ प्रस्तुत किया गया है वह जैविक अनुक्रमों तथा सम्भावनाओं में मनुष्य की स्थिति के निर्धारण का केवल एक पहलू है, मनुष्य का विकास आकाश तथा काल में तो हुआ ही है, किन्तु उच्चस्तरीय जीव-रसायनों के द्वारा तथा ज्ञान तंत्रिकाओं की जटिल प्रतिक्रियाओं के द्वारा भी हुआ है। उसकी स्थिति-निर्धारण के पहलू अनेक हैं।

हमारी ज्ञानेन्द्रियों की सीमितता

पिछले अध्यायों में हम कई बार कह चुके हैं कि चैतन्य प्राणियों का विकास जैव-रसायनिक विधि से हुआ है और इस ब्रह्माण्ड में उनकी उत्पत्ति एक सामान्य घटना ही है। ग्रहों की उत्पत्ति तथा इस पृथ्वी के ठंडे होते हुए पृष्ठ पर रासायनिक यौगिकों के विकास के व्यापक विवेचन के फलस्वरूप हम इस परिणाम पर पहुँचे थे कि इस ब्रह्माण्ड में "उच्च जीवन" के निवासयोग्य स्थान दस करोड़ ($१०^८$) से कम नहीं हैं—संभवतः इनकी संख्या सौ करोड़ खरब ($१०^{२०}$) तक भी हो सकती है। दूसरे यह विश्वास न करने का भी कोई कारण नहीं है कि अन्दाजन आधे उपयुक्त ग्रहों में जैविक विकास पृथ्वी के बराबर या उससे बहुत अधिक हो चुका है। अतः जो प्रश्न हमने प्रारंभ में ही उपस्थित किया था उसका निश्चित उत्तर हम यह दे चुके हैं कि इस ब्रह्माण्ड में हम अकेले ही नहीं हैं और हमारे इस उत्तर से यह बात भी झलकती है कि सर्वशक्तिमान् ईश्वर के हाथों में (या उसे प्रकृति कहें ?) हमारी देखभाल करने

के अतिरिक्त और भी बहुत से काम हैं। किन्तु इस विचारधारा में प्रवृत्त होने से पहले मैं ज्ञान की उपलब्धि के साधनों के विषय में भी कुछ कह देना चाहता हूँ। हम देखेंगे कि इस क्षेत्र में भी हमारे अहंकार को अत्यन्त हितकर क्षति पहुँची है।

स्वभावतः हमारे मन में यह प्रश्न उठता है कि क्या यह संभव नहीं है कि इस संसार की संचालक शक्ति की खोज में हमसे अधिक सफलता उन अत्यन्त दूरवर्ती, किन्तु बुद्धियुक्त प्राणियों को प्राप्त हो गयी है जो समुचित स्थान में अवस्थित तारों की ऊष्मा से स्वास्थ्य लाभ करते हैं और उनके आलोक में अपने ज्ञान की वृद्धि का प्रयास करते हैं। हम अपनी गवेषणा में बहुत दूर नहीं पहुँच पाये हैं और अभी तक सभी दिशाओं में अज्ञात और संभवतः अज्ञेय की दुर्लंघ्य दीवारों ने हमारा रास्ता रोक रखा है। अधिकतर मनुष्य तो उतना ही जानते हैं जितना कि पुस्तकों में छप चुका है अथवा जितना वे दूसरों से सुन लेते हैं। आँख और कान ही ऐसी ज्ञानेन्द्रियाँ और ऐसे सर्वोत्कृष्ट साधन हैं जिनकी सहायता से हम यह मालूम कर सकते हैं कि कौन-सी वस्तु क्या है और क्यों है। इन आँखों और कानों के बिना यह संसार बड़ा ही विचित्र हो जाता। और यदि हमारे आँख और कान अधिक अच्छे होते तथा इनके अतिरिक्त कोई अन्य ज्ञानेन्द्रियाँ भी हमें उपलब्ध होतीं तो जितने ज्ञान का हम अभी तक उपार्जन कर सके हैं उससे कहीं अधिक और सूक्ष्मतर ज्ञान हमें प्राप्त हो जाता।[१]

इस जगत् को—सूक्ष्मजगत् और ब्रह्माण्ड दोनों को ही—समझने के लिए मनुष्य के मन का सर्वोत्कृष्ट सहायक विद्युत्-चुम्बकीय स्पैक्ट्रम है, विशेष कर उस रूप में जिसमें आजकल उसका उपयोग किया जाता है। अब तक ब्रह्माण्ड का जितना भी ज्ञान हमें प्राप्त हुआ वह केवल एक ही ज्ञानेन्द्रिय—नेत्र—की सहायता से हुआ। किन्तु हमारे नेत्र तो विकिरण के लम्बे स्पैक्ट्रम के एक

१. और यदि हमारें कान समस्त तरंग-दैर्ध्यों के लिए सुग्राही होते तथा माध्यम के भौतिक गुण उपयुक्त होते तो क्या यह सम्भव नहीं था कि हम अणुओं की पारस्परिक टक्करों का शब्द भी सुन लेते ? तब उन का शोर कितना तुमुल होता ! कड़कड़ाहट कितनी भयंकर होती ! अन्य समस्त ध्वनियाँ बिलकुल दब जातीं। न तो हम संगीत सुन सकते, न किसी की चिल्लाहट और न कोई व्याख्यान ! जिस तरह कुहासा तथा धुंआ नेत्र की शक्ति को क्षीण कर देते हैं ठीक उसी तरह अणुओं की खड़बड़ाहट भी हमारें कानों की श्रवण-शक्ति को सीमित कर देतीं।

छोटे-से अंश के लिए—केवल बैंगनी से लाल तक के कठिनाई से दो सप्तक मात्र के लिए ही सुग्राही हैं। किन्तु कृत्रिम उपायों से ज्ञानेन्द्रिय-क्षमता का सहसा इतना अतुल विकास कर लिया गया है और प्रकृति का अध्ययन करने के लिए जिस विकिरण का उपयोग करना हमने सीख लिया है उस का विस्तार अब पचास सप्तकों से भी अधिक का हो गया है—अर्थात् एक इंच के एक अरब वें भाग (१०^{९}) की लम्बाई वाली निरक्षीय किरणों[१] से लेकर, गामा-किरणों[२] एक्स-किरणों[३] तक तथा पराबैंगनी[४] प्रकाश और हमारे नेत्रों द्वारा अभिलक्षित बैंगनी से लाल प्रकाश तक, और इसके पश्चात् ऊष्मा की तरंगों से रेडियो-तरंगों और मीलों लम्बी वैद्युत् तरंगों तक सभी प्रकार की तरंगों का उपयोग अब हम करने लगे हैं। इन अदृष्ट विकिरणों की पहिचान, उनका नाप और उपयोग हम प्रकाश की भाँति अपने नेत्रों द्वारा नहीं करते, किन्तु अपनी कला-कृति के द्वारा अथवा यों कहिए कि फोटो के प्लेट, गाइगर गणक[५] तथा प्रकाश-वैद्युत सैल[६] के नेत्र-पटल अर्थात् रेटिना[७] के द्वारा करते हैं।

प्रकृति में नेत्र तथा अन्य इन्द्रियों का विकास जीवन के व्यावहारिक कार्यों के लिए हुआ था—इसलिए नहीं कि उनका उपयोग ब्रह्माण्ड के स्वरूप तथा उसकी गतिविधि के अनुसन्धान के लिए किया जाय। कुछ ही समय पूर्व तक "अव्यावहारिक" ज्ञान की पिपासा को व्यावहारिक जीवन का अंग नहीं समझा जाता था। प्रकृति द्वारा हमारे शरीर में ही निर्मित ज्ञानेन्द्रियों से हमारी बौद्धिक अभिलाषाएँ बहुत आगे बढ़ गयी हैं।

यह संयोग की बात है कि मानव दृष्टि का बैंगनी से लाल रंग तक का परास विकिरण-स्पैक्ट्रम के उसी भाग में है जिसमें सूर्य के प्रकाश की तीव्रता महत्तम होती है। वस्तुतः सूर्य के प्रकाश में एक्स-किरणों की लघुतरंगों या रेडियो की लम्बी तरंगों की तीव्रता अधिक नहीं होती।

यदि चक्षुरिन्द्रिय वाले कोई प्राणी किसी ऐसे ग्रह पर रहते हों जो सूर्य की अपेक्षा अधिक उत्तप्त और इस कारण अधिक नीलवर्ण तारे के यथा द्वितीय मृग[८]

1. Cosmic rays
2. Gamma rays
3. X-rays
4. Ultra-violet
5. Geiger counter
6. Photoelectric cell
7. Retina
8. Rigel in Orion

के निकट अविस्थत हो तो संभव है कि उनकी आँखें स्पैक्ट्रम के नील भाग के लिए अधिक सुग्राही हों और यदि वे ऐसे ग्रह पर रहते हों तो अधिक ठंडे तथा अधिक लालवर्ण तारे के निकट हो तो शायद उनकी आँखें लाल प्रकाश के लिए अधिक सुग्राही हों। यह भी समझ लेना चाहिए कि सूर्य केवल इसीलिए पीला नहीं बनाया गया था कि यह रंग हमारे नेत्रों के लिए अधिक उपयोगी है ! इसके विपरीत सच तो यह है कि हमारे तारे के सबसे तीव्र विकिरण का उपयोग कर सकने के लिए ही हमारी दृष्टि का ऐसा विकास हुआ है।

यहीं पर इस तथ्य को भी भली-भाँति स्पष्ट कर देना उचित है कि मनुष्य के शरीर में कोई ऐसी ज्ञानेन्द्रिय प्रकृति ने नहीं बनायी जिसके द्वारा वह बहुत लम्बी तरंगों का अथवा बैंगनी से भी अधिक बैंगनी लघु-तरंगों का उपयोग कर सके। एक छोटे-से संकीर्ण खंड को छोड़कर वह शेष विद्युत्-चुम्बकीय स्पैक्ट्रम के लिए बिलकुल अंधा है। यदि प्रारम्भ से ही उसके शरीर में अतिवेधी एक्स-किरणों से लेकर रेडियो की लम्बी तरंगों तक सभी तरंग-दैर्ध्यों के लिए सुग्राही अभिलेखक विद्यमान होते तो इस संसार का जैसा ज्ञान उसने अपनी सीमित दृष्टि के द्वारा धीरे-धीरे संचित किया है, उससे सर्वथा भिन्न प्रकार का ज्ञान उसे प्राप्त होता। यदि वह उपयुक्त साधनों से सुसज्जित होता तो भू-तरंगें[१] अदृश्य तडित्[२], आणविक गति आदि विषय बहुत पहले ही उसके लिए साधारण घटनाएँ हो जातीं। अपना भोजन प्राप्त करने के लिए, अपने शत्रुओं से बचने और उन पर विजय प्राप्त करने के लिए तथा काम वासना तृप्ति-हेतु अपना जोड़ा ढूंढ़ने के लिए उसे सूर्य के विकिरण-जैसी तरंगों की कोई आवश्यकता नहीं हुई जैसी हमारे रेडियो के लिए काम में आती हैं। और चूंकि हमारे विशेष प्रकार से विकसित वायुमंडल के ओजोन—आवरण के कारण प्रकाश का परा बैंगनी भाग पृथ्वी तक नहीं पहुँच सकता था, इसलिए मनुष्य को अपने जीवन-निर्वाह के लिए स्पैक्ट्रम के लघुतरंगीय भाग की भी कभी कोई व्यावहारिक आवश्यकता नहीं हुई। नवीन प्रकार की ज्ञानेन्द्रियों की आवश्यकता तो ब्रह्माण्ड का प्रमुख व्याख्याकार होने के कारण से पृथ्वी के वर्तमान मानस-जीवी युग[3] में ही हुई है और इसीलिए अब उसने अनेक कृत्रिम साधनों का आविष्कार भी किया है।

1. Earth-waves 2. Dark lightning 3. Psychozoic era

अपनी अच्छी चक्षुरिन्द्रिय की सहायता के लिए, श्रवणेन्द्रिय का, कमजोर घ्राणेन्द्रिय का तथा जटिल स्पर्शेन्द्रिय-तंत्र का उपयोग करने पर भी मनुष्य के पास ब्रह्माण्ड के रहस्यों का उद्‌घाटन करने के लिए उपयुक्त साधनों की बहुत कमी रह जाती है। वस्तुतः ज्ञान—गहन ज्ञान--प्राप्त करने की अभिलाषा वाले इस प्राणी की बुद्धि का चाहे थोड़ा-बहुत विकास हो गया हो, किन्तु उसके शरीर की इन्द्रियाँ तो अभी तक बहुत कुछ आदिम रूप में विद्यमान हैं। (हमारी शारीरिक रचना की इस त्रुटि को--इस आदिमता को--प्रायः सभी स्वीकार करते हैं)।

इस बात पर मैं और भी अधिक जोर देना चाहता हूँ कि हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ संख्या में, परास में तथा कार्यकुशलता में सीमित हैं। संभवतः सांगीतिक स्वरों के विभेदन की शक्ति को छोड़कर, हमारी प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय की शक्ति को किसी न किसी जानवर की उसी प्रकार की शक्ति से हार माननी पड़ती है-- यथा बाज पक्षी की दृष्टि से, कुत्ते की श्रवण-शक्ति से, कीटों की सूंघने की शक्ति से। कई तारों का चुम्बकीय क्षेत्र बड़ा प्रबल है, किन्तु हमारे सूर्य का वह क्षेत्र उतना प्रबल नहीं। साथ ही हमारे शरीर में भी चुम्बकीय बल के लिए कोई ज्ञात सुग्राही इन्द्रिय नहीं है।

किन्तु यह हो सकता है कि इन्द्रियों की यह सीमितता और उसके फलस्वरूप प्रकृति को समझने में हमारी असमर्थता केवल स्थानीय त्रुटि ही हो। तारों की अत्यन्त प्रचुरता के नये अनुमानों तथा उत्कृष्टतः विकसित जीवनयुक्त करोड़ों ग्रहों के अस्तित्व की अत्यधिक सम्भावना के आधार पर ऐसा विदित होता है-- और यह सोचकर हम व्यग्र भी हो जाते हैं—कि इस ब्रह्माण्ड के बौद्धिक प्राणियों में शायद हम अत्यन्त क्षुद्र हैं। इस कष्टदायी विचार के समर्थन में इस बात की ओर भी ध्यान आकर्षित किया जा सकता है कि अन्य ग्रहों पर रहने वाले उच्चतर प्रकार के बुद्धियुक्त प्राणियों के शरीर में ऐसी इन्द्रियों के विद्यमान होने की भी बहुत सम्भावना है जिनका न तो हमें ज्ञान है और न जिनकी हम कल्पना ही कर सकते हैं। सम्भव है कि उन्हें इन इन्द्रियों के द्वारा ऐसी प्राकृतिक घटनाओं का भी ज्ञान प्राप्त होता हो जिनका हमें बिलकुल पता ही नहीं है।

कभी-कभी हमें पृथ्वी के ही जन्तुओं तथा पौधों में भी हमारी इन्द्रियों से भिन्न प्रकार की इन्द्रियों के अस्तित्व की शंका होने लगती है--केवल सुनने, देखने या सूँघने की प्रबलतर क्षमता वाली इन्द्रियों के अस्तित्व की नहीं, किन्तु सर्वथा भिन्न प्रकार के ज्ञान की उपलब्धि की क्षमता वाली इन्द्रियों के अस्तित्व

की। इन पर ध्रुवित प्रकाश[1] का कोई विशेष प्रकार का प्रभाव नहीं पड़ता, किन्तु मधुमक्खियों तथा चींटियों को ऐसे प्रकाश का तुरन्त पता चल जाता है। पक्षियों का प्रवसन[2] यह किस चीज की प्रतिक्रिया है ? ऐसे भी लोग विद्यमान हैं जो इस बात का स्वप्न देखते हैं कि मानव आत्मा के साथ कुछ अन्य आदिम अथवा अवशिष्ट इन्द्रियों का सम्बन्ध थोड़ा-थोड़ा अब भी है।[3]

नम्रता स्वतः ही उत्पन्न होती है

इन संभावनाओं की चर्चा को और अधिक न बढ़ाकर हम यह कहना चाहते हैं कि जो मानवकेन्द्रित धर्म तथा दर्शन अधिकतर स्पष्टतः पृथ्वी से निबद्ध रहे हैं और मानव-मन तथा मानव-आचरण के ही झगड़ों में फँसे रहे हैं उनके लिए नवाविष्कृत ब्रह्माण्ड की अनुभूति की समावेशन द्वारा अपनी मर्यादा के बढ़ाने का आजकल अच्छा अवसर है। यदि धर्मशास्त्री हमारे इस आग्रह की गम्भीरता को समझने में कठिनाई का अनुभव करते हों कि जो ईश्वर मनुष्य का है वही गुरुत्वाकर्षण का तथा हाइड्रोजन परमाणु का भी ईश्वर है,तो कम से कम वे इस बात के औचित्य पर विचार करना तो स्वीकार कर सकते हैं कि जो बौद्धिक तथा आध्यात्मिक दरजा वे हमारा—मनुष्यों का—समझते हैं, वही दरजा उन उच्चतर बुद्धि-संपन्न प्राणियों को भी देना चाहिए जिनका विकास अगणित विश्वों के बीच में पृथ्वी से भिन्न किसी अन्य स्थानों में हुआ हो। किसी एक ही ग्रह के ईश्वर के लिए मेरे हृदय में श्रद्धा उत्पन्न नहीं होती।

आप कह सकते हैं कि "ये सब कोरी कल्पनाएँ हैं और इनकी जड़ काफ़ी मजबूत नहीं है। हमारा विश्वास दूसरी ही तरह का है और हमें तर्क तथा पूजा का दूसरा ही ढंग पसंद है।" इसके उत्तर में मैं अवश्य ही यह कहूँगा कि आपको अपनी अभिरुचि के अनुसार ही कार्य करना चाहिए। आप से निवेदन तो केवल यह है कि ब्रह्माण्डीय तथ्यों पर गम्भीरता पूर्वक विचार करें। हम आशा करते

1. Polarised light   2. Migration

३. जे० डी० कार्टी (J. D. Carty) ने अपनी १९६५ में लन्दन से प्रकाशित पुस्तक "जन्तुओं की नाविकी" (Animal navigation) में जन्तुओं की ज्ञानेन्द्रियों का योग्यतापूर्ण विवेचन किया है।

हैं कि केवल सुखद परम्परा का ही सहारा नहीं लिया जायगा और निरी तर्क-हीनता का अनुसरण नहीं किया जायगा । अनेक स्रोतों से जो नवीन ज्ञान हुआ है—परखनली से, विकिरण के विस्तृत स्पैक्ट्रम से, इलेक्ट्रान सूक्ष्मदर्शी से, प्रयोगिक कृषि-विज्ञान से, रेडियो दूरदर्शी से, गणितीय समीकरणों से तथा कास्मोट्रोनों[1] से—इन सभी की सहायता से जो नवीन आविष्कार किये गये उनके कारण संसार सम्बन्धी पुरानी मान्यताओं का अन्त हो गया है। इन नये आविष्कारों ने और इस नवीन विकास ने एक अति विशाल तथा महिमाय ब्रह्माण्ड को हमारे समक्ष उद्घाटित कर दिया है। इसमें सहयोगी होना भी गौरव की बात है। सुदूरवर्ती ग्रहों में निवास करने वाले साथियों, जल, स्थल तथा वायु के जीव-जन्तुओं और पेड़-पौधों, समस्त ग्रह-पृष्ठों के जलाशयों तथा चट्टानों और तारों के संघटक परमाणुओं तथा फोटानों[2] के साथ हमारा ऐसे जीवन और विकास में सहयोग है जिसके प्रति आदर और गहरी भक्ति की भावना स्वतः उदय होती है और नम्रता हमारे लिए अनिवार्य हो जाती है। अन्वेषक, दार्शनिक तथा वैज्ञानिक होने के नाते हम उन रहस्यों के प्रति कृतज्ञ हैं जो अभी तक हमारी पहुँच से बाहर हैं।

कई लोग इस विचारधारा को ही अपना धर्म और दर्शन मानते हैं। मुझे आशा है कि वे यह नहीं चाहेंगे कि हम नीहारिकाओं से पुनः पृथ्वी पर लौट आवें और उन्हें कभी पसंद नहीं होगा कि ब्रह्माण्ड के युगों और ब्रह्माण्ड की गहराइयों में से निकल कर हम अपना ध्यान केवल एक ऐसे प्राणी में ही सीमित कर दें जो किसी एक नीहारिका के सीमान्तवर्ती एक साधारण से तारे के निकट एक छोटे-से ग्रह की पपड़ी पर रहता है। "चरम तथ्य" को खोजने के लिए सबसे अलग इस छोटे-से क्षेत्र में पुनः लौट आने में वे अवश्य ही संकोच का अनुभव करेंगे। मेरी शुभकामना यही है कि ऐसे लोगों की संख्या में वृद्धि होती रहे और वे सफल मनोरथ हों।

मछली या मानव—प्रश्न यही है.

इस पृथ्वी पर जितनी प्रगति प्रोटोप्लाज्मीय प्रयोग की हुई है (जीवन को प्रसंगवश यह संज्ञा दी जा सकती है) उसे देखकर हम कह सकते हैं कि प्रकृति की

1. Cosmotrones 2. Photons

जटिलताओं का यह एक उत्साहवर्धक प्रदर्शन है। हमारे शरीर और मन की रचना जितनी हम समझते थे उससे बहुत अधिक जटिल तथा आश्चर्यजनक है। यद्यपि मानव कल्पनाशक्ति नाना विषयगामिनी है तथापि उसके लिए ऐसी जटिलता तथा सुव्यवस्था को स्वप्न में भी देख सकना कठिन है जैसी कि सरलतम जीवकोषिका में विद्यमान है और एक भी अणु के केन्द्र की वास्तविक यंत्र-रचना का पूर्ण ज्ञान उन के लिए उतना ही अगम्य है। कल्पना की उड़ान तथ्यों से बहुत पीछे रह गयी है। जितना कुछ हम अब तक जान सके हैं उसकी तुलना में अनाविष्कृत तथा अज्ञात—अज्ञेय नहीं—इतना अधिक है कि अनुसन्धान तथा आविष्कार का भविष्य अत्यन्त सुन्दर और सुखद दिखाई देता है।

यद्यपि हमारा ज्ञान तथा बुद्धि दोनों ही सीमित हैं तथापि भूत और वर्तमान संसार को समझने में—स्पष्टतः न सही, स्थूल रूप से ही सही—जितनी सफलता हमको मिल चुकी है उससे हमारा साहस बहुत बढ़ गया है और जगत् के भविष्य रूप की कल्पना करने और उसकी प्रागुक्ति करने के लिए हमें बड़ा प्रोत्साहन भी मिला है।

स्वयं अपने व्यक्तिगत भविष्य के विषय में मनुष्य का चिन्तित होना स्वाभाविक है और बहुधा यह चिन्ता प्रबल भी होती है। इसमें कमी हो जाने से कोई हानि नहीं क्योंकि बीमा कम्पनियों की सारणी में आप की आयु के दिनों की संख्या लिखी ही है। किन्तु इस समय अपनी जाति के भविष्य की चिन्ता मनुष्य को बहुत कम है। इसको बढ़ाने की आवश्यकता है। संवर्धन की विचारधारा में—शरीर के नहीं, मन के संवर्धन में—व्यक्ति के नहीं, जाति के विकास में हमारे विश्वास के सच्चे होने का चिह्न मेरी दृष्टि में तो यह है कि हम यह बात जानने का प्रयत्न करें कि मानव जाति के भविष्य में क्या है—उस सुदूर भविष्य में क्या है जब समस्त नीहारिकाएँ छितराकर निरस्त हो जायेंगी, चन्द्रमा की ज्योति बिलकुल मन्द हो जायगी और विशाल पर्वत पवन तथा वर्षा के विध्वंसक प्रभाव से निरन्तर क्षय होते-होते लुप्त हो जायेंगे।

ऐसा मालूम होता है कि भविष्य में भी मनुष्य अपनी बुद्धि पर तथा अपने उपार्जित ज्ञान पर भरोसा करते रहेंगे और किसी पुर्वतः निर्मित जातिगत मन पर निर्भर न रह सकेंगे। यह भी प्रगट है कि प्रकृति के तथा स्वयं अपने ही भयंकर-व्यक्तित्व के विरुद्ध मनुष्य की लड़ाई भी अनवरत चलती रहेगी ही। अतः हमारे मन में यह जिज्ञासा तथा चिन्ता उत्पन्न होती है कि अन्त में इस पृथ्वी पर राज्य

कौन करेगा--मनुष्य अथवा कोई नम्रप्राणी ? शायद मछली ही ऐसे नम्र प्राणी का अच्छा उदाहरण है क्योंकि वह मुख्यत: अपनी नैसर्गिक प्रवृत्ति का ही उपयोग करती है--मस्तिष्क के किसी भारी अग्रभाग का नहीं।

मानवजीवन की सुरक्षा का विरोध

मछली या मनुष्य--प्रश्न यही है। अब से १०००० वर्ष बाद इस पृथ्वी पर किस प्रकार के प्राणी का आधिपत्य होगा और किस प्रकार का प्राणी अपनी मूर्खता और अपने दुर्भाग्य का शिकार बन जायगा ? इसका उत्तर बिलकुल स्पष्ट है। मछलियाँ तो इस पृथ्वी पर करोड़ों वर्षों से हैं, किन्तु मनुष्य केवल कुछ लाख वर्ष पहले ही प्रगट हुआ था। समुद्र पर्याप्ततः स्थायी हैं और उनमें हजारों जातियों की मछलियों को अनन्तकाल तक जीवित रखने के लिए उपयुक्त टम्परेचर, खारा-जल तथा खाद्य भी विद्यमान हैं और रहेंगे। अत: समग्र पृथ्वी के नष्ट हुए बिना अथवा सातों समुद्रों के जल में तैरते हुए सूक्ष्म प्लैन्कटन[1] खाद्य को विषाक्त किये बिना इस जाति के प्राणियों के जीवन की अवधि को घटाने की किसी भी युक्ति की कल्पना करना कठिन है। किन्तु मनुष्य के लिए १०००० वर्ष बहुत लम्बा समय है। उसके शरीर की रचना तथा उसके सामाजिक आचरण के कारण उसके जीवन का बीमा करना जोखिम का काम है। प्रश्न यह है कि वह कौन-सा कारण है जो मानव जाति का अन्त कर सकता है। अब हम इसकी सम्भावनाओं का विवेचन करेंगे।

पृथ्वी का लगभग तीन चौथाई भाग समुद्र से ढका हुआ है। शेष भाग विविध ऊँचाइयों तक जल-पृष्ठ से ऊपर उठा हुआ है। किनारों की जमीन थोड़ी-बहुत ऊँची-नीची होती रहती है। पवन तथा वर्षा से पर्वत कट-कट कर नीचे होते जाते हैं तथा पृथ्वी की पपड़ी में सिकुड़न पड़ने से नये पर्वत ऊपर भी उठ जाते हैं। फिर भी सामान्यत: ऐसा जान पड़ता है कि महाद्वीप भूवैज्ञानिक युग युगान्तर से ज्यो के त्यों स्थायी ही रहे हैं। इस अनुभव के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि इस बात की सम्भावना बहुत ही कम है कि समुद्र का जल कभी मनुष्य को डुबा देगा अथवा जल की कमी के कारण उसका शरीर

1. Plankton

सूख जायगा। न तो मनुष्य-संहारी प्रलय की ही कोई सम्भावना दिखाई देती है, न किसी पूर्णतः सांघातिक अनावृष्टि की।

अब मानव जाति के पूर्ण उन्मूलन की समस्या पर वैज्ञानिक वास्तविकता तथा कल्पना इन दोनों के ही दृष्किोणों से थोड़ा और भी विचार कर लेना उचित है। यदि हम प्रकृति (अथवा शैतान) के प्रतिनिधि बनकर मानव जाति का लोप करना चाहें तो किन उपायों से हम यह कार्य सम्पन्न कर सकते हैं ? सब से पहले तो हमें समय की अवधि नियत कर लेनी चाहिए—न बहुत छोटी न बहुत लम्बी। सम्भावना ऐसी दिखाई देती है कि एक शताब्दी बाद भी मानव जाति अवश्य विद्यमान रहेगी। किन्तु इस बात की सम्भावना बहुत कम है कि दस करोड़ वर्ष बाद भी पृथ्वी पर उसका अस्तित्व बना रहेगा। यह हो सकता है कि एक हजार वर्ष बाद भी इस जाति का कारबार चलता रहे, किन्तु निश्चय-पूर्वक यह नहीं कहा जा सकता कि एक लाख वर्ष तक ऐसी स्थिति बनी रह सकेगी।

अतः हम यह उचित समझते हैं कि दस हजार वर्ष बाद पृथ्वी पर मनुष्य के विद्यमान होने की सम्भावना का ही सूक्ष्म विवेचन कर लिया जाय। इस सम्बन्ध में जो विचार यहाँ प्रस्तुत किये जायेंगे उनमें से अधिकतर तो ऐसे हैं जिनमें वैज्ञानिक प्रामाणिकता अधिक है और कल्पना बहुत कम, किन्तु कुछ ऐसे भी हैं जिनमें अगत्या कल्पना का ही बाहुल्य है, किन्तु जिन को अभी तक विज्ञान का समर्थन प्राप्त नहीं हो सका है।

सबसे पहले विध्वंस के ब्रह्माण्डीय साधनों को ही लीजिए। किसी तारे से पृथ्वी की टक्कर हो जाने की सम्भावना कितनी है ? तारों की गति की दिशाओं में यादृच्छिकता—अनियमित विविधता—बहुत अधिक दिखाई देती है और हमारे निकटवर्ती आकाश में उनका औसत वेग लगभग बीस मील प्रति सैकंड है। यदि एक भी तारे की टक्कर पृथ्वी से (अथवा सूर्य से भी) हो जाय तो विध्वंस का कार्य पूरा हो जायगा और समस्त सजीव प्राणियों का पृथ्वी से निश्चय ही उन्मूलन हो जायगा। किन्तु तारे इतनी अधिक दूरी पर हैं कि दस हजार वर्ष की अपेक्षाकृत छोटी-सी अवधि में ऐसी टक्कर होने का प्रश्न ही नहीं उठ सकता। अतः तारों की ओर से किसी प्रकार की गड़बड़ होने की संभावना रत्तीभर भी नहीं हो सकती।

यह तो समझ में आया कि उपर्युक्त दुर्घटना का कोई डर नहीं है, किन्तु क्या यह नहीं हो सकता कि सूर्य ठंडा हो जाय और अत्यन्त शीत से जम जाने

के कारण हमारी मृत्यु हो जाय अथवा भयंकर विस्फोट के द्वारा सूर्य नवतारा[1] बन जाय और समस्त ग्रहों को भस्म कर दे? ऐसा भी नहीं हो सकता—कम से कम सम्भावना तो बहुत ही कम है क्योंकि हमारा सूर्य अपेक्षाकृत शान्त तथा स्थायी प्रकृति का तारा है और करोड़ों वर्षों से उस के विकिरण में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। उसमें हाइड्रोजन की मात्रा इतनी अधिक है कि हमारी वांछित उपर्युक्त अवधि से दस लाख गुने अधिक काल तक वह पृथ्वी को परमाणविक संलयन[2] के द्वारा विकिरण ऊर्जा देता रह सकता है।

यदि सूर्य तथा तारों के द्वारा हमारे विध्वंस की आशंका नहीं है तो क्या हमें पृथ्वी के दुराचरण का डर होना चाहिए कि कहीं ऐसा न हो कि पृथ्वी अपनी कक्षीय नियमितता को त्याग कर या तो सूर्य के बहुत अधिक निकट पहुँच जाय या उससे बहुत अधिक दूर चली जाय? क्या इस प्रश्न का कोई उत्तर है भी कि नहीं? हमारे गणितीय विश्लेषणों से स्पष्ट हो गया है कि ग्रहों की कक्षाएँ विचाराधीन कालावधि में पूर्णतः स्थायी रहती हैं। पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा लगभग पूर्णतः निर्वात आकाश में लगभग वृत्तीय पथ पर चल कर करती है और सौ शताब्दियों का जो समय हमने मनुष्य जाति के उन्मूलन के लिए नियत किया है उसमें न तो पृथ्वी के दैनिक घूर्णन में और न वार्षिक परिक्रमण में कोई विशेष परिवर्णन दिखाई दे सकेगा। (और यदि कोई छोटे-मोटे परिवर्तन हो भी जायेंगे तो जिस प्रकार पिछले एक लाख वर्षों में उत्तरी गोलार्ध पर हिम का आवरण जम जाने और पिघल जाने पर हमने उसके प्रति अपना अनुकूलन कर लिया था उसी प्रकार फिर भी अवश्य ही कर सकेंगे)।

यह तो हम पहले ही बता चुके हैं कि समुद्र और महाद्वीप अपेक्षाकृत स्थायी हैं। गत दस लाख वर्षों में पार्थिव प्राणी जल और स्थल के उतार-चढ़ाव के अभ्यस्त हो गये हैं। अतः इन दस हजार वर्षों में मन्दगति वाले पर्वत और तट-रेखाएँ उनके लिए संकटमय नहीं हो सकतीं। गतिशील बर्फ और प्रसरणशील मरुस्थल के साथ की दौड़ में मनुष्य हार नहीं सकता। इसमें भी सन्देह नहीं कि ज्वालामुखियों, तूफानों और जल-प्रवाह से वही अपनी रक्षा सुगमता से करता रहा है। इसलिए यदि उसमें थोड़ी-सी भी बुद्धि रहेगी तो भविष्य में भी वह इन से सुरक्षित रह सकेगा।

1. Nova 2. Atomic fusion

क्या कभी ज्वालामुखी पर्वतों से उत्पन्न गैसों की प्रचुरता के कारण यहाँ का वायुमंडल विषाक्त होकर इस योग्य नहीं रहेगा कि स्थलचर प्राणी और मनुष्य उसमें साँस ले सकें ? पिछले पचास करोड़ वर्षों में तो ऐसा कभी हुआ नहीं और न आगामी दस हजार वर्षों में भी ऐसा होने की कोई निश्चित सम्भावना ही है क्योंकि पृथ्वी अपनी विस्फोटशील प्रसव-वेदना से क्रमशः मुक्त होती जा रही है।

किसी अन्तरतारकीय गैस अथवा धूल से भी वायुमंडल के विषमय हो जाने की सम्भावना बहुत ही कम है। इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि इस अन्तर-तारकीय गैस का अधिकांश भाग विषहीन हाइड्रोजन तथा हीलियम गैसों का है और दूसरे यह इतनी विरल है कि हमारा वायुमंडल जिस प्रकार क्षुद्र, किन्तु तीव्रगामी अन्तरग्रहीय उल्काओं से हमारी रक्षा करता है ठीक उसी प्रकार वह इन गैसों को भी हम तक नहीं पहुँचने देता।

पृथ्वी पर से मनुष्य तथा अन्य जन्तुओं का उन्मूलन करने की इस योजना पर जितना विचार हम अभी तक कर पाये हैं उसका संक्षिप्त परिणाम यह है कि इस दुष्कार्य में तारों से, या अन्तरतारकीय धूल से, या सूर्य के विकिरण की अधिकता अथवा कमी से, या पृथ्वी के वर्तमान कक्षा के विचलन से, या प्राण-घातक मौसम से, या पृथ्वी के जल, स्थल तथा वायु के रासायनिक संघटन से हमें किसी भी प्रकार की सहायता मिलने की सम्भावना नहीं है।

अब जीव-विज्ञानी कारणों को लीजिए। न तो हमें बड़े-बड़े हिंस्र पशुओं का डर है और न किसी प्रकार के जीव-जन्तुओं का अथवा पेड़-पौधों का। अब हम जीवाणुओं[1] तथा विषाणुओं[2] इत्यादि से निबटने में भी कम से कम इतने निपुण तो हो ही गये हैं कि अपनी जाति को जीवित रख सकें। निश्चय ही यह असंभव नहीं है कि कभी कोई संसार-व्यापी दुर्घटना ऐसी हो जाय जो सांघातिक हो। ऐसा संकट तारे की टक्कर से लेकर संक्रामी[3] प्रोटीन तक किसी भी कारण से उपस्थित हो सकता है। किन्तु ऐसा होने की संभावना अत्यन्त ही थोड़ी है। किसी खगोलीय पिंड के टक्कर होने की प्रायिकता[4] से भी कम है। मौसम,

1. Bacteria 2. Viruses 3. Infective
4. Probability

ज्वालामुखियों, पृथ्वी व्यापी बाढ़ों अथवा अनावृष्टियों के घोर संकट की प्रायिकता $\frac{१}{१०००}$ से भी कम है और पृथ्वी भर में किसी असाध्य रोग के फैल जाने की प्रायिकता शायद $\frac{१}{१००}$ से कम है।

(यदि किसी सार्व-देशिक दुर्घटना के कारण दुनिया की जनसंख्या के ९९ प्रतिशत भाग का भी विनाश हो जाय तो भी दो करोड़ से अधिक मनुष्य बच रहेंगे और ये अपनी सन्तान के द्वारा पृथ्वी को पुनः मनुष्यों से भर देंगे। पूर्ण उन्मूलन का प्रयास सर्वथा निष्फल हो जायगा। किसी सभ्यता को बिगाड़ देना एक बात है और शायद बहुत मुश्किल भी नहीं है, किन्तु उसका पूर्ण उन्मूलन बिलकुल दूसरी बात है और अत्यन्त ही कठिन काम है)

दूसरे शब्दों में मनुष्यों का भविष्य निरापद मालूम देता है तथा तारों के, मौसम के तथा सांघातिक जीवाणुओं के उपद्रव से उसका दीर्घकाल तक सुरक्षित रहना भी प्रायः निश्चित ही है। किन्तु ठहरिए। मैंने अभी यह नहीं बताया कि वास्तविक भय किससे है। आज कल इस बात से सभी सहमत हैं कि वह भय अत्यन्त निष्ठुर तथा अनिष्ट-सूचक है। यह भय स्वयं मनुष्य से ही है। वह स्वयं ही अपना सबसे अधिक भयंकर शत्रु है। वह ऐसे साधन जुटा रहा है और ऐसे कौशल सीख रहा है जिनके द्वारा संभव है कि उसे इस पृथ्वी पर से मानव जाति के पूर्ण उन्मूलन के उपाय मालूम हो जायँ।

जिन विविध उपायों से मनुष्य स्वयं ही अपना उन्मूलन कर सकता है उनके विषय में बहुत कुछ लिखा जा सकता है और इस दारुण विपत्ति से बचने के उपायों का विवेचन करने का भी थोड़ा-बहुत साहस किया जा सकता है। किन्तु यह जिम्मेदारी इस निबंध की नहीं है। वस्तुतः यह जिम्मेदारी तो प्रत्येक ऐसे व्यक्ति की है जो हमारी मानव जाति[१] को मनीषी[२] की संज्ञा देने का समर्थन करने का इच्छुक है।

आशावादिता की स्वीकारोक्ति

मुझे यही उचित मालूम होता है कि इस निबंध के अन्त में दृढ़ विश्वास न सही कम से कम नम्रता तथा आशा की भावना तो व्यक्त कर दूं। बाह्य

1. Homo 2. Sapiens

जगत् को पूर्णतः समझने में जो भी तुच्छ सफलता हमें मिली है उसके विषय में हमें नम्र होना ही चाहिए। अन्य समस्त जन्तुओं की ही तरह हमारा ज्ञान भी इतना ही है कि हम किसी तरह अपने जीवन का निर्वाह कर सकें। हम समस्त प्राकृतिक बाधाओं का सामना कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त विचारों के नये तथा सुन्दर संसार का भी हम निर्माण कर सकते हैं। हमारी सख्या तथा हमारे कार्य प्रभावशाली हैं यद्यपि यह सच है कि संख्या तथा काम दोनों केवल एक ही ग्रह के पृष्ठ तक उसके निकटवर्ती प्रदेश तक ही सीमित हैं।

मैं समझता हूँ कि मानव मन और हृदय उन सब संकटों का सामना सफलतापूर्वक कर लेगा जो मनुष्य जाति के सामने भविष्य में आवेंगे। इस स्थायी ग्रह पर हमारा निवास अधिकांशतः आनन्दमय ही है और आगे चलकर शायद और भी अधिक सुखदायी हो जाय। हमने उपयोगी जीवन की अवधि बढ़ा ली है। हमने अपनी नैतिक व्यवस्था को ऐसा रूप दे दिया है जिससे हमें औसत रूप से सुरक्षा तथा संतोष प्राप्त हो सके, किन्तु बार-बार होने वाली असफलताओं के कारण हम अत्यन्त उद्विग्न तथा भयभीत भी हो जाते हैं। हम जानते हैं कि तारों के नियम कठोर हैं, काल का प्रवाह अटल है, मृत्यु भयंकर है तथा उसका कोई विकल्प ही हो नहीं सकता। फिर भी यदि हम मिल कर कार्य करें तो भविष्य के चित्र में अँधेरे की अपेक्षा उजाले की वृद्धि हो सकती है। जब ज्ञान डगमगाने लगे तब कल्पना सहारा दे सकती है। हम उच्चतर नृवंशियों ने अर्धज्ञात ब्रह्माण्डीय तथ्यों के गहन अध्ययन से यह अच्छी तरह जान लिया है कि जब तथ्यों के ज्ञान में विलम्ब होता है तब ब्रह्माण्डीय कल्पनाओं की भी आवश्यकता हो जाती है।

यह मेरा विश्वास है (या शायद कल्पना है) कि प्राणियों के जीवन का प्रमुख उद्देश्य यह है कि उनकी सुसंस्कृत जटिलता में, उनके स्थायित्व में तथा उनकी अनुकूलन क्षमता में अधिकाधिक वृद्धि होती जाय। आधा पशु तथा आधा देवता होने के कारण मनुष्य को सामान्य जैविक नियमों को तो मानना ही पड़ेगा, किन्तु वह इन नियमों में थोड़ा-बहुत संशोधन कर सकता है।

हम अपने जीवन में सदैव बुद्धि और तर्क का उपयोग करते हैं और इन्हीं की सहायता से इस ब्रह्माण्ड को समझने का भी यथाशक्ति प्रयास करते हैं। अतः हम अन्धविश्वास से घृणा करते हैं। यही तो तर्कहीनता का अंतिम दुर्ग। है किन्तु यह बाधक अन्धविश्वास पहले कभी इतने विस्तृत क्षेत्र में पीछे हटने

के लिए विवश नहीं हुआ था और न इस विजय का श्रेय मनुष्य की तर्कबुद्धि को ही है। अलौकिक तथा अप्राकृतिक में विश्वास विचारशक्ति के द्वारा निर्बल हो गया है। अज्ञात के अत्याचार के विरुद्ध हमारा जो अनिवार्य युद्ध निरन्तर चल रहा है उसमें तर्कवाद और बुद्धिवाद ने अनेक मोर्चे जीत लिये हैं। जीवन की उत्पत्ति की, नाभिकीय कणिकाओं[1] के बन्धनबल[2] की, किसी तारा-पुंज में तारों की कक्षाओं की, विचारशक्ति के विद्युत्-रासायनिक नियमों की अथवा भौतिक ब्रह्माण्ड की किसी सर्वातीत सत्ता की समस्या जब हमारे सामने आती है तो हमें अब किसी ऐसी बात का सहारा लेने की आवश्यकता नहीं रहती जो प्रकृति से अतीत हो। अब ऐसे सब प्रश्नों से निबटने के लिए तर्क और बुद्धि के हथियार ही काफी हैं।

मानव कार्यकलाप के भौतिक, मानसिक तथा सामाजिक तीनों ही क्षेत्रों में बीसों तरीकों से उन्नति संभव हो सकती है। अतिनूतन युग[3] के बाद इन सब क्षेत्रों में हमने बहुत कुछ कर लिया है। भविष्य में इससे भी अधिक कर सकते हैं। बहुत सम्भव है कि भविष्य का मानव हमारी अक्षमताओं को दूर कर सकेगा और अपने विचारों तथा कार्यों के द्वारा ऐसी श्रेष्ठ मानसिक तथा सामाजिक व्यवस्था का निर्माण कर सकेगा जो स्थानीय प्रतिष्ठावाली मानव-जाति में प्रकृति द्वारा नियोजित महत्त्व से अधिक सुसंगत होगी।

1. Nucleous 2. Binding force 3. Pliocene period